दुबेजी की डायरी

लेखक
श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'
(विजयानन्द दुबे)

विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा ।

प्रकाशक—
राजकिशोर अग्रवाल
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा।

प्रथम संस्करण मई १९५८
मूल्य ३)

मुद्रक—राजकिशोर अग्रवाल, कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बाग मुजफ्फरखाँ, आगरा।

ये डायरी के पृष्ठ

शिष्ट हास्य स्वयं एक कला है। जिस प्रकार प्रत्येक अभिनेता रंगमंच पर हास्य का प्रादुर्भाव नहीं कर सकता उसी प्रकार प्रत्येक लेखक हास्य-लेखक नहीं बन सकता। इसी प्रकार प्रत्येक हास्य लेखक शिष्ट हास्य के सृजन में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। सचमुच शिष्ट हास्य का सृजन साधारण तथा प्रत्येक लेखक का काम नहीं है।

मैं हास्य साहित्य को दो प्रकारों में विभक्त करता हूँ—अर्थ-प्रधान हास्य तथा शब्द-प्रधान हास्य। शब्द-प्रधान हास्य में शब्द ही हमको हँसाते हैं तथा जहाँ तक अर्थ या भाव का सम्बन्ध है गहनता के नाम पर प्रायः शून्य ही होता है। भद्दे, निरर्थक, अशिष्ट तथा असंस्कृत शब्द प्रायः हास्य का सृजन करते हैं। अतएव इस प्रकार के हास्य में अशिष्टता तथा अश्लीलता होना अनिवार्य है। इस प्रकार के हास्य को हम पढ़ते ही हँस तो पड़ते हैं; किन्तु उससे न तो प्रभावित ही होते हैं और न उसे साहित्य का अंग ही मान सकते हैं।

अर्थ-प्रधान हास्य प्रायः शिष्ट एवं श्लील होता है। इस प्रकार का हास्य पढ़ते ही हमको हँसी नहीं आती, किन्तु ज्यों-ज्यों हम उसके अर्थ की गहनता में जाते हैं हमारी हँसी रोके नहीं रुकती। यही नहीं, इस प्रकार का हास्य प्रायः देश और समाज के लिये कल्याणकारी भी होता है। समाज या राजनीति के किसी विशेष अंग को लेकर ही प्रायः इस प्रकार के हास्य का सृजन होता है। हम इस प्रकार के हास्य को कटु आलोचना का भी रूप मान सकते हैं।

हिन्दी के सुनाम धन्य कथाकार स्व० विशंभरनाथ शर्मा कौशिक इसी प्रकार के हास्य-लेखक थे। उनकी कहानियों और उपन्यासों में तो हमको उनकी इस प्रतिभा के यत्र तत्र दर्शन होते ही हैं किन्तु

'विजयानन्द दुबे' के नाम से जो 'दुबेजी की चिट्ठियाँ' या 'दुबेजी की डायरी' वे भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखते रहे हैं वे हिन्दी के हास्य साहित्य में सर्वश्रेष्ठ तथा बेजोड़ हैं। इस प्रकार का मौलिक तथा बेजोड़ हास्य साहित्य उनके पहले या उनके समय में किसी ने नहीं लिखा। प्रत्येक 'चिट्ठी' 'डायरी' में समाज या राजनीति के किसी अँग-विशेष पर गहरी चोट है, उसकी तीव्रतम आलोचना है तथा उसका परिहास है। सामाजिक कुरीतियों तथा राजनैतिक अस्तव्यस्तता पर ये चिट्ठियाँ वाण का सा काम करती हैं।

'दुबेजी की डायरी' अर्थ-प्रधान तथा शब्द-प्रधान हास्य का समन्वय सा है किन्तु फिर भी अश्लीलता तथा अशिष्टता पास भी फटकने नहीं पाई है।

स्व० कौशिकजी समाज-सुधारक थे तथा जीवन के प्रत्येक पहलू को सुलझी दृष्टि से देखने के आदी थे। वे जिन सभा-सोसायटियों, कवि-सम्मेलनों तथा सामाजिक गोष्ठियों में जाते थे वहाँ आलोचक की ही दृष्टि लेकर बैठते थे! 'दुबेजी की डायरी' का विषय वे इन्हीं स्थानों से प्रायः चुन लेते थे। अपनी मित्र-मंडली के सदस्यों को भी वे न छोड़ते थे। उनकी इस आलोचक दृष्टि ने जो कुछ देखा तथा उनकी लेखनी ने अभिव्यक्तीकरण किया वह देश और समाज के लिये निश्चितरूप से कल्याणकारी ही सिद्ध हुआ। 'दुबेजी की डायरी' उनके इसी प्रकार के हास्य लेखों का संकलन है।

एक बात और है। इनका लेखन काल लम्बा रहा है। इनकी सामयिकता पाठक को मुड़ कर देखने लिए बाध्य कर सकती है, किन्तु उनमें जो कुछ है वह सत्य है, शाश्वत है। आशा है पाठकों का आज भी वे उतना ही मनोरंजन कर सकेंगी, जितना उस समय कर चुकी हैं जब वे लिखी गई थीं।

कानपुर
१८-१२-५६

—देवीप्रसाद धवन 'विकल'

दुबेजी की डायरी

: १ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की, -

उस दिन कुछ साहित्यिक नवयुवक अपनेराम से मिलने आये। अपनेराम ने उनसे पूछा—"कहिए, कैसे कष्ट किया ?"

"आपके दर्शनों के लिए चले आये।"—उनमें से एक ने कहा।

"दर्शन किसी देवी-देवता के करते तो कल्याण होता अपनेराम के दर्शन से क्या मिलेगा ?"

"देवी-देवता को हम नहीं मानते।"

"चलो यह भी अच्छा है। आजकल जितना कम माना जाय उतना ही आराम है।"

"आराम कैसा ?"

"मानने में कष्ट ही मिलता है। जिसको मानोगे उसकी कुछ भेंट-पूजा अथवा सेवा करनी पड़ेगी। इसीलिए तो आज-कल बहुत से लोग वेदान्ती, आर्यसमाजी तथा और न जाने क्या-क्या हो जाते हैं।"

"क्यों हो जाते हैं।"

"आराम के लिए, झंझटों से बचने के लिए। सनातन धर्म में पचासों झंझट हैं। आज श्राद्ध करो, आज यह व्रत करो, आज इसका पूजन करो। ये सब झंझट ही तो हैं। इसलिए आर्यसमाजी बन गये।"

"परन्तु आर्यसमाजियों को भी तो संध्या-हवन करना पड़ता है।"

"उससे कावा काट गये तो बस फिर लाइन क्लियर है। सनातन धर्म में इतने कृत्य हैं कि एक-दो से बच निकलने पर भी पूर्णतया पिण्ड नहीं छूटता। कुछ लोग वेदान्ती बन जाते हैं।"

"वेदान्ती बनने में क्या लाभ है ?"

"वेदान्ती बनने में सोलहो आना लाभ है। कुछ भी करने की आव-

श्यकता नहीं पड़ती। "अहंब्रह्मास्मि" हम ही ब्रह्म हैं। बस जहाँ यह ज्ञानोदय हुआ कि हम ही ब्रह्म हैं बस बे-नकेल के ऊँट बन गये। जब सब कुछ स्वयं ही हैं तब चाहे जो करें और जो चाहें न करें सब ठीक है। उन्हें किसी कार्य से मतलब ही नहीं। न पूजा, न उपासना, न ध्यान, न संध्या, न हवन। ब्रह्म तो निर्लेप है न। वह कोई झंझट नहीं पालता।"

"परन्तु वेदान्ती खाते-पहिनते तथा अन्य कार्य तो करते ही हैं।"

"वह सब आनन्द के अन्तर्गत आ जाता है। ब्रह्म तो केवल आनन्द करता है। अतः जिन कामों में उसे आनन्द मिलता है केवल वे ही काम करता है। शेष सब कन्डम।"

"खैर, इन बातों से अपने लोगों को कोई मतलब नहीं।"

"तो जाने दीजिए! जिन बातों से मतलब है वे बातें कीजिए। दर्शन तो आप शायद कर ही चुके अब जो शेष रहा हो वह बताइए।"

"हम लोग इस समय आपसे साहित्य पर बात करने के लिए आये थे।"

"साहित्य! साहित्य तो आज-कल दाल-भात हो रहा है। उस पर बात क्या कीजिएगा।"

"दाल-भात कैसा?"

"दाल-भात ऐसा कि जिसका जो मन आता है वह करता है। अत-एव उस पर बात करना व्यर्थ समय खोना है। आपका जो जी चाहे कीजिए—सब साहित्य ही है।"

"ऐसी बात तो नहीं है।"

"तो जैसी बात हो वह आप बताइए, अपनेराम को तो पता नहीं है।"

"आपको सब पता है। इसीलिए हम लोग आप से कुछ सीखने, कुछ ज्ञान प्राप्त करने के लिए आये हैं।"

"सीखने और ज्ञान प्राप्त करने में समय खोने की अपेक्षा तो यह अच्छा है कि बस कातना आरम्भ कर दो।"

"कातना! क्या चर्खा कातें?"

"अपनेराम का मतलब है कि कार्य करो, लेखक हो तो लिखना आरंभ कर दो, कवि हो तो तुकें भिड़ाना शुरू कर दो।"

"हम लोग कहानी-लेखक बनना चाहते हैं।"

"कहानी-लेखक ! वाह वा ! इससे बढ़कर सरल नुस्खा कोई है ही नहीं। बस एक साजन और एक सजनी लेकर कहानी लिख डालो।"

"क्या लिखें यह समझ में नहीं आता।"

"ताज्जुब है कि इतनी सरल बात भी आप लोगों की समझ में नहीं आती। विरह, मिलन, प्रेमालाप इत्यादि का सम्मिश्रण करके अच्छी खासी कहानी बना डालो।"

"और अन्त कैसे करें?"

"अन्त करने में क्या है, कहीं मिलन करा दो, कहीं ऐसा वियोग कि दोनों ठंडी साँस लेते-लेते मर जायँ, कहीं आत्म-हत्या, कहीं विराग।"

"बढ़िया कहानी लिखने में कौन सी खास बात ध्यान में रखनी चाहिए?"

"बढ़िया कहानी वही होती है कि जिसको पढ़कर पाठक का हार्ट फेल होते-होते बच जाय।"

"इसका क्या तात्पर्य?"

"इसका तात्पर्य यह कि या तो बहुत अधिक आनन्द दिखाओ। अधिक आनन्द में भी हार्ट फेल हो जाता है अथवा अत्यधिक शोक—इसमें भी हार्ट फेल होने की सम्भावना रहती है।"

"यह बात तो कुछ समझ में नहीं आई।"

"यदि समझ में नहीं आई तो मजबूरी है। इससे अधिक न अपनेराम कुछ समझा सकते हैं और न आप समझ सकते हैं।"

"यदि आप समझावें तो ऐसी बात तो नहीं है जो हम न समझ सकें।"

"बस आप कहानी लिखनी शुरू कर दीजिए बहुत सी बातें तो आप बिना समझाये स्वयं ही समझ जायेंगे।"

"कैसे समझ जायेंगे—यही तो प्रश्न है।"

"जिस समय क़लम दौड़ना आरम्भ करेगा उस समय वह आपके रोके भी नहीं रुकेगा और कहीं न कहीं अन्त करके ही दम लेगा। कहीं कलम प्रेमिका को नहर में डुबो देगा, कहीं कार के नीचे दबा देगा, कहीं किश्ती उलटा देगा, कहीं चलती ट्रेन से कुदवा देगा। यही दशा प्रेमिक की भी करवा सकता है। प्रेमिका के मर जाने के पश्चात् प्रेमिक पागल हो जाता है, अथवा प्रेमिक के खुदागंज पहुँच जाने पर प्रेमिका जोगिन बन कर घूमती है—वाह वा, कितना बढ़िया प्लाट है, पढ़ने वाला फूट-फूट कर न रोये तो न सही परन्तु आँखों में आँसू अवश्य भर लावेगा और ठण्डी साँस भर के सोचेगा कि "हाय हुसैन हम न हुए। वह जोगिन हमें मिल जाती तो हम भी उसके साथ जोगी बन कर घूमते।"

"और ?"

"अभी और की आवश्यकता बनी हुई है ? अच्छा तो और सुनिये—कहीं प्रेमिक प्रेमिका को त्याग कर किसी दूसरी स्त्री से नयनमटक्का कर लेता है। तो उस समय पाठक दाँत पीस कर सोचता है कि ऐसा हृदयहीन, पाजी यदि कहीं उसे मिल जाय तो मारे हण्टरों के उसकी खाल उड़ा दे। यद्यपि वास्तविक जीवन में यदि ऐसा अवसर उसे मिले तो शायद उस ओर आँख उठाकर भी न देखे। कहीं प्रेमिका-प्रेमिक को छोड़कर दूसरे पुरुष के पास चली जाती है, तब पाठक को उस दूसरे पुरुष पर ईर्षा होती है। क्योंकि प्रेमिका सदैव सुन्दरी तथा कोमलाङ्गी होती है अतः पाठक सोचता है कि ऐसा सौभाग्य कम्बख्त उसे कभी नहीं प्राप्त होता कि कोई सुन्दरी अपने प्रेमिक को धता बता कर उसके पास चली आवे।"

"मनोवैज्ञानिक कहानी कैसी होती है ?"

"मनोवैज्ञानिक कहानी वही है कि कहानी के पात्र जो कुछ सोचें वह सब आप कलम डालकर बाहर निकाल लें। प्रत्येक पात्र पर ऐसा जबरदस्त पहरा लगा दें कि वह कोई ऐसी बात सोच ही न सके जिसका

पता आप के कलम को न चल जाय या फिर जैसा आप चाहें वैसा ही सोचें-समझें। बस यह समझ लीजिए कि प्रत्येक पात्र का दिमाग़ आपकी मुट्ठी में हो जब जिस ओर आप चाहें उसे घुमा दें।"

"और कुछ?"

"और जो मौके पर सूझ जाय। यह तो सूझ-बूझ की बात है। प्रत्येक बात नहीं बताई जा सकती। खास-खास बातें आपको बता दी हैं। इन पर मनन; निदिध्यासन करने से आप कहानी के मास्टर हो जायँगे।" एक ने पूछा—"आजकल प्रगतिशीलता का बहुत शोर सुनाई पड़ रहा है। आखिर यह प्रगतिशीलता है क्या बला?"

"प्रगतिशीलता के अर्थ हैं—आगे बढ़े चलो। बस बढ़े चलो। खाई-खन्दक कुछ न देखो।"

"प्रगतिशीलता का कुछ उद्देश्य भी तो होगा?"

"पुराने आचार-विचारों तथा सिद्धान्तों से सौ गुने आगे रहना ही प्रगतिशीलता का उद्देश्य प्रतीत होता है। मन की बात काग़ज पर ले आओ चाहे वह अश्लील हो चाहे बेतुकी-मजदूरों-किसानों की दशा पर खूब आँसू बहाओ—चाहे वे मकराश्रु ही हों। पूँजीवाद को इस प्रकार कोसो कि यदि आपके कलम में छुरे का गुण पैदा हो जाय तो एक भी पूँजीवादी संसार में जीवित न रहे। परन्तु यह सब काग़ज क़लम तक ही सीमित रहे। वैसे व्यवहार में यदि कोई पूँजीवादी मिल जाय तो उससे इस प्रकार हँस-हँस कर बातें करो कि वह आप पर प्रसन्न होकर कुछ दया-दृष्टि कर दे। चन्दे की आवश्यकता पड़े तो पूँजीवादी से कहो कि—"आप लोगों की बदौलत ही संसार का काम चल रहा है।" बस ईर्षा, द्वेष, विरोध अर्थात् पुराने सिद्धान्तों तथा आचार-विचारों से, फिर वे चाहे जितने अच्छे और समय सम्मान प्राप्त हों, द्वेष, पूँजी-वादियों से ईर्षा और विरोध, क्योंकि पूँजीवादी अधिक आनन्द से जीवन व्यतीत करते हैं और बड़े खराब, स्वार्थी और न जाने क्या-क्या होते हैं। प्रेम केवल किसानों तथा मजदूरों से करो; क्योंकि किसान-मजदूर सब गरीब तथा देवता होते हैं। युवक-युवतियों का खुलकर

मिलना-जुलना तथा प्रेमालाप करना—माता-पिता को ठेंगा दिखा कर अपने प्रेमिक अथवा प्रेमिका के साथ हो जाना—यह भी प्रगतिशीलता के अन्तर्गत है। केवल उन बातों में जिनमें मार पड़ने का भय हो, जरा प्रगतिशीलता को काबुक के अन्दर ही बन्द रखना चाहिए अन्यथा अन्य सब बातों में स्वेच्छाचार से काम लेना बड़ी दिव्य प्रगतिशीलता है।

'और शैली से क्या तात्पर्य है ?"—प्रश्न किया गया।

"शैल पहाड़ और शैली पहाड़ी।" अपनेराम ने उत्तर दिया।

"हमारा तात्पर्य लेखनशैली से है।"

"हाँ ! हाँ ! अपनेराम को यह ख्याल ही न था कि लिखने की शैली से आपका तात्पर्य है। हाँ, शैली तो अवश्य होती है और अपनी-अपनी अलग होती है। उसके सम्बन्ध में कोई नियम नहीं बताया जा सकता। वह तो लेखक पर निर्भर है कि वह अपनी शैली जैसी चाहे वैसी रक्खे।"

"आखिर शैली किस तरह स्थिर की जाती है ?"

"*बस स्थिर कर डालिए चाहे जिस तरह भी हो। और कोई ढंग न* मिले तो मुहावरों तथा व्याकरण की हड्डी-पसली तोड़ कर शैली बना लीजिए।"

"मुहावरों तथा व्याकरण की हड्डी पसली तोड़ने से आपका तात्पर्य क्या है और वह कैसे सम्भव हो सकता है !"

'देखिए अपनेराम अब शैली में बोलेंगे, जरा ध्यान से सुनियेगा—हाँ तो आप को स्थिर करनी हो कोई शैली यदि, तो निश्चय कीजिए यह पहले कि आपको कौन-सी शैली है पसन्द। पसन्द हो शैली जो, बस उसी को कीजिए ग्रहण, हो सकेंगे तभी आप सफल ! समझा दिया सब कुछ मैंने आपको, यदि अब भी न समझें आप तो इसमें नहीं है मेरा कुछ दोष।"

"परन्तु इस तरह तो भाषा का रूप बिगड़ता है।"

"तब तो आप शैली बना चुके। अजी जनाब, किसी का रूप बिगड़े या बने आपको इससे मतलब ? आपकी शैली तो तैयार होती है। यदि

केवल रूप को कायम रखके अथवा उसमें कोई सुन्दरता लाकर शैली बनाने की चिन्ता में रहोगे तो सात जन्म भी शैली न बना सकोगे। यदि आवश्यकता पड़े और कोई अन्य शैली न बन सके तो आप—हाँ देखिये शैली—गौर फरमाइयेगा—तो आप कर तक यहाँ सकते हैं कि केवल लिख को शब्दों दें यह कि करें विचार न मुहावरे बिगड़ते व्याकरण बनते या हैं।"

"यह तो कुछ समझ में ही नहीं आया।"

"इसीलिए तो यह बढ़िया शैली रहेगी और सबसे अनोखी और अलग, जिसे देखते ही पाठक समझ जायँ कि यह अमुक की शैली है।"

"परन्तु जो शैली समझ में न आये उससे लाभ ?"

"लाभ यह कि नाम हो जायगा कि अमुक लेखक की शैली ऐसी है कि उसे बड़े-बड़े दिमाग़दार अथवा "क्रासवर्ड पज़ल्स" हल करने वाले ही समझ सकते हैं।"

"ऊपर जो आपने वाक्य कहा था उसे ज़रा सीधी-सादी भाषा में कहिए।"

"सीधी-सादी भाषा दो कौड़ी की, ख़ैर सुनिए—तो आप यहाँ तक कर सकते हैं कि केवल शब्दों को लिख दें यह विचार न करें कि मुहावरे—व्याकरण बिगड़ते या बनते हैं !

"यह शैली तो कुछ जँची नहीं।"

"सब जँचेगी, ज़रा लिखना तो आरम्भ कीजिए। जब कोई शैली ढूँढ़े न मिलेगी तो यही शैली जँचने लगेगी। जिस भाषा को अनेक आचार्यों ने बर्षों परिश्रम करके बनाया और उसका संस्कार किया उसे अपने कलम की नोक से क्षण-मात्र में अस्त-व्यस्त कर देना कोई साधारण बात है ! यह कार्य केवल वे ही कर सकते हैं जिनको प्रतिभा का मखला उतर आया है।"

"परन्तु ऐसी शैली को छापेगा कौन ?"

"सो न कहिये। हिन्दी के सम्पादक इतने उदार हैं कि यदि आप उनको किसी प्रकार से अपने ऊपर कृपालु बना लें तो फिर आप कुछ

भी लिखें सब छाप देंगे और आपको शैलीवान बना कर विख्यात कर देंगे। जहाँ आपका नाम हो गया बस फिर सब सम्पादक आपको शैली-वान मान कर आपकी कृतियाँ छापने लगेंगे, क्योंकि यदि न छापेंगे तो बेवक़ूफ़ न समझे जायँगे। सम्पादक लोग बेवक़ूफ़ समझे जाने से बहुत डरते हैं। वे चाहे किसी बात को खाक भी न समझें, परन्तु वे यह कदापि सहन नहीं कर सकते कि कोई उन पर नासमझी का दोषारोपण करे। सम्पादक लोग तो सर्वज्ञ होते हैं न; उनके सम्बन्ध में यदि कोई यह कह दे कि अमुक बात शायद सम्पादक जी समझें नहीं तो बस यह समझ लीजिए कि क़यामत आ गई, ग़जब हो गया, अन्धेर हो गया, भूचाल आ गया। सो जनाब सम्पादक लोग ऐसी नौबत ही नहीं आने देते कि कोई उनकी समझ पर सन्देह भी कर सके। इसी कारण बेचारों की इतनी दयनीय दशा होती है कि जो बात उनकी समझ में नहीं आती उसे भी छाप देते हैं।''

यह सुनकर सब जने कुछ क्षण तक सन्नाटे में बैठे रहे। अपनेराम ने पुनः कहा—''अपनेराम ने सब बातें आपको समझा दीं। आप यदि इनके अनुसार कार्य करेंगे तो थोड़े ही दिनों में जो चाहेंगे वह बन जायँगे। चाहे लेखक बन जाइए, चाहे कहानी लेखक, चाहे कवि।'' वे लोग कुछ देर तक बैठ कर विदा हुए। चलते समय उन्होंने अपनेराम पर जो दृष्टि डाली उससे प्रतीत होता था कि या तो उन्होंने अपनेराम की बातें समझी नहीं और यदि समझीं तो वे उन्हें कुछ जँची नहीं। अपने राम ने चैन का श्वास लिया कि चलो जान बची लाखों पाये।

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: २ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की,

मि० चर्चिल की स्पीच पढ़ कर तो जी खुश हो गया। क्या बेलाग बातें कही हैं। कहने वाला हो तो कम से कम ऐसा तो हो। आखिर बेचारे क्या करें ? तबीयत ही तो है, काबू में न रही। परन्तु इसमें बहुत बड़ा सन्देह नहीं है कि उन्होंने यह बातें जान-बूझ कर नहीं कहीं। जान पड़ता है उस दिन ज्यादा ढाल गए होंगे। मुफ़्त की जब मिलती है तब ज्यादा ढल ही जाती है और जब ज्यादा ढल जाती है तो आदमी राजा हरिश्चन्द्र का एक बहुत ही सस्ता संस्करण बन जाता है। उस समय यही जी में आता है कि "क्या परवाह है! हमारा कोई क्या कर लेगा ? हम तो साफ ही साफ कहेंगे, चाहे किसी को बुरा लगे या भला।" अब वलायती अखबार तथा राजनीतिज्ञ बिगड़ रहे हैं कि—"चर्चिल बड़े खराब आदमी हैं, जो ऐसी बातें कहते हैं। उनकी बात का कोई मूल्य नहीं है—इत्यादि-इत्यादि।" अपने राम का भी यही खयाल है कि चर्चिल साहब बड़े वैसे आदमी हैं, उन्हें ज़रा समझ नहीं है। भाइयो, आप लोग उनके कहने का कुछ बुरा मत मानिए—वह तो यों ही बका करते हैं। उनका स्वभाव ही कुछ नटखटपन का है। छप्पन वर्ष के होने आए, परन्तु उनका लौंडापन नहीं गया। यह नहीं देखते कि कौन बात किस समय कहना चाहिए और किस समय नहीं कहना चाहिए। ऊँट की तरह से मुँह उठाया और बलबलाने लगे। यह माना कि नशे में कह गए; परन्तु ऐसा नशा किस काम का जिससे कि अपनी पोल खुले। ऐसी बातें कहीं यों कही जाती हैं। वह तो कहिए यही खैरियत है कि हिन्दुस्तानी बेचारे बड़े

भोले हैं—लीपापोती को मान लेते हैं, नहीं तो बड़ा गड़बड़ हो जाय। बस आज से यह नियम कर दिया जाय कि जब कभी वह किसी सभा सोसायटी में जायँ तो जब तक वह अपना भाषण न देलें तब तक उन्हें बोतल की झलक न दिखाई जाय। अजी जनाब उनका क्या बिगड़ेगा? वह तो यह कह कर अलग हो जायँगे कि भाई माफ करो, नशे में मुँह से निकल गया; परन्तु ब्रिटिश सरकार का तो सब भण्डाफोड़ हो जायगा। यदि राउण्ड-टेबुल कान्फ्रेन्स के प्रतिनिधि बिगड़ कर चल देते तो जनाब, नाक कट जाती या नहीं? सारा करा-धरा चौपट हो जाता। यह तो लोग जानते ही हैं कि देना-लेना क्या, मुहब्बत अजब चीज़ है, परन्तु जो गुड़ दिए मरे उसे ज़हर क्यों दिया जाय? अपने मुँह से यह क्यों कहा जाय कि कुछ नहीं मिलेगा, हवा खाओ। ऐसा कहने से खराबी है। और मि० चर्चिल, आपके भाषण की कटु आलोचना की जायगी—आपको बुरा-भला कहा जायगा; परन्तु आप बुरा मत मानिएगा, सुन कर सोंठ हो जाइएगा। इस समय ऐसा ही मौका है। ऐसा न हो कि फिर बलबलाने लगो, समझे? खैर, अब तो जो होना था हो गया; परन्तु भविष्य में ज़रा ध्यान रखना।

और एक हिसाब से मि० चर्चिल ने कुछ बेजा भी नहीं किया। यह तो होना ही चाहिए कि एक तमाचा रसीद करे और दूसरा सोहरा दे। काम इसी तरह से होता है। सब मारते खाँ ही हो जायँ तब भी ठीक नहीं और सब दयालु बन जायँ तब भी बुरा है। इसलिए यही ठीक है कि कुछ लोग तो यह आशा दिखाते रहें कि वाह! यह क्या बात है, सब कुछ दिया जायगा, आप लोग घबराते क्यों हैं? और दो-एक यह कहते रहें कि यह सब ढकोसला है—कानी कौड़ी भी नहीं दी जायगी। इससे यह लाभ होगा कि समय पर जिस ओर उचित समझा जायगा उस ओर का पक्ष लिया जायगा। और फिर इससे यह लाभ भी तो है कि जब याचक लोग यह देखेंगे कि यहाँ से तो कुछ भी मिलने की आशा नहीं तो वे जो कुछ थोड़ा-बहुत मिलेगा, उसी को ग़नीमत समझ कर सन्तोष कर लेंगे। यदि घर भर दाता बन जाय तो जनाब, याचक

लोग घर खोद ले जायँ, और फिर भी संतुष्ट न हों। इसी दातापन की बदोलत राजा हरिश्चन्द्र को यार लोगों ने बेच खाया था। इससे यही नीति ठीक है कि कुछ दाता बने रहें और कुछ सूम! मि० चर्चिल, आपने बहुत अच्छा किया जो ऐसी स्पीच दे डाली। परन्तु अब कुछ दिनों खामोश रहिए, कुछ दिन बाद फिर एक फुलझड़ी छोड़ देना! लेकिन इस बार जो स्पीच देना वह ज़रा सोच-समझ कर देना। पिछली स्पीच वैसे तो अच्छी रही; परन्तु उसमें दो-चार बातें आप बौड़मपन की कह गए हैं! जैसे आपने यह बक डाला कि गाँधीवाद को कुचल डालना चाहिए, नेताओं को निर्वासित कर देना चाहिए था, गांधी जी को क़ानून तोड़ने के समय तुरन्त ही गिरफ़्तार कर लेना चाहिए था। ब्रिटिश सरकार को दिखा देना चाहिए कि वह कितनी शक्तिशाली है, इत्यादि इत्यादि! ये बातें कहने योग्य नहीं थीं। इससे हिन्दुस्तानी और ज़्यादा भड़क जायँगे। क्या आप को नहीं मालूम कि आज प्रत्येक देश में कुछ ऐसे लोग मौजूद हैं, जो गांधी जी को संसार का महापुरुष समझते हैं। यह माना कि वे बिलकुल अहमक हैं, परन्तु भाईजान, वे साधारण आदमी नहीं हैं—वे सब आपकी ही तरह स्वतन्त्र तथा शक्तिशाली हैं-आप लोग उनको नाराज़ करने का साहस नहीं कर सकते। इससे उन लोगों में भी आप लोगों के प्रति विरोध-भावना उत्पन्न हो जायगी। एक तो आपके दिन वैसे ही खराब हैं—तमाम ज़माना दुश्मन हो रहा है, आपके पाले-पोसे बच्चे तक बग़ावत पर कमर बाँध रहे हैं; उस पर आप ऐसी बातें कहते हैं जो और भी नाराज़ी फैलावें। यह समय अदावत बढ़ाने का नहीं है। हिन्दुस्तान से इस समय सबको सहानुभूति है। इसलिए आप अपनी शक्ति को ज़रा समझ-बूझ कर खर्च कीजिए। यह तो अपने राम को अच्छी तरह पता है कि आप बड़े शक्तिशाली हैं। आप चाहें तो हिन्दुस्तान को भारत-महासागर में डुबो सकते हैं; परन्तु आपकी शक्ति में थोड़ा पिलपिलापन यह है कि हिन्दुस्तान को नष्ट-भ्रष्ट करने में आपके लिए साठों दण्ड एकादशी हो जायगी। आपकी जाति के अनाथ, आवारा और ऐसे नवयुवक, जिनके न बाप का पता, न मां

का ठिकाना, और जो हिन्दुस्तान की बदौलत चैन की बंसी बजाते हैं, इङ्गलैण्ड में बँधे रहने के कारण चूहों और खटमलों की तरह आपके आराम में खलल डालेंगे। कनाडा और आस्ट्रेलिया ये दो आपके कमाऊ पूत हैं—यह हमने माना, परन्तु आपकी बदकिस्मती और कलिकाल के प्रभाव से दोनों बच्चे नालायक और हरामी निकले। आपके चलते हाथ-पैरों जब ये दूर से अँगूठा दिखाते हैं, तो बुढ़ौती में क्या काम आयेंगे। इसके अतिरिक्त आप यदि हिन्दुस्तान को तबाह कर डालेंगे तो अमेरिका, जापान, रूस इत्यादि को आपके साथ धौलधप्पा करने का मौका मिल जायगा; क्योंकि आपकी घुटी चाँद देख-देख कर अक्सर इन लोगों का हाथ खुजलाया करता है; मगर क्या करें, मौका न मिलने से मजबूर होकर रह जाते हैं। फिर, हिन्दुस्तानी कमबख्त भी मार खाने में आशातीत मजबूत साबित हुए। तादाद भी कम्बख्तों की इतनी ज्यादह है कि इन्हें मारते-मारते आपको फ़ालिज मार जायगा और इनका अन्त न होगा। इसलिए भाई साहब, गुस्से को थूक डालिए। एक बात और कीजिए—कुछ दिनों के लिए बोतल चढ़ाना बन्द कर दीजिए—ठण्डा पानी पिया कीजिए। बोतल गुस्से को बढ़ाती है, ठण्डा पानी शान्त करता है। ऐसा गुस्सा, जिससे अपनी ही जान पर बवाल हो, बुरा है। हाँ, जरा यह तो बताइए कि आपने यह क्या बक डाला कि चौबीस हजार कांग्रेसवादी जेलों में बन्द हैं। बूढ़े हो गए, मगर अक्किल न आई। इतनी लम्बी तादाद बताने की क्या जरूरत थी? अधिक से अधिक दस पन्द्रह हजार बताते। सच बोलने का माद्दा आप में कुछ आवश्यकता से अधिक है। आपने शायद भारत-मन्त्री मि० बेन की बात को सच मान लिया। मि० बेन तो हिन्दुस्तानियों से मिले हुए हैं, वह ऐसी ही बात कहेंगे जिससे हिन्दुस्तानियों का हित हो। आप जैसे पुराने घाघ भी उनके चकमे में आ गए। मि० बेन की बात का तो किसी को विश्वास नहीं हुआ था; क्योंकि वह हिन्दुस्तान के लाभ के लिए बात को बढ़ा कर ही कहते हैं—परन्तु आपकी बात को सब ब्रह्म-वाक्य मानते हैं। अब आपने उनके कथन पर अपनी मुहर लगा दी तो वह बात पक्की हो

गई। आप जानते हैं कि इस बात का क्या प्रभाव पड़ेगा? इतनी लम्बी तादाद सुन कर आपके जाति-भाइयों तथा अन्य देश के लोगों का हार्ट-फेल होने लगेगा। वे तो इस तादाद को सुन कर सहम जायेंगे। भला कुछ ठिकाना है—चौबीस हज़ार आदमी जेलों में बन्द हैं! आपने किया बड़ा लौण्डापन; मगर खैर अब तो जो होना था हो गया। भविष्य में किसी स्पीच में इसका सुधार इस प्रकार कर दीजिएगा कि चौबीस हज़ार में से बीस हज़ार माफी माँग कर छूट गए हैं और केवल चार हज़ार रह गए हैं। यह काम याद करके कीजियेगा, भूल न जाइयेगा। चार-पाँच हज़ार की तादाद सुन कर कोई न चौंकेगा। इतने आदमी तो जेल आयाजाया ही करते हैं, यह एक साधारण बात है। परन्तु चौबीस हज़ार!!! ओफ़-ओह! ज़रा ठहर जाइये, एक गिलास ठण्डा पानी पी लूँ तो फिर कुछ कहूँ। यह तादाद सुन कर तो अपनेराम का गला भी खुश्क हो गया। हालांकि यहाँ हिन्दुस्तानी कमबख्त साठ-सत्तर हज़ार की गिनती गिनाते हैं, परन्तु अपने राम को उनकी बात पर कभी विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि अपने राम को यह अच्छी तरह मालूम है कि हिन्दुस्तानी परले सिरे के गप्पी होते हैं। और यह भी बड़ी अच्छी बात है कि भारतसरकार हिन्दुस्तान की गप्पें बाहर जाने नहीं देती, अन्यथा साठ-सत्तर हज़ार की तादाद सुन कर तो इंगलैण्ड का एक कोना समुद्र में डूब जाता। हाँ, नेताओं के निर्वासित करने की सलाह जो आपने दी है, उसके लिये आप अधिक चिन्ता मत कीजिए। नेता लोग सब जेलों में निर्वासित हैं जो उन नेताओं का स्थान ले सकते थे उन लोगों को भारत-सरकार ने कान्फ्रेन्स के बहाने निर्वासित करके इंगलैण्ड भेज दिया। अब यह आपका काम है कि आप ऐसा प्रबन्ध करें कि वे जल्दी हिन्दुस्तान न लौटने पावें। उनको लौटने देने में हर प्रकार से खतरा है। यदि स्वराज्य लेकर लौटे तब भी आपकी शामत है, और यदि खाली हाथ लौटे तब भी आपकी खराबी है; क्योंकि खिसियाया हुआ आदमी क्या नहीं करता। इसलिये अपने राम की सलाह तो यह है कि आप उन्हें दो-चार बरस वहीं बन्द रखिए—तब

तक यहाँ सब मामला ठएढूस हो जायगा। परन्तु आप जैसी बातें करते हैं, उससे यह भय है कि कहीं ये लोग रस्सियाँ तुड़ा कर थान की तरफ न भागें। इससे भाई जी, अपने राम की अन्तिम प्रार्थना या सलाह (जो कुछ आपकी खोपड़ी शरीफ़ा में आवे समझ लें) मान कर ज़रा अपनी चोंच सम्हाल कर खोला कीजिए।

सम्पादक जी, कृपया मेरा उपर्युक्त सन्देश मि० चर्चिल तक पहुँचाने की चेष्टा कीजियेगा। हालांकि सन्देश में कही हुई बातें आपको विष-समान प्रतीत होंगी; क्योंकि आप भी ठेठ हिन्दुस्तानी हैं।

भवदीय
—विजयानन्द (दुबे जी)

: ३ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की।

बॉयकॉट आन्दोलन का प्रभाव देख कर तो अपनेराम की भूख-प्यास असहयोग कर बैठी है। ओफ़ ओह! कुछ ठिकाना है। कहाँ तो पहले केवल विदेशी वस्त्र का बॉयकॉट आरम्भ हुआ था और कहाँ अब यह दशा है कि सिगरेट, साबुन, औषधियाँ—सबका एक सिरे से बॉयकॉट!! बॉयकॉट आन्दोलन चलाने के समय बूढ़े बाबा गांधी जी के मस्तिष्क में भी इतने बॉयकॉट उदय न हुए होंगे! जैसे हज़रत मुहम्मद को .कुरानशरीफ़ की आयतों का इलहाम (दैवी सन्देश) होता था उसी प्रकार हिन्दुस्तानियों को बॉयकॉट का इलहाम हो रहा है। इस बॉयकॉट से किसी को भी हानि हो या लाभ, परन्तु अपने राम मारे चिन्ता के आधे रह गए। क्या करें, अपने राम तो उन ऋषियों की सन्तान हैं, जो सबेरे उठ कर पहले सब का भला मनाने के पश्चात् ईश्वर से अपनी भलाई की प्रार्थना किया करते थे। पुराने संस्कार एक बारगी कैसे मिट सकते हैं! माई-बाप अङ्गरेजों की यह दुर्दशा अपने राम से तो नहीं देखी जाती। कहावत भी है कि पीठ की मार भली, परन्तु पेट की मार भली नहीं। सो यहाँ तो पेट की मार दी जा रही है। यह बहुत बुरी बात है। हिन्दुस्तानियों में धर्म-युद्ध का माद्दा बिल्कुल नहीं रह गया। यदि अँगरेजों से झगड़ना ही है तो जमा खर्च रक्खो—.खूब कहो और .खूब सुनो, परन्तु भाई खाने को दिये जाओ जिसे खाने को ही न मिलेगा वह क्या अपनी कहेगा और क्या दूसरे की सुनेगा। हिन्दुस्तानियों में कुछ मर्दानापन है, धर्म्म-युद्ध का माद्दा है तो अँगरेजों की रोटियाँ बन्द न करें—बल्कि वीरता तो इसी में है कि उनका

रैशन डबल कर दें और फिर कहें कि अब आओ बहस कर लो! लड़ लो!! झगड़ लो!!! फिर स्वराज्य चाहे मिले या न मिले, परन्तु जो कुछ हो धर्म्म तथा वीरता की पुट लिए हुए—तभी लड़ाई का मजा है, अन्यथा जब आदमी भूखा मरेगा तो लड़ाई-वड़ाई सब भूल कर 'रोटी-रोटी' चिल्लाने लगेगा! ऐसी लड़ाई दो कौड़ी की!! अपने राम इस लड़ाई को लड़ाई नहीं, हत्याकाण्ड समझते हैं। यह सौभाग्य की बात है कि जो अपने राम का विचार है, वही विचार देश के बहुत से व्यापारियों का भी है। व्यापारी जाति में अधिकतर मारवाड़ी तथा बनिए हैं। ये जातियाँ कितनी धार्मिक तथा दयावान हैं—यह आप से छिपा न होगा। सड़कों पर चींटियाँ चुगाना, बन्दरों को चने चबवाना, कछुओं को राम नाम की गोलियाँ निगलवाना—इन्हीं महाजातियों का काम है! दूसरी जातियों से यह काम न हुआ है और न हो ही सकता है। यह जाति किसी को भूख से मरता हुआ देख ही नहीं सकती। देखे तो तब, जब आदत हो—आदत तो है ही नहीं, देखे कैसे? अतएव इस जाति के अधिकांश लोग इस समय दिलोजान से अँगरेजों की सहायता कर रहे हैं। पिकेटिङ्ग होते हुए भी अनेक प्रकार के छल-बल करके ये लोग विलायती कपड़े की निकासी करते ही हैं। क्या करें आदत से लाचार हैं। जिस समय ये लोग चटपटा और झोलदार भोजन करने बैठते हैं, उस समय मुँह में दिया हुआ कौर नाक के रास्ते बाहर निकलने लगता है। क्यों? यह सोच कर कि हाय! लंकाशायर में इस समय लाखों आदमी भूखों मर रहे हैं। हम इस समय इस आलू के झोल में गोता मार रहे हैं और उन्हें उबले आलू भी नसीब न हुए होंगे। यह विचार आते ही उनका दया-भाव पददलित सर्प की भाँति जाग्रत हो उठता है। उस समय ये लोग यह भीष्म प्रतिज्ञा करते हैं कि चाहे जो कुछ हो, चाहे स्वराज्य मिले या न मिले, चाहे गांधी जी जेल ही में पड़े रहें—क्योंकि उनको तो जेल में भी भोजन मिलता ही है, दूसरे जेल में रहने की उनकी कुछ आदत भी पड़ गई है—इसमें हमारा क्या दोष है—परन्तु लंकाशायर वालों के लिए कम से कम दोनों समय

डबल रोटी और मक्खन का प्रबन्ध होना ही चाहिए। इधर उन्होंने यह किया और उधर दिमाग़ की फ़ैक्टरी में 'वल्लायती' माल निकालने की युक्तियाँ सोची जाने लगीं। उन्होंने कैसी-कैसी युक्तियाँ निकालीं, इसका प्रमाण आपको मिला ही होगा। कलकत्ते में इन लोगों ने पिकेटर्स को गुण्डों द्वारा पिटवाया, पुलिस की सहायता ली। पालकियों में जनानी सवारी के बहाने विलायती कपड़ा निकलवाया। मुर्दों की अर्थियाँ बना कर और उसमें लाश की जगह वलायती धोती जोड़े लदवा कर बाहर भेजे। वह तो कहिये पिकेटर्स को भगवान समझे!! उन्होंने एक ही रात में एक ही घर से दो अर्थियाँ निकलते देख कर सन्देह किया—यद्यपि सन्देह करने का उनका कोई अधिकार नहीं था!! हैजे और प्लेग में एक-एक घर से एक-एक दिन में चार-चार अर्थियाँ निकल चुकी हैं—उस समय किसी भकुए को सन्देह नहीं हुआ। परन्तु आजकल केवल दो अर्थी देख कर ही सन्देह कर बैठा! यह अन्धेर नहीं तो और क्या है? तो सम्पादक जी, पिकेटर्स को सन्देह हो गया और उन्होंने अर्थी की जाँच की तो उसमें लाश के स्थान में धोती-जोड़े निकले!!! अतएव उन्होंने इस युक्ति से काम लेना बन्द कर दिया। यदि युक्ति कारागर होती रहती तो कलकत्ते के व्यापारिओं के घर में बे मौसम की महामारी फैल जाती। हमारे नगर में भी कुछ व्यापारियों ने, जो कि कांग्रेस के कार्य-क्रम से पूर्ण सहानुभूति रखते हैं और हाथ-पैर बचा कर भाग भी लेते रहते हैं, विदेशी कपड़ों की गाँठों को स्वदेशी गाँठों का रूप देकर इधर-उधर भेजना आरम्भ किया था, परन्तु शक्की पिकेटर्स तथा स्वयम्-सेवकों ने भण्डाफोड़ कर दिया। न जाने ऐसे शक्की आदमियों को कांग्रेस कमेटियाँ कैसे भर्ती कर लेती हैं। शक्की आदमी बहुत बुरा होता है—ऐसे आदमी को तो पास न फटकने देना चाहिए। सो यहाँ तक तो इन दया के पुतलों ने किया। अपने देशवासियों को गुण्डों और पुलीस से पिटवाया, जाल किया, फ़रेब किया—क्यों? वही आदत की लाचारी से! परोपकार की आदत के कारण ये सब जिल्लतें उठानी पड़ीं!!

कुछ मूर्ख लोग समझते हैं, समझते ही नहीं, खुल्लम-खुल्ला कहते भी हैं, कि व्यापारी लोग यह सब अपने स्वार्थ के लिए करते हैं। अपने राम उनके इस विचार और इस कथन से रत्ती भर तो क्या, पसेरी दो पसेरी भी सहमत नहीं हैं। अपने स्वार्थ के लिए कोई इतनी जिल्लत और बदनामी उठा ही नहीं सकता, और कोई चाहे भले ही उठा ले, परन्तु मारवाड़ी और बनिये, जिनके हाथ में व्यापार की बागडोर है, ऐसा कदापि नहीं कर सकते। इन्हें तो केवल दया खाए जाती है और कुछ परलोक का विचार! हिन्दू-धर्म यह चीख-चीख कर कहता है कि इस लोक में जैसा करोगे वैसा परलोक में भोगोगे, इस लोक में जो दोगे वही परलोक में पाओगे! इसका तत्त्व हमारे व्यापारी भाई ख़ूब समझते हैं। वह जानते हैं कि यदि इस लोक में वे किसी की रोटी छीनेंगे तो परलोक में उन्हें भी रोटी नसीब न होगी। और यदि इस लोक में वे दूसरों की रोटी का ख्याल रक्खेंगे तो उन्हें भी परलोक में फुलके, पूरी, पराठे और चटपटे झोलदार आलू मिलते रहेंगे। अतएव वे परलोक का प्रबन्ध पहले करते हैं। इस लोक में वे भूखों मर सकते हैं, परन्तु परलोक में—हरे! हरे! परलोक में तो एक क्षण भी भूखे नहीं रह सकते!! केवल यही एक कारण है, जिससे कि वे लंकाशायर वालों की रोटियाँ छीनने का विचार तक नहीं कर सकते; और इस लोक में उन्हें अब आवश्यकता ही क्या रह गई है जो वे अपने स्वार्थ के लिए ऐसा करेंगे? उन्होंने अपने जीवन भर के गुज़ारे के लिए यथेष्ट कमा लिया है; अब उन्हें अपनी परवा उसी प्रकार नहीं है, जिस प्रकार कि बूढ़ी बिल्ली को चूहों की परवा नहीं रहती। अतएव उन पर यह दोषारोपण करना, कि वे अपने स्वार्थ के लिए ऐसा करते हैं, उतना ही असंगत है, जितना कि उलूक पर सूर्य से असहयोग करने का दोषारोपण करना। हाँ, यह कहा जा सकता है कि उनमें कृतज्ञता का माद्दा अभी विद्यमान है। वे विलायत वालों के कृतज्ञ हैं। जिनकी बदौलत वे इतने मालदार बन गये—मुल्लू से सेठ मूलचन्द अथवा लाला मूलचन्द बन गये, उनके प्रति कृतघ्नता कैसे करें! जो समय पड़ने पर अपनी सहायता करे तो

समय पड़ने पर उसकी सहायता भी अवश्य करनी चाहिए। यह भाव इन लोगों में काम कर रहा है। अन्यथा ये लोग कुछ नासमझ नहीं हैं—करोड़ों का व्यापार करते हैं। करोड़ों का व्यापार करने वाले कहीं नासमझ हो सकते हैं ? यदि कोई गुण-ग्राहक हो तो वह समझे कि ये लोग कितने वफ़ादार हैं। परन्तु अन्धे के आगे रोवे अपनी आँखें खोवे। जिसमें वफ़ादारी का माद्दा नहीं, वह भी कोई आदमी है ?

सम्पादक जी, दुनिया चाहे कुछ बके, काँग्रेस के अनुयायी चाहे जो कहें; क्योंकि वे इस समय अपने स्वार्थ के कारण अन्धे हो रहे हैं—सत्यासत्य का ज्ञान उनमें नहीं है; परन्तु अपने राम तो यही कहेंगे कि व्यापारी लोग यदि चुरा-छिपा कर विलायती माल की निकासी कर रहे हैं तो बड़ा अच्छा कर रहे हैं। ईश्वर इन्हें इसका फल देगा। प्रथम तो इन लोगों के शाप से भारत को स्वराज्य मिलेगा ही नहीं—यद्यपि यह कहावत है कि चमार के कोसे ढोर नहीं मरते; परन्तु यह कहावत इन लोगों पर लागू नहीं हो सकती; क्योंकि न तो काँग्रेस ढोर है और न ये लोग चमार—और यदि धोखे से स्वराज्य मिल भी गया, तो भी इन्हें कुछ परवा नहीं—सब लोग अपना बोरिया-बँधना सँभाल कर इङ्गलैण्ड में जा बसेंगे। इस दशा में भी भारत की बहुत बड़ी हानि होगी; क्योंकि भारत में व्यापार का चिह्न तक न रह जायगा। जब व्यापारी जाति ही न रहेगी, तो व्यापार करेगा कौन—और कोई करेगा तो हानि उठाएगा; क्योंकि कहावत है कि तेली का काम तम्बोली कभी नहीं कर सकता !

मुझे पूर्ण आशा है कि आप मेरे विचारों से उसी प्रकार सहमत होंगे जिस प्रकार कि मैं उपरोक्त व्यापारियों के विचारों से सहमत हूँ।

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: ४ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

बड़ा ग़जब हुआ ! बड़ा अन्धेर हुआ ! मौलाना शौकतअली गोलमेज़ कान्फ्रेन्स में आखिर नहीं बुलाये गए ! इतने भारी-भरकम लीडर और कान्फ्रेन्स से अलकत ! यह माना कि वह दो आदमियों का स्थान घेरते और शायद इसीलिए बुलाए भी नहीं गए कि वहाँ गिनी हुई सीटें हैं—यदि एक आदमी दो आदमियों की जगह घेर ले तो एक आदमी कम हो जाय। परंतु फिर भी उन्हें बुलाना ज़रूर चाहिए था। वह तो इतने सीधे-सादे आदमी हैं कि जगह न होती तो खड़े ही रहते। और अब भी वह जायँगे अवश्य, चाहे कान्फ्रेन्स-भवन की परिक्रमा ही करते रहें। क्योंकि वह बड़े हठी और दृढ़-प्रतिज्ञ हैं। कोई आश्चर्य नहीं जो वहीं सत्याग्रह ठान दें। यद्यपि सत्याग्रह के वह विरोधी हैं और मुसलमानों को यही शिक्षा दिया करते हैं कि सत्याग्रह से अलग रहो। और अधिकांश मुसलमानों ने उनकी यह बात मानी भी खूब। लीडर की बात मानना ही चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि मौलाना सोचते बड़ी दूर की हैं। वह जानते थे कि सत्याग्रह करने से जानवरों की तरह जेल में बंद कर दिए जायेंगे और गोलमेज़ कान्फ्रेंस में नहीं जा सकेंगे। इसलिए सत्याग्रह से अलग रहना ही ठीक है। जेल के बाहर रहेंगे तो कान्फ्रेंस में पहुँच ही जायेंगे—सरकार नहीं बुलाएगी तो स्वयं चले जायेंगे। क्या उनके पास सफर-खर्च नहीं है। या उन्हें रास्ता नहीं मालूम ! सरकार ने उनके साथ थोड़ा-सा अन्याय किया। उन्होंने तो यह नेकी की कि मुसलमानों की एक बड़ी तादाद को सत्याग्रह से अलग रक्खा—केवल इसलिये कि सरकार उन्हें अपना दोस्त समझे; परंतु सरकार ने उन्हें

मौके पर पूछा तक नहीं। इसीसे कहना पड़ता है कि नेकी का जमाना ही नहीं रहा। यदि मौलाना चाहते तो सब मुसलमानों को सत्याग्रह में जुटा देते। तब सरकार को मजबूरन स्वराज्य देना पड़ता। और अब भी मौलाना चाहें तो लेटे-लेटे स्वराज्य ले सकते हैं। और कान्फ्रेंस में पहुँच जायँ तो खड़े-खड़े स्वराज्य टहला दें; क्योंकि वहाँ बैठने के लिए उन्हें जगह मिलेगी ही नहीं।

मुसलमानों में जितना आदर मौलाना का है उतना किसी का नहीं है। कुछ मुसलमान कांग्रेस से रुपया लेकर काँग्रेस का राग अलापने लगे; परंतु मौलाना पर काँग्रेस का जादू नहीं चल सका। इसीलिए उनका इतना आदर है कि मुसलमानों में जितने बहादुर और समझदार लोग हैं वे सब मौलाना के अनुयायी हैं। ठेले वाले, ताँगे वाले, कसाई, कुंजड़े मौलाना की बात मानते हैं। और मानें क्यों नहीं? मौलाना उनके मन की जो कहते हैं। मौलाना कहते हैं सत्याग्रह मत करो, जेल मत जाओ। कितनी प्यारी बात है। कांग्रेस वाले कहते हैं, जेल जाओ, गोली खाओ, मर जाओ। ओफ! कितनी दिमाग़ परेशान करने वाली बात है। स्वराज्य जब मिलेगा तो सबको मिलेगा। यह तो होगा नहीं कि हिंदुओं को मिले और मुसलमानों को न मिले, अतएव मुफ़्त में मुसीबत उठाने से क्या लाभ? जब स्वराज्य की हँडिया पककर तैयार होगी तो हिस्सा बँटाने के लिये मुसलमान भाई दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए आ ही धमकेंगे। तब हिन्दुओं को मजबूर होकर हिस्सा देना ही पड़ेगा। अब कहिये— होशियार कौन है? यह मौलाना के दिमाग़ की उपज है। फिर भी कुछ लोग मौलाना को बेवक़ूफ़ समझते हैं। हालाँकि वह जितने बेवक़ूफ़ समझे जाते है, उतने कदापि नहीं हैं।

दूसरे एक बात यह भी है कि शासन करने वाले ही शासकों की कठिनाइयों को समझ सकते हैं। ग़ुलाम लोग क्या समझेंगे। मुसलमान लोग उन्नीसवीं शताब्दी तक शासक रहे हैं—हिन्दुओं को ग़ुलामी करते सदियाँ बीत गईं। अतएव मुसलमान लोग अङ्गरेजों की कठिनाइयों को समझ कर उनसे सहानुभूति रखते हैं। मौलाना शौकतअली का भी यही

कहना है कि हिन्दोस्तान में केवल मुसलमान ही शासन कर सकते हैं; क्योंकि उनके शरीर में हुकूमत का खून अभी तक मौजूद है। कदाचित इसीलिये मुसलमान लोग सत्याग्रह से अलग रहते है कि सत्याग्रह में मार पड़ेगी, गोली चलेगी तो उसमें शरीर का रक्त निकलेगा। यदि यह हुकूमत से भरा हुआ ख़ून निकल गया तो फिर हुकूमत काहे से की जायेगी। जब हुकूमत का रक्त ही न रहेगा तो हुकूमत करेगा कौन? इसलिए मुसलमान भाई अपने रक्त की बड़ी हिफाजत कर रहे हैं। यदि यह डौल भी होता कि यह रक्त निकल जाने से इसकी फिर पूर्ति हो सकेगी तब भी ग़नीमत था; परन्तु ऐसा होता दिखाई नहीं देता। यदि तुर्किस्तान यह वचन दे दे कि जितना रक्त आवश्यक होगा उतना यहाँ से भेज दिया जायगा, तब तो मुसलमान भाई आँखें मींच कर सत्याग्रह में जुट पड़ें। परन्तु अब तुर्किस्तान वह तुर्किस्तान नहीं रहा— वह रक्त तो क्या, खारा पानी भी नहीं भेजेगा। इसलिये मुसलमान बेचारे मजबूर हैं।

इसके अतिरिक्त शासकों का काम क़ानून बनाना और उसे मनवाना होता है। सत्याग्रह में क़ानून तोड़ा जाता है। मुसलमान लोग जो अभी परसों तक शासक रहे हैं और अपनी तबियत से अब भी हैं—वे क़ानून तोड़ना क्या जानें। न जानते ही हैं, और न उनकी इच्छा ही होती है। जहाँ क़ानून का नाम आया, वहाँ उन्हें याद आगया कि कभी हम भी इसी प्रकार क़ानून बनाते थे। यह याद आते ही उन्हें क़ानूनों से इतनी सहानुभूति उत्पन्न होती है कि वह उन्हें तोड़ने का ध्यान तक नहीं ला सकते। जिसके कभी सन्तान रही हो वही सन्तान की क़द्र समझ सकता है—निसन्तान नहीं समझ सकता।

विदेशी बॉयकॉट के सम्बन्ध में भी मुसलमान भाइयों का दृष्टिकोण अपने राम की समझ में बहुत ठीक है। विदेशी का बॉयकॉट तो तब करें जब स्वदेशी मिले। सो हिन्दुस्तान में उन्हें स्वदेशी वस्तुएँ कहाँ मिल सकती हैं। हिन्दू हिन्दुस्तान की बनी हुई वस्तुओं को स्वदेशी समझते हैं; परन्तु मुसलमानों के लिए वह स्वदेशी नहीं है। उनके लिए तो

नहीं वस्तु स्वदेशी हो सकती है, जो तुर्किस्तान अथवा अरब की बनी हुई हो।

सम्पादक जी, आप कदाचित सोचें कि अरब और तुर्किस्तान वाले तो इन्हें टके को नहीं पूछते और ये इनके विचार हैं। परन्तु आप मुसलमानों की सुशीलता को नहीं समझते। अपना भाई यदि नालायक़ निकल जाय और अपने को भाई न समझे तो अपना यह कर्त्तव्य नहीं है कि हम उसे भाई न समझें। अपना कर्त्तव्य तो यह है कि वह अपने को चाहे/ जूतों से पीटे, परन्तु हम उसे अपना भाई ही समझते रहें। मुसलमान लोग इसी सिद्धान्त पर जमे हुए हैं।

और सब से बड़ी बात तो धर्म की है। इसलाम धर्म कहता है कि इस मर्त्यलोक में जो वस्तु त्याग दी जायगी वह स्वर्ग लोक में प्रचुर परिमाण में और उत्तमोत्तम मिलेगी। शराब पीना इसलाम धर्म में हराम है। अतएव जो यहाँ शराब नहीं पीते, उन्हें स्वर्ग में बड़ी उत्तम शराब मिलती है और पेट भर मिलती है। जो लोग इस लोक में स्त्रियों का त्याग करते हैं उन्हें स्वर्ग में हूरें मिलती हैं। इसी प्रकार सब पदार्थों को समझ लीजिए। अतएव मुसलमान भाई इस लोक में स्वराज्य लेने की आकांक्षा इसीलिए नहीं रखते कि ऐसा करने से स्वर्ग में उन्हें अखण्ड स्वराज्य की प्राप्ति होगी। स्वर्ग के स्वराज्य के आगे इस लोक के स्वराज्य की क्या हस्ती है। इस लोक का स्वराज्य तो बहुत थोड़े दिनों भोगने को मिलेगा, परन्तु परलोक का स्वराज्य स्थायी वस्तु होगा। स्थायी वस्तु को छोड़ कर अस्थायी चीज के पीछे पड़ना महामूर्खता है। मुसलमान लोग यह भी समझते हैं कि वे संख्या मे हिन्दुओं की अपेक्षा बहुत थोड़े हैं, इसलिए उन्हें सच्चा स्वराज्य कभी नहीं मिल सकता। सच्चा स्वराज्य मिलेगा भी तो केवल हिन्दुओं को। अतएव स्वयम् मर-खप कर हिन्दुओं को स्वराज्य दिलाना कहाँ की बुद्धिमानी है। यह तो अपने पैर में आप ही कुल्हाड़ी मारना है। सो जनाब, मुसलमान ऐसे बेवक़ूफ़ नहीं हैं जो ऐसा करें। ईश्वर ने यह बात हिन्दुओं को ही दी है कि पैर में क्या, ये लोग अपने हाथों से अपने सिर

में कुल्हाड़ी मार लें। जो मुसलमान मुसलमानों से सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने के लिए कह रहे हैं, वे नासमझ हैं, दूर की बातें सोचने का उनमें माद्दा ही नहीं। दूर की बात वे सोचते हैं जो राउण्डटेबुल कान्फ्रेन्स में जायँगे --विलायत की सैर करेंगे, अपने अधिकारों के लिए लड़ेंगे और लौटते हुए हज भी करते आवेंगे। बतलाइए-यह बुद्धिमानी है या यहाँ सत्याग्रह के पचड़े में पड़ कर लाठियाँ खाना और जेल में बन्द होना? इसमें सन्देह नहीं, मुसलमान लोग बड़े बुद्धिमान हैं, क्यों सम्पादक जी, आपका क्या विचार है?

भवदीय
—विजयानन्द (दुबे जी)

: ५ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

"अण्डाकार मेज़ कॉन्फ्रेन्स" आरम्भ हो गई। चौंकिए नहीं। गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स अब अण्डाकार मेज कॉन्फ्रेन्स होगई है। क्योंकि सभा में गोलमेज न रक्खी जाकर, अण्डाकार मेज रक्खी गई।

गोलमेज उड़ाकर अण्डाकार मेज़ क्यों रखी गई? इसका रहस्य अपनेराम के अतिरिक्त संसार में और कोई नहीं जानता। जानें भी कैसे? अपनेराम की जैसी दिव्यदृष्टि और सीधी खोपड़ी भी तो हो। सुनिए, अण्डाकार मेज कान्फ्रेन्स का अर्थ यह है कि अन्त में भारतवासियों के हाथ में अण्डा ही रहेगा। अजी, गोलमेज़ में तो सब का पद बराबर था, परन्तु अण्डाकार में बराबर रह सकेगा या नहीं, इसमें अपने राम को जरा भी छोटा सन्देह नहीं है। अब यदि हिन्दुस्तान को कुछ न मिले और बाद को हिन्दुस्तानी यह कहें, कि गोलमेज़ कान्फ्रेन्स करके भी कुछ न दिया; तो ब्रिटिश सरकार साफ़ कह देगी कि हमने गोलमेज़ कान्फ्रेन्स कब की, हमने तो अण्डाकार मेज़ कान्फ्रेन्स की थी।

अण्डाकार मेज़ कान्फ्रेन्स करने का एक कारण और भी है। कांग्रेस के प्रतिनिधि कान्फ्रेन्स में सम्मिलित नहीं हुए, यह बात ब्रिटिश सरकार की आंख में शहतीर की तरह खटक रही है। उसने सोचा कि जब कांग्रेस ही सम्मिलित नहीं हुई, तो गोलमेज़ कान्फ्रेन्स का क्या महत्व रहा, अतएव इसे अण्डाकार कर दो। बात पड़ेगी तो यह कहने की जगह रहेगी कि काङ्ग्रेस सम्मिलित नहीं हुई, इसीलिए गोलमेज नहीं रक्खी गई। आखिर गोलमेज़ की इज्जत तो किसी तरह क़ायम ही रहनी चाहिए। इतनी पुरानी चीज़ और किङ्ग आर्थर की

यादगार ! उसकी इज्जत-आबरू का जितना ब्रिटिश सरकार को ख्याल है, उतना और किसी को कैसे हो सकता है ? कभी नहीं हो सकता। इधर हिन्दुस्तान से जो लोग कान्फ्रेन्स में गए हैं, उनका कथन है कि उनका समुचित स्वागत नहीं किया गया। समाचारों से भी ऐसा ही प्रतीत होता है, कि उनका अच्छा स्वागत नहीं हुआ। इसमें भी अपने राम को आश्चर्य करने की गुन्जायश नहीं मिलती। "झूठों बुलाओ सच्चों दौड़े जाओ" वालों का स्वागत ऐसा ही होता है। यार लोग एक दफ़े के कहने से ही कमर बाँध कर तैयार हो गए। अरे भाइयो ! ऐसी जल्दी क्या पड़ी थी ? कुछ तो नखरा करते, कुछ तो खुशामद कराते। यदि अपने राम कान्फ्रेन्स में बुलाए जाते तो नखरे कर-करके ब्रिटिश सरकार की नाक में दम कर देते। कम से कम तीन दफ़ा बम्बई जाकर लौट आते। चौथी दफा जहाज़ में सवार होकर जाते और अदन में पहुँच कर फिर मचल जाते कि—ऊँहूँ अब तो अपने राम घर जायँगे—बाज़ आए ऐसी कान्फ्रेन्स से।" लोग फिर खुशामद करते—तत्तोथम्बो करके शान्त करते। तब मारसलीज़ में जाकर कुछ रङ्ग लाते। इस प्रकार बार-बार मचलते और नखरे करते हुए लन्दन पहुँचते। नाक पर मक्खी तक बैठ जाती, तो फट बिगड़ खड़े होते कि अब हम नहीं जायँगे। फिर देखते कि लन्दन में कैसा स्वागत होता। स्वागत का प्रबन्ध करते-करते ब्रिटिश सरकार की हुलिया बिगड़ जाती। लन्दन भर की मक्खियों पर दफ़ा १४४ लगाई जाती कि कहीं ऐसा न हो कोई मक्खी दुबे जी की नाक पर बैठ जाय तो दुबे जी रस्सियाँ तुड़ा कर भागें। जिस रास्ते से जाते, उस रास्ते में यह आर्डर जारी होता कि कोई दुबे जी की आँख से आँख न मिलावे। जिस होटल में ठहरते उस होटल में अपने राम के अतिरिक्त और कोई न रहने पाता। इस प्रकार जाते तो स्वागत होता। उन लोगों का स्वागत क्या हो जो अपने पास से जहाज़ का किराया देकर जाने को तैयार बैठे थे। सम्पादक जी, सच मानिएगा—बहुतों को तो यह भय रहा होगा कि हमसे कोई बात ऐसी न हो जाय कि कान्फ्रेन्स की सदस्यता से निकाल बाहर किए जायें। जो लोग म्युनिसिपैलिटी,

काउन्सिल और एसेम्बली की मेम्बरी के लिए पेट के बल चलने को तैयार रहते हैं, उनके लिए तो इस कान्फ्रेन्स की मेम्बरी अल्लाह मियाँ की पैग़म्बरी के बराबर है। स्वागत न हो, न सही—कान्फ्रेन्स में तो बैठेंगे ही—बस सब ठीक है। परदेश में लोग जूते खाकर भी चुपचाप धूल झाड़कर चले आते हैं। वहाँ कौन जानता है कि श्रीमान जी कौन हैं। परदेश में मानापमान का विचार नहीं करना चाहिए—यह बड़े पुराने आदमियों का कथन है। कान्फ्रेन्स के मेम्बर इस स्वर्णोपदेश को समझते हैं। वहाँ कुछ अपमान भी हुआ तो क्या हुआ—वहाँ उन्हें किसी से रिश्तेदारी तो करना ही नहीं है। हिन्दुस्तान में आवेंगे तब समाचार-पत्रों में दो चार लेख लिख कर लीपा-पोती कर देंगे, कि इसमें यह ग़लत-फ़हमी हो गई थी, यह अन्तर पड़ गया था। यह तो अपने बाएँ हाथ का खेल है। जब हिन्दुस्तान में ही अपनी करतूतों के तीन सौ साठ मतलब निकाले जा सकते हैं और जनता की आँखों में धूल झोंकी जा सकती है, तब सात समुद्र पार की तो बात ही क्या है। और जब तक लौट कर आएँगे, तब तक बात भी पुरानी पड़ जायगी। उस समय तक सम्भव है लोग इस घटना को भूल भी जायँ। इसके अतिरिक्त यदि अण्डाकार मेज़ ने इन्हें कोई बच्चा थमा दिया तो फिर क्या है—"कमाऊ पूत" बनकर लौटेंगे। फिर किसी की क्या मजाल कि कुछ कह सके। इसी प्रकार की बातें सोच कर मेम्बरों ने इस अपमान को जेब में रखलिया!!

एक मज़ेदार घटना और हुई। मेम्बर लोग जब हवाई जहाज़ों के तबेले का निरीक्षण करने पहुँचे, तो वहाँ एक अंगरेज़ ने प्रश्न किया कि "क्या आप में से कोई अंगरेजी भी जानता है?" वल्लाह क्या कही है—जी खुश हो गया! पूछिए अंगरेजी जानते होते तो कान्फ्रेन्स में जाते। यदि अंगरेजी जानते होते तो अंगरेज़ों को समझते और जब अंगरेज़ों को समझते तो कान्फ्रेन्स को दूर से नमस्कार करके अपने घर में बैठे रहते। प्रश्नकर्ता ने समझ लिया कि ये लोग अंगरेजी नहीं जानते, तभी कान्फ्रेन्स में बुलाए गए और दौड़े चले भी आए। अपने राम होते तो तुरन्त उत्तर देते कि "भाई अंगरेजी जानते होते तो तुम्हारे वर्तमान हमें

कहाँ मिलते । यदि कृपा करके थोड़ी सी पढ़ा दो तो अब भी हम कान्फ्रेन्स को नमस्कार करके घर लौट जायें।" सम्पादक जी, भारतवासी जो अंगरेजी जानते हैं, वह वास्तव में असली अँगरेजी नहीं है। वह तो "क्लारिकल भाषा" है। असली अंगरेजी जानने वाले भारतवर्ष में इने-गिने निकलेंगे। उनसे अंगरेज़ लोग ज़रा चौकन्ने भी रहते हैं और बहुत समझ कर बात करते हैं। चलिए यह पता भी लग गया कि कान्फ्रेन्स में जितने पहुँचे हैं, उनमें से अंगरेजी कोई नहीं जानता। ये मेम्बर लोग भी भारतवर्ष की सेशन्स अदालत के असेसर्स के तुल्य समझ कर बुला लिए गए! खैर जो होगा, अपने राम से क्या? अपने राम नहीं बुलाए गए, इसलिए यह सब हो रहा है। अपने राम बुलाए जाते, तो मसा तक तो भनकता नहीं!!

सुनने में आरहा है कि कान्फ्रेंस में हिन्दू-मुसलमान मेम्बरों में मतभेद है। होना ही चाहिए। बिना इसके तो मजा भी नहीं आएगा। यह मतभेद भी तो अंगरेजी न जानने का परिणाम है! अंगरेजी जानते होते तो मिल कर काम करते। अपने घर में तो सिरफुटौव्वल होती ही रहती है, बाहर भी तो कुछ होना ही चाहिए। लन्दन वाले अभी तक तो समाचारों में ही पढ़ते रहे, अब जरा अपनी आँखों से भी "गुलाबो-शिताबो" की लड़ाई देख लें—कैसी नाक पर उँगली रख कर लड़ती हैं! यह कहे मैं सुर्मेदानी लूँगी, वह कहे मैं पानदान लूँगी। हालाँकि, भगवान ने चाहा तो दोनों के हाथ पीकदान के अतिरिक्त और कुछ न आएगा! खैर जी, जो कुछ होगा सामने आ जायगा। परन्तु होगा वही, जो अपने राम ने समझ रक्खा है; क्योंकि ब्रिटिश सरकार और कान्फ्रेन्स के सब सदस्य इस बात की पूरी चेष्टा कर रहे हैं, कि दुबे जी ने अपने मन में जो भविष्यवाणी की है, उसे अवश्य सफल बनाना चाहिए। और यह इसलिए, कि अपने राम ब्रिटिश सरकार और कान्फ्रेन्स के मेम्बरों के बड़े जोरों से भक्त हैं। और तमाम ज़माने भर के भगवान अपने भक्तों की भविष्यवाणी पूरी करते हैं। आशा है यह बात आप भी मानोगे।

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: ६ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

उस दिन भारत के प्रधान सेनापति की बिदाई के भोज में जो स्पीचें हुई थीं, उसमें एक महोदय ने फ़र्माया कि "हम लोग युद्ध के लिए इस समय जितने तैयार हैं उतने कभी नहीं थे।" यह पढ़कर अपने राम की बाईं आँख फड़कने लगी। सोचा, यह युद्ध की तैयारी क्यों? किस पर चढ़ाई होगी, किसका घर लूटा जायगा? आखिर भारतीय सेनाओं को युद्ध की तैयारी से क्या सरोकार? भारत में जो आन्दोलन चल रहा है, उसके लिए पुलिस और उसके डण्डे ही काफी हैं! सोचते-सोचते ध्यान आया कि 'बालकन' के सम्बन्ध में इटली और फ्रांस में जो रंजिश बढ़ रही है—कदाचित उसी के लिए हमारी ब्रिटिश सरकार तैयारी कर रही है; क्योंकि ब्रिटिश सरकार तो ईश्वर की दया से खुदाई फौजदार है। तमाम जमाने का ठेका लिए है। काज़ी जी शहर के अन्देशे से ही दुबले रहते हैं—ब्रिटिश सरकार पर तो सारी पृथ्वी का अन्देशा सवार रहता है। ब्रिटिश सरकार की तो यह दशा है कि "गम नदारी बुजबखर" (कोई चिन्ता न हो, तो भेड़ खरीद लो, चिंता हो जायगी) खाली बैठे शरीर में जंग लग जाने का भय रहता है—इसलिए कोई न कोई शिगूफा होना ही चाहिए। यह तो अपने राम का अनुमान है। परन्तु ब्रिटिश सरकार के विधाता क्या करेंगे और इनके मन में क्या है, इसका पता मनुष्य को क्या, ब्रह्मा को भी नहीं लग सकता। और की तो बिसात ही क्या है, खास इंगलैण्ड की जनता को इनकी माया का पार नहीं मिलता। भारत की सच्ची खबरें प्राप्त करने के लिए इङ्गलैंड में एक कमेटी बनी है। मालिकों तक को अपने राज्य की घट-

नाओंके सम्बन्ध में सच्ची खबरें नहीं मिलतीं। वाह रे मालिक और वाह रे नौकर ! इंगलैण्ड की जनता अपने को साम्राज्य का मालिक समझती है। और कायदे से उसे ऐसा समझना ही चाहिए। अजी जनाब, चाहे कोठीकोठले को हाथ लगाना नसीब न हो, परन्तु घर-द्वार तो अपना है। यों दिखाने के लिए इंगलैण्ड में पार्लियामेण्ट है; परन्तु शासन केवल मुट्ठी भर आदमी करते हैं। इन्हीं मुट्ठी भर आदमियों की मुट्ठी में इंगलैण्ड तथा उसके मातहत देशों का भाग्य बन्द रहता है। गत महायुद्ध में इन्हीं मुट्ठी भर आदमियों ने लाखों आदमी कटवा दिये थे। सन्, १९१४ की ३ अगस्त के प्रातःकाल तक इंगलैण्ड को तो क्या, पार्लियामेण्ट के मेम्बरों तक को यह पता नहीं था, कि इंगलैण्ड को भी युद्ध में भाग लेकर अपने बच्चों को कटवाना पड़ेगा। हालांकि यह बात एक वर्ष पहले तय हो चुकी थी। तय करने वाले ये ही मुट्ठी भर देवता थे। झूठ बोलने में ये देवता इतने बढ़े-चढ़े हैं कि भगवान की माया भी इनके आगे तोबा बोलती है। सन्, १९१३ को १० मार्च को लार्ड 'हृफ़ सेसिल' ने प्रधान मन्त्री से पूछा था—"क्या इंगलैण्ड ने फ्रांस को, समय पड़ने पर, फौज की सहायता देने का वचन दिया है।" प्रधान मंत्री महोदय ने साफ इन्कार कर दिया—बोले, "यह बिलकुल गलत बात है, ऐसा कोई वचन नहीं दिया गया है।" हालांकि ऐसा वचन सन्, १९१३ की १० मार्च के बहुत पहले दिया जा चुका था! लार्ड सेसिल के प्रश्न के कुछ ही दिनों बाद सर विलियम बाइल्स ने भी यही प्रश्न किया; परन्तु उन्हें भी वही उत्तर दिया गया। प्रधान मंत्री के उत्तर के पश्चात् उसी समय सर एडवर्ड ग्रे ने भी बड़े जोरों से इस बात को अस्वीकार किया था। वही सर एडवर्ड ग्रे ३ अगस्त सन्, १९१४ की शाम को हाउस आफ कामन्स में बोले—"इस समय फ्रांस को सहायता देना इंगलैण्ड का कर्त्तव्य है, क्योंकि इसमें इंगलैण्ड की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। इस सम्बन्ध में फ्रांस तथा इंगलैण्ड के मध्य सन् १९०६ से परामर्श हो रहा था और उस परामर्श के फलस्वरूप हम फ्रान्स को सहायता देने के लिए बाध्य हैं।" यह सुन कर पार्लमेण्ट के

मेम्बर अवाक् रह गए।

सम्पादक जी! देखा आपने, क्या कमाल है। सन् १६०६ से जो बात तय हो रही थी और जो सम्भवतः सन्, १६१४ के कई वर्ष पहले तय हो चुकी थी, उस बात का पता पार्लामेण्ट के मेम्बरों को १६१४ की ३ री अगस्त को लगता है (दुबे जी महाराज! मैं व्यक्तिगत रूप से एक मजेदार बात आपको और भी बतला देना चाहता हूँ, अपनी डायरी में नोट कर लीजिए, कभी काम देगी। आप शायद यह बात भूल गए कि 'राजविद्रोह' के अपराध में जो अभागे भारतीय नवयुवक "मेरठ-षड्यंत्र" वाले केस में सन्, १६२६ के मार्च मास में पकड़े गए थे (क्षमा कीजिएगा, तारीख याद नहीं पड़ती) और जो आज तक जेल में पड़े सड़ रहे हैं—उनकी गिरफ्तारी का समाचार बेचारे इंगलैंड वालों को पहली बार मिला था ८ वीं सितम्बर, १६३० को। और लुत्फ यह कि यह समाचार यहाँ से 'तार द्वारा' भेजा गया था। इस बात का पहिली बार भण्डाफोड़ हुआ इसी २४ अक्टूबर को, जब कि मि० रेगिनाल्ड ने अपने व्याख्यान में इस कूटनीति को बड़े कड़े शब्दों में धिक्कारा था। विश्वास कीजिए, विलायती जनता में इस समाचार से एक बार ही तहलका मच गया था—सं० 'भविष्य'] और वह भी सर एडवर्ड ग्रे के बतलाने से—और ४ थी अगस्त को महायुद्ध आरम्भ हो जाता है! महायुद्ध आरम्भ होने के पहले जब कोई पार्लियामेंट का मेम्बर किसी केबिनेट मिनिस्टर से प्रश्न करता था कि—"भई, यह बालकन का झगड़ा कैसा है; इसका क्या परिणाम होगा?" तो केबिनेट मिनिस्टर साहब बड़ी लापरवाही से उत्तर देते थे—"वह एक बहुत छोटी बात है, हमें उसकी ओर ध्यान भी न देना चाहिए।" परन्तु उस छोटी बात ने संसार के कितने आदमियों के प्राण लिए, यह केवल इस बात से जाना जा सकता है कि यदि किसी सड़क पर एक रेखा खींच दीजिए और मनुष्यों की एक सीधी कतार से उस रेखा को पार करवाइये तो जितने आदमियों को उस रेखा के पार करने में चालीस महीने लगेंगे (ये आदमी रात-दिन चलते रहेंगे एक क्षण के लिये भी न रुकेंगे).

उतने आदमी गत महायुद्ध में स्वर्गलोक सिधारे !! यह न समझियेगा कि यह हिसाब मेरा लगाया हुआ है इसलिये "चण्डूखाना गज़ट" के योग्य है। अपने राम का हिसाब-किताब से सदा असहयोग रहा है। अपने राम ऐसे शुष्क और नीरस विषय के पास भी नहीं फटकते—यहाँ तक कि घर की आमदनी और खर्च का हिसाब-किताब भी लल्ला की महतारी के ज़िम्मे है ! अपने राम उस ओर से बेफिक्र हैं। सम्पादक जी ! यह हिसाब उन लोगों का लगाया हुआ है, जिन-जिन पर महायुद्ध की ज़िम्मेदारी थी। केवल इंगलैण्ड के पांच अरब पौण्ड (बहत्तर अरब रुपयों के लगभग) युद्ध में खर्च हुए थे। और युद्ध समाप्ति से आज तक इंगलैण्ड सत्रह लाख आदमियों को युद्ध-पेन्शन दे रहा है। इनमें डेढ़ लाख युद्ध-विधवाएँ हैं और शेष ऐसे लोग हैं, जो युद्ध में अन्धे, लूले-लँगड़े हो जाने के कारण अपनी जीविकार्जन करने में असमर्थ हैं। यह सब केवल एक छोटी सी बात के पीछे हुआ—और इसलिए हुआ, कि अपने को संसार में सबसे अधिक बुद्धिमान समझने वाले चन्द आदमियों ने अपने देश-वासियों ही को—उन देश-वासियों को जिन्होंने उन्हें अपनी रक्षा और पथ-प्रदर्शन के लिये नियुक्त किया था-धोका दिया और अंधकार में रक्खा ! यदि इंगलैण्ड की जनता को समय पर यह बतला दिया जाता, कि इंगलैण्ड को युद्ध में फ्रान्स की सहायता करनी पड़ेगी तो सम्भव है, जनता इस बात पर राजी न होती—और इसके विरुद्ध आन्दोलन करती। आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप इंगलैण्ड फ्रान्स को सहायता देने से इन्कार करता। इंगलैण्ड के इन्कार करने पर सम्भव है फ्रान्स, कोई बलवान सहायक न मिलने के कारण युद्ध को बचा जाता और सन् १९१४ से १९१८ तक का यूरोपियन इतिहास खून से तर न होने पाता ! केवल चन्द आदमियों की स्वेच्छाचारिता, धूर्तता, मिथ्याभाषण तथा बेईमानी ने इंगलैण्ड को और इंगलैण्ड के सहायक देशों को कितना बड़ा नुकसान पहुँचाया ? संधि होने पर इन्हीं धूर्तों ने विजय का ढोल पीट-पीट कर जबरदस्ती रोते हुओं को हँसाया। उस समय भी कुछ लोगों ने इस बात को समझा था और आज तो इंगलैंड

का प्रत्येक समझदार आदमी यह जान गया है, कि गत महायुद्ध में मिनिस्टर्स ने देश के साथ विश्वासघात करके देश के लाखों आदमी कटवा दिये, अरबों रुपये फूँक दिये और देश की छाती पर १७ लाख व्यक्तियों की पेनशन का व्यर्थ बोझ लाद दिया! इसीलिये फिर बालकन के सम्बन्ध में एक छोटी सी बात के लिये इटली तथा फ्रांस में मनमुटाव बढ़ता देख कर इंगलैण्ड के समझदार लोग निकट-भविष्य में एक संसार-व्यापी युद्ध का प्रादुर्भाव महसूस करते हुए अभी से यह कह रहे है कि "हम लोग युद्ध नहीं चाहते।" यहाँ तक कि वे "सन्धि-दिवस" तक को घृणा की दृष्टि से देखने लगे हैं और इस बात का आन्दोलन कर रहे हैं, कि सन्धि-दिवस मनाना बन्द कर दिया जाय। वे कोई कार्य और कोई बात ऐसी नहीं देखना चाहते कि जिससे कि उनका ध्यान युद्ध की ओर आकर्षित हो। इंगलैण्ड के फील्ड-मार्शल सर विलियम राबर्टसन ने कहा है—"युद्ध एक बहुत ही घृणित वस्तु है। वह विजेता के लिए भी उतनी ही घातक है, जितनी कि विजित के लिए! मेरा यह प्रस्ताव है, कि प्रत्येक मनुष्य को युद्ध के विरुद्ध आन्दोलन करना चाहिए और राजनीतिज्ञों को इस बात के लिए विवश करना चाहिए कि वे अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को सुलझाने का कोई शान्तिमय उपाय ढूँढे और युद्ध जैसे विनाशकारी उपाय को सदैव के तिलाञ्जिल दे दें। मुझे अपने पचास वर्ष के सैनिक जीवन से जो अनुभव हुआ है वह मुझे यह बात कहने के लिए विवश करता है।" सम्पादक जी! यह एक सेनापति के उद्गार हैं, युद्ध के नाम से भय खाने वाले किसी डरपोक-रईस के नहीं! आज इंगलैण्ड की जनता यह कह रही है कि "युद्ध तथा संधि करने के लिए हमारे यहाँ भी अमेरिका जैसी सुव्यवस्था होनी चाहिए।" अमेरिका में एक "पर-राष्ट्र-समिति" है। इस समिति के परामर्श बिना अमेरिकन सेनेट न किसी देश से संधि कर सकता है और न युद्ध। यह समिति युद्ध तथा संधि की उपयोगिता पर अपनी रिपोर्ट सेनेट में भेजती है। यह रिपोर्ट सेनेट में जाने के पहले सब समाचार-पत्रों में

प्रकाशित की जाती है और इस प्रकार अमेरिकन जनता को पता चल जाता है, कि समिति क्या करने का परामर्श दे रही है। उस समय जनता उसके पक्ष अथवा विपक्ष में आन्दोलन करती है—और इसी आन्दोलन के अनुसार सेनेट रिपोर्ट को पास अथवा रद्द करता है। इस प्रकार वहाँ जनता को अन्धकार में नहीं रक्खा जा सकता और उसको इस बात का मौका दिया जाता है, कि वह किसी बात का समर्थन अथवा खण्डन करे। कितनी अच्छी व्यवस्था है! परन्तु इंगलैण्ड के ठेकेदार अपने यहाँ ऐसी व्यवस्था नहीं रखना चाहते। ऐसा करने से उनके हौंसले कैसे पूरे होंगे। और अभी जो हालत है उससे उनके पितामह का क्या नुकसान है? उन्हें तो युद्ध में लड़ने जाना नहीं पड़ेगा। मरने कटने के लिए जनता है। उनके लिए जनता शतरञ्ज के मोहरे हैं, जो उनकी इच्छानुसार कटते-मरते हैं! खैर जी, अपने से क्या सरोकार! अपने राम को लड़ने नहीं जाना पड़ेगा इसलिए अपने राम भी उनसे किसी बात में कम नहीं हैं। लड़ाई हो तो अच्छा है—ज़रा लुत्फ ही देखने को मिलेगा। हिन्दुस्तानियों को भी लड़ाई की चाट पड़ी हुई है। क्योंकि गत लड़ाई के समय में यार लोगों ने खूब वारे-न्यारे किए थे। परन्तु अफसोस यही है कि ब्रिटिश सरकार दूसरों के पेट में पैर डालने के लिए तो सदा कमर बाँधे रहती है; परन्तु अपने मामलों को नहीं सुलझाती। दूसरों के साथ अन्याय होने पर बिना कहे पंच बनने को तैयार! और स्वयं जो दूसरों के साथ अन्याय करते हैं, उसके संबंध में ईसा मसीह की भी मानने को तैयार नहीं। परन्तु इस बार पञ्च बनने का मजा मिलेगा—क्योंकि उधर इंगलैण्ड की जनता भी अभी से चौकन्नी हो रही है और इधर भारत की जो दशा है, उसे देखते हुए प्रतीत होता है, कि यहाँ से भी गत महायुद्ध जैसी सहायता का चतुर्थांश भी कदाचित ही मिले। अतएव अपने राम की सलाह तो यह है कि इस बार ब्रिटिश सरकार के विधाताओं को जरा सोचसमझ कर काम करना चाहिए। ऐसा न हो कि चौबे जी दुबे जी ही रह जायँ, तो अपनेराम को उन्हें अपनी बिरादरी में शामिल करना पड़े-हालाँकि ऐसी

इच्छा बिलकुल नहीं हैं। सम्पादक जी ! इस बार जो युद्ध होगा वह बड़ा विकट होगा। स्वर्गीय मार्शल "फ्रॉश" कह गए हैं कि "अगला युद्ध एक संसार-व्यापी युद्ध होगा। उसमें प्रत्येक राष्ट्र के केवल पुरुषों को ही नहीं, स्त्रियों और बच्चों तक को भाग लेना पड़ेगा।" मार्शल फ्रॉश का कहना बिलकुल सत्य हुआ। भारत में जो अहिंसा-संग्राम चल रहा है, उसमें तो स्त्रियाँ और बच्चे भाग ले ही रहे हैं। भारत ने तो मार्शल फ्रॉश की भविष्यवाणी पूरी कर दी, अब अन्य देशों को भी चाहिए कि वे भी उनकी भविष्यवाणी पूरी करने के लिए पूरा जोर लगावें। इंगलैण्ड बिलकुल तैयार बैठा है—(इंगलैण्ड से अपनेराम का तात्पर्य उन्हीं इने-गिने मिनिस्टर्स से है, न कि इंगलैण्ड की जनता से) दूसरे देश भी तैयार हो जायँ तो आनन्द आ जाय। एक बार प्रलय का दृश्य तो देखने को मिल जायगा—क्यों सम्पादक जी ? ठीक है न ?

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: ७ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

गोलमेज़ कॉन्फ्रेंन्स का छकड़ा जिस चाल से चल रहा है, उससे प्रतीत होता है अभी दिल्ली दूर है। नौ दिन चले अढ़ाई कोस की चाल से मञ्ज़िल तक पहुँचना सरल काम नहीं है। विशेषतः ऐसा छकड़ा, जिसके बैल भिन्न-भिन्न दिशाओं में भागने की चेष्टा कर रहे हों, उसका तो राम ही मालिक है। कॉन्फ्रेन्स क्या है, भिखमङ्गों की जमाअत है ! सब चाहते हैं कि उनकी झोली पहले भर दी जाय। ब्रिटिश सरकार भी प्रसन्न है, कि चलो अच्छा है—ख़ूब लड़ने दो। यदि इस झगड़े में आपस में करारा जूता चल जाय और कान्फ्रेन्स भङ्ग हो जाय, तो भारतीयों को नालायक़ प्रमाणित करने का अच्छा अवसर मिलेगा। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, सिक्ख तथा अछूत ये सब अपनी-अपनी सीटें रिज़र्व कराना चाहते हैं। अपने राम इसको बिलकुल नाकाफ़ी समझते हैं। हिन्दू है किस चिड़िया का नाम ? अजी जनाब हिन्दुओं में चार वर्ण हैं—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र ! इन सबके लिए सीटें होनी चाहिएँ। ब्राह्मणों में अनेक शाखाएँ हैं। कान्फ्रेन्स में कोई कनौजिया भाई पहुँच जाते तो बस बेड़ा पार था—सब सीटें हथियाने के पश्चात् भी शुक्ल, मिश्र, दुबे अथवा अन्य कोई टापते ही रह जाते। वैश्यों में कोई मारवाड़ी सज्जन होते तो खेतान, डालमियाँ, सिंघानिया, कापड़िया इत्यादि-इत्यादि के लिए सीटें लेते-लेते हिन्दुस्तान का सफ़ाया कर देते।

ब्याह-शादियों में जब पत्तलें बँटती हैं, तो जो बच्चा गर्भ में होता है उनकी पत्तल तक ले ली जाती है। इसी प्रकार कुछ सीटें भविष्य के गर्भ में छिपी हुई जातियों के लिए भी रिज़र्व रख ली जायँ तो अच्छा

है। भई, पहले से इन्तज़ाम कर लेना अच्छा होता है—पीछे झगड़ा हो तो क्या फ़ायदा ! मुसलमान लोग भी ग़लती कर रहे हैं, उन्हें शेख़, सय्यद, मुग़ल, पठान, हाजी, हाफ़िज़—सबके लिए अलग-अलग माँग पेश करनी चाहिए। इस प्रकार सब लोग ख़ूब विस्तारपूर्वक अपने-अपने हक़ माँगें तो कुछ आनन्द भी आवे। ब्रिटिश सरकार को भी पता चले कि हाँ कान्फ़्रेन्स ऐसी होती है। दही, बड़े-कचालू का खोनचा, जिसमें से पैसे में चार चीज़ें मिल जाती हैं, कॉन्फ्रेन्स के आगे मात खा जाता। अपने राम भी साल-छः महीने के भीतर कॉन्फ्रेन्स के सभापति को एक "केबिल" खटखटाने वाले हैं, कि भाई साहब ज़रा दुबे लोगों का भी ख़याल रखना, वरना हिन्दुस्तान में ग़दर हो जायगा और आपकी बदनामी होगी। क्योंकि अपने राम चाहे ग़म खाकर बैठ भी रहें, परन्तु सब दुबे लोग ग़म खाने वाले जीव नहीं हैं। और ग़म क्यों खायँ—क्या हम लोग हिन्दुस्तान में नहीं रहते ? यदि दुबे लोगों के लिए यथेष्ट सीटें न रक्खी गईं (क्योंकि दुबे लोगों में भी अनेक श्रेणियाँ हैं), तो अन्य जाति वाले इन्हें भारतवर्ष से निकाल बाहर करेंगे। इसलिए पहले से प्रबन्ध कर लेना अच्छी बात है—बाद को पछताना न पड़े।

एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की है, कि सोलह जनवरी तक स्वराज्य मिल जायगा और सब राजनैतिक क़ैदी छूट जायँगे। अपने राम की राय में यह भविष्यवाणी बहुत ही ठीक जँचती है। जनवरी के मध्य तक राउण्डटेबुल कॉन्फ्रेन्स भी समाप्त होगी, बस उधर कॉन्फ्रेन्स ख़तम हुई, इधर स्वराज्य मिल गया। इसलिए अब यह सत्याग्रह और पिकेटिङ्ग सब बन्द हो जाना चाहिए। जब स्वराज्य मिलने ही पर उतारू हो गया है, तो सब व्यर्थ है। ख़ामख़ाह की झञ्झट मोल लेना बुद्धिमत्ता नहीं है। गोलमेज़ के प्रतिनिधियों को भी ब्रिटिश सरकार से यह कह कर, भारत लौट आना चाहिए कि "जनाब, हम स्वराज्य-वराज्य कुछ नहीं चाहते—यह तो महज़ एक दिल्लगी थी, आप लोग बेफ़िक्र होकर आराम से बैठिए। स्वराज्य हमें अपने आप मिल जायगा।

आप लोग झख मारेंगे और स्वराज्य देंगे, क्योंकि हमारे एक ज्योतिषी जी हुक्म लगा चुके हैं।" अपने राम भी आन्दोलन की दांता-किटकिट से तंग आ गए हैं। जी चाहता है कि क्लोरोफ़ार्म सूँघ कर पड़ रहें और सत्रह जनवरी को उठें, तो चारों तरफ स्वराज्य ही स्वराज्य देखें! हालाँकि यह युक्ति हिन्दुस्तान भर को करनी चाहिए, क्योंकि सोलह जनवरी की प्रतीक्षा करते-करते एक आँख बैठ जायगी। इसलिए यह अच्छा है कि ये दिन बेहोशी में कट जायँ—पता भी नहीं लगेगा कि कब और कहाँ गए। परन्तु अपनेराम की यह युक्ति हिन्दुस्तान भर मानने क्यों लगा, क्योंकि बहुतों को इसी में मजा आता है, कि ऐसी ही बमचख मची रहे।

ज्योतिषी जी महाराज ने बड़ी ग़लती की जो अभी तक इस बात को प्रकट न किया कि सोलह जनवरी तक स्वराज्य मिलेगा ही-मानेगा नहीं। यदि वह साल भर पहले भी बता देते, तो यह झगड़ा क्यों होता। गांधी जी नमक-सत्याग्रह आरम्भ न करते, विलायती कपड़े का बॉयकॉट न होता—न पिकेटिंग होती। हज़ारों आदमी क्यों पिटते और क्यों जेल जाते! भारत-सरकार भी सुख की नींद सोती। गोलमेज कॉन्फ्रेन्स को भी हिन्दुस्तान से ही अँगूठा दिखा दिया जाता। क्योंकि होने वाली बात किसी के रोके नहीं रुक सकती। ज्योतिषी जी महाराज अब तक न जाने किस दरबे में बन्द रहे। यदि इनकी भविष्यवाणी ठीक हुई, तो इन्हें कालेपानी का दण्ड अवश्य मिलना चाहिए। ये क्षमा के योग्य कदापि नहीं हैं; क्योंकि इन्होंने ही अब तक मौन धारण करके इतना उपद्रव मचवा दिया!

अपने राम इसीलिए कभी भविष्यवाणी नहीं करते कि कहीं सच हो गई तो मुफ़्त में सारा दोष अपने राम के मत्थे मढ़ा जायगा। अपने राम ने एक बार एक मरणासन्न रोगी के सम्बन्ध में कहा था कि यह अच्छा हो जायगा। बस जनाब, वह मृत्यु को अँगूठा दिखा कर टइयाँ-सा उठ बैठा! फिर क्या था! उसके घर वाले अपने राम की जान को आ गए कि "आपने पहले क्यों न बताया, हमारा सैकड़ों रुपया डाक्टरों

के चूल्हे में चला गया—आप पहले बता देते तो हम डाक्टर तो क्या, किसी अत्तार को भी न बुलाते।" रोगी भी बड़ा नाराज़ हुआ कि डाक्टरों ने जहर पिला-पिला कर नाक में दम कर दिया, और भूखों मार डाला। आप यदि पहले से बता देते तो मज़े से दोनों समय ठंडाई छानते और मलाई-रबड़ी उड़ाते। यह सब देख-सुन कर अपने राम ने प्रतिज्ञा कर ली कि अब कभी जीवन में भविष्यवाणी नहीं करेंगे—सदैव भूतवाणी और वर्तमानवाणी ही करेंगे। स्वराज्य मिलने न मिलने के सम्बन्ध में अनेक बार इच्छा हुई कि भविष्यवाणी कर डालें, परन्तु यही डर लगा रहा, कि कहीं सच हो गई तो लोग ख़ुफ़िया पुलिस का आदमी समझ कर फाँसी पर लटका देंगे। इसलिए अपने राम भूतवाणी के पक्ष में हैं। अपने राम की भूतवाणी कभी ग़लत नहीं होती—यह दावा है। अपने राम की भूतवाणी सुनिए—"भारत में दस महीने से उथल-पुथल हो रही है, हज़ारों आदमी जेल जा चुके हैं, लाखों आदमी खद्दरधारी हो गए हैं, करोड़ों आदमी नित्य सबेरे उठते हैं और दिन भर अपना काम-धन्धा तथा आन्दोलन के सम्बन्ध में गप-शप कर के रात में पड़ के सो जाते है।" क्यों सम्पादक जी, यह भूतवाणी कितनी ठीक है—हालांकि इसमें थोड़ी वर्तमानवाणी भी मिली हुई है। इस वाणी को कोई ग़लत प्रमाणित कर दे तो मैं उसे अपना चेला बना लूँ। आजकल वह समय है, कि हाथ-पैर बचा कर काम करना चाहिए। वाणी के पीछे ही हज़ारों आदमी जेल की रोटियाँ खा रहे हैं। शेरवाणी तथा फ़ीलवाणी से काम न लेकर केवल नयनवाणी से काम निकालना चाहिए—ऐसा कुछ लोगों का मत है। सम्पादक जी, आप भी सदैव भूतवाणी तथा वर्तमानवाणी करते हैं। हालाँकि आपने अपने पत्र का नाम "भविष्य" रक्खा है, परन्तु भविष्यवाणी के पास भी नहीं फटकते। यह बड़ी अच्छी बात है। आपका और अपने राम का सिद्धान्त मिलता-जुलता है।

सम्पादक जी, सोलह जनवरी के लिए तैयारी कर रखिए। ख़ूब उत्सव होगा, ख़ूब नाच-रङ्ग होंगे। घर-घर घी के चिराग़ जलाए

जायेंगे। अपने राम ने अभी से विशुद्ध ताजा देशी घी देहात से मँगवाने का प्रबन्ध कर लिया है। बिजली की बत्ती की रोशनी नहीं होगी। बिजली की बत्तियाँ विलायती होती हैं। आप भी रोशनी का बढ़िया प्रबन्ध कीजिएगा—जिससे कि चन्द्रलोक सूर्यलोक बन जाय।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

: ८ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

कहिए, कैसे मिज़ाज हैं ? आख़िर ज़मानत देनी ही पड़ी न ! और न लिखो मुख्य लेख और टिप्पणियां ! आप समझते थे कि इनका बॉय-कॉट कर देने से जमानत आपसे सहयोग किए रहेगी। परन्तु यह पता नहीं था कि जमानत माँगने वाले आपके भी उस्ताद हैं। ज़मानत के लिए वह बीस तरह के स्वांग ला सकते हैं। लोग तो रुपए आठ आने के लिए पचासों तरह के स्वांग लाते हैं, फिर जहाँ सैकड़ों का मामला हो वहाँ कौन चूक सकता है ? और कुछ नहीं मिला तो सत्याग्रहियों के फोटो ही की बात ढूँढ़ निकाली। कुर्बान जाऊँ इस सूझ के ! वाक़ई ख़ूब सूझी ! सत्याग्रहियों के फ़ोटो छापना और सनसनीदार शीर्षक देना तो बहुत ही बड़ी भारी बुरी बात है ! इससे लोगों में स्पर्धा का भाव कुम्भकर्ण की भाँति जाग्रत हो उठता है। सत्याग्रहियों के फोटो देखकर कई बार अपने राम के भी जी में आया कि हम भी कोई ऐसा ही काम करते तो हमारा भी फोटो छपता। यह इच्छा इतनी प्रबल हो उठी थी कि एक दिन रात को यह निश्चय कर दिया था कि कल सबेरे से कोई न कोई उत्पात अवश्य आरम्भ करेंगे—बला से परिणाम चाहे जो हो, परन्तु फोटो तो छप जायगा। ग़नीमत इतनी ही हुई कि निश्चय विजय भवानी की गोद में लेट कर किया था, इससे सबेरा होते ही रात की सब बातें भूल गईं—अन्यथा भगवान जाने क्या कर बैठते ! सो जनाब, अपने राम की तरह सब लोग विजया के उपासक नहीं हैं, जो सबेरा होते ही रात की बातें भूल जायँ ! अतएव अधिकांश लोग तो फोटो छपाने के लिए सब कुछ करने को तैयार हो सकते हैं। इसलिए फोटो

छापना मानों बग़ावत फैलाना है व लोगों को इस बात का निमन्त्रण देना है कि—"भाइयो, तुम भी कुछ ऐसा ही काम करो तो तुम्हारा भी फोटो छापा जाय।" ओफ़! ओह! कितना बड़ा प्रलोभन है। उस पर सनसनीपूर्ण शीर्षक तो और भी ग़ज़ब ढाते हैं। उनके पढ़ने से पाठकों को यह भ्रम होता है कि देश भर में आग लगी हुई है। हालांकि कहीं कुछ नहीं है। सब ओर शान्ति का साम्राज्य है।

सम्पादकजी, मेरी सलाह तो यह है कि आप सत्याग्रह, गिरफ़्तारी, गोली तथा लाठी-काण्ड के समाचार छापना ही बन्द कर दीजिए। आप जब छापिए तब यही छापिए कि—"अमुकों ने माफ़ी माँग ली, अमुक स्थान पर लोगों ने विदेशी वस्त्र बेचना आरम्भ कर दिया, अमुक स्थान के लोग स्वराज्य नहीं माँग रहे हैं—जो माँग भी रहे हैं, वे बेवक़ूफ़ हैं, अमुक स्थान पर पुलिस ने बड़ी सभ्यता की, हालांकि गोली चलाना आवश्यक था, परन्तु उसने केवल लाठी चलाई।" यदि आप ऐसा करने लगें तो थोड़े ही दिनों में "जमानत प्रूफ़" हो जायँगे। सरकार के विरुद्ध जो बात हो, उस पर कभी विश्वास ही न कीजिये। अपनी आँखों से भी देख लीजिए, तब भी विश्वास न कीजिए! क्योंकि वह सब माया का खेल है, उसमें कुछ भी सार नहीं है। अनित्य और असार वस्तु पर विश्वास करना अज्ञानियों का काम है। नित्य तथा सारयुक्त केवल वे बातें हैं, जो सरकार के लाभ की हैं। उन पर बिना सोचे-समझे, आँखें बन्द करके विश्वास कर लीजिए। क्यों, है न सलाह की बात? जो माया में फँसता है, वही दुख उठाता है। इस बात को मत भूलिए—यह ज्ञानियों का वाक्य है।

अच्छा खैर, जो हुआ सो हुआ; अब यह बताइए कि प्रधान-मन्त्री मि० मैकडॉनल्ड की स्पीच की बाबत आपकी क्या राय है? भई, कोई चाहे माने या न माने, परन्तु अपने राम तो बिना यह कहे नहीं रह सकते कि प्रधान-मन्त्री साहब हैं बड़े बुद्धिमान! वल्लाह, क्या आसानी से मामले को सुलझाया है। वह जो कहावत है कि—"भइया घर द्वार तुम्हारा, परन्तु कोठी-कोठले को हाथ मत लगाना।" आखिर प्रधान-

मन्त्री ठहरे—ऐसे न होते तो प्रधान-मन्त्रित्व कैसे प्राप्त होता। अब गोलमेज के प्रतिभिधि वहीं से पुकारते हुए चले आ रहे हैं कि "भाइयो, अभी कोई राय क़ायम न करना, पहले हमें आ जाने दो, हमसे भली-भाँति समझ-बूझ लो तब कुछ कहना।" वह जो समझावेंगे वह अपने राम पहले ही समझे बैठे हैं। वह यही कहेंगे कि "जो कुछ मिलता हो ले लो, आगे चलकर देखा जायगा। इतना भी बड़ी मुसीबतों से मिला है। बड़ा परिश्रम पड़ा। बड़ी बहसें कीं, बड़ा प्रोपेगेण्डा किया, तब जाकर इतने पर मामला तय हो रहा है। अतएव अब हमारा परिश्रम व्यर्थ न करो।" अपने राम की भी यही राय है, कि इन लोगों का परिश्रम बिल्कुल भी व्यर्थ न किया जाय, जो कुछ बेचारे माँग-जाँच और रो-धोकर लाए हैं, उसे स्वीकार कर लिया जाय। यद्यपि ऐसा होना कठिन दिखलाई पड़ रहा है; क्योंकि बिना महात्मा जी की ग्यारह शर्तें पूरी हुए, समझौता होना कठिन है। उधर नौकर-शाही भी इस बात की सरतोड़ चेष्टा कर रही है कि यह मामला जीभों की लपलपी तक ही परिमित रहे—आगे न बढ़े। यदि ऐसी बात न होती तो जनाब, यह कदापि न होता कि एक ओर तो प्रधान मन्त्री महोदय मेल-मिलाप की बातें करें और दूसरी ओर नौकरशाही गिरफ़्तारियों और लाठीकाण्ड की मशीन चलाती रहे। बेचारे लॉर्ड इर्विन भी परेशान होंगे कि अच्छी छीछालेदर में फँसे। न जाने किस पापग्रह की दशा लगी हुई है। किसी तरह इससे शीघ्र छुटकारा मिले। सो जनाब, उनकी ग्रहदशा तो समाप्त हो रही है—अब यह देखना है कि नये वायसराय महोदय क्या रंग लाते हैं। हालांकि मशहूर तो ऐसा है कि नौकरशाही नमक की खान है—इसमें जो आता है, नमक ही बन जाता है। बेचारे लॉर्ड इर्विन इतने सीधे, इतने सज्जन हैं कि जब मुँह खोलते हैं, तो हिन्दुस्तान की भलाई का ही स्वर निकलता है, परन्तु नौकरशाही ने उन्हें भी ऐसा खराद पर चढ़ाया कि उनके हृदय और कार्य में छठाठैं का योग पड़ गया। हृदय कुछ कहता है, परन्तु करना कुछ पड़ता है, खैर जी, पहुँचने तो दो जरा होम में, सारी कसर

निकालेंगे। हालांकि नौकरशाही वह मस्त हाथी है कि कोई कुछ बके, कुछ भूंके, परन्तु यह अपनी मस्तानी चाल नहीं छोड़ती। किसी ने खूब कहा है कि "Viceroys may come and Viceroys may go, but beaurocracy goes on for ever" इस नौकरशाही से छुटकारा मिले तभी असली स्वराज्य स्थापित हो सकता है। सम्पादक जी, आप चाहे मानें या न मानें, परन्तु अपनेराम का तो यह विश्वास है कि जहाँ तक हो सकेगा, नौकरशाही यही कोशिश करेगी कि कोई समझौता न हो। इंगलैण्ड में तो मि० चर्चिल की मिट्टी पलीद हो ही गई। वह भी बहुत रोड़े अटका रहे थे। फर्माते थे कि हिन्दुस्तान को कुछ न दिया जाय, परन्तु वह तो टायँ-टायँ फिश हो गये। आपस ही में मतभेद हो गया। पता नहीं, यह मतभेद सच्चा है या वह भी कोई मिली-भक्ति की पॉलिसी है। हालांकि पॉलिसी होने का कोई स्पष्ट चिह्न नहीं है, परन्तु मायावियों से डर ही लगता है, न जाने कब काशीकरवट ले जायँ। फ़िलहाल तो दयालु से हो रहे हैं। मि० बाल्डविन भी हिंदुस्तान की जय मना रहे हैं। मि० बेन भी हिन्दुस्तान के लिए लड़ मरने को तैयार हैं। परन्तु वर्किङ्ग-कमिटी की शर्तें पेश होने पर भी यह नेकनीयत क़ायम रहे तब तो ठीक है, अन्यथा वही छः टके का बैल रह जायगा। इधर र मजहयराााा, उाँग प हैधर से चवन्नी-छिवन्नी दिखाई जा रही है। ऐसी दशा में मामला तय हो जाना एक सन्देह की बात मालूम होती है। ख़ैर, इतना भी क्या थोड़ा है। दिमाग़ कुछ ठिकाने तो आया। पहले तो पुट्ठे पर हाथ ही नहीं धरने देते थे। जब तबेले में से मि० चर्चिल जैसे लतियल रस्सियाँ तुड़ा कर निकल गए, तो अब बचे हुए थान के टर्रे कहाँ तक दुलत्तियाँ फटकारेंगे—कुछ अगाड़ी-पिछाड़ी का और कुछ अपने रातिब का ध्यान तो होगा ही। ख़ैर—आगे-आगे देखिए होता है क्या!

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: ६ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आजकल चारों ओर मुसीबत ही मुसीबत है। इधर हिन्दुस्तान पर मुसीबत, उधर ब्रिटिश सरकार पर मुसीबत ! एक क़ानून तोड़ने के कारण मुसीबत में है तो दूसरा क़ानून की रक्षा करने के कारण। ब्रिटिश सरकार अथवा भारत-सरकार यदि अपने क़ानूनों को नहीं तुड़वाना चाहती तो इसमें उसका क्या दोष है ? जिन क़ानूनों के बनाने में उसे वर्षों लगे, न जाने कितना परिश्रम करना पड़ा, न मालूम कितनों को प्रसन्न रखना पड़ा, उन क़ानूनों को हिन्दुस्तानी दिल्लगी में तोड़ डालना चाहते हैं। तोड़ने-फोड़ने में कुछ लगता है ? तोड़-फोड़ का काम जितना सरल है, उतना सरल निर्माण का कार्य नहीं है। हिन्दुस्तानियों की समझ में यह बात नहीं आती। इन्हें तो बस क़ानून तोड़ना आता है। यह तो हुआ नहीं कि कोई ऐसा क़ानून बनाते जिससे ब्रिटिश सरकार को कुछ सहायता मिलती। ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तानियों के लाभ के लिए कितने क़ानून बना रक्खे हैं। एक नमक-क़ानून ही को ले लीजिए। भारत-सरकार ने नमक पर टैक्स कुछ अपने लाभ के लिए थोड़ा ही लगाया है ! यह भी हिन्दुस्तानियों के लाभ की बात है। उस दिन 'लीडर' में किसी महोदय ने लिखा था—"नमक रजोगुणी है, नमक खाने से सतोगुण का नाश हो जाता है। यदि नमक न खाया जाय तो मनुष्य अधिक स्वस्थ रह सकता है।" ऐसी दशा में यदि इस पर टैक्स न लगाया जाता तो लोग इसका व्यवहार अधिक करते। सस्ती चीज अधिक खर्च होती है। नतीजा यह होता कि सतोगुण भारतवर्ष में बिलकुल न रह जाता—अभी जो कुछ है वह इसलिए कि लोग नमक

कम खाते हैं। सम्पादक जी, मैं स्वयं आधे पेट नमक खाकर रहता हूँ। क्या करें, कमबख्त टैक्स के मारे कभी पेट भर नमक नहीं खा पाया। इसका बड़ा क़लक रहता था; परन्तु अब यह जान कर सन्तोष हुआ कि नमक बड़ी हानिकारक वस्तु है। पहले मैं भारत-सरकार को कोसा करता था; परन्तु अब दुआएँ देता हूँ। नमक का बनना और बिकना बिल्कुल बन्द हो जाय तो बहुत अच्छा है। ऐसी चीज़ का प्रचार दो कौड़ी का। शराब और अफ़ीम इत्यादि की श्रेणी में नमक को भी समझना चाहिए। 'लीडर' के लेखक को इस सूचना के लिए पुरस्कार दिया जाय या दण्ड—यह बात विचारणीय है। पुरस्कार तो इस दृष्टि से देने की इच्छा होती है कि उसने नमक की हानियाँ बता कर भारत-वर्ष की आँखें खोल दीं। परन्तु जब यह विचार आता है कि इतने दिनों तक वह इस बात को क्यों छिपाए रहा और हिन्दुस्तानियों को हानि उठाते देखना सहन करता रहा तो यह इच्छा होती है कि उसे इस अप-राध के लिए दण्ड दिया जाय। अभी मैं कोई निश्चय नहीं कर पाया हूँ। नमक खाना छोड़ कर कुछ दिनों के पश्चात् इस पर विचार करूँगा। तब तक काफ़ी सतोगुण इकट्ठा हो जायगा—और जो बात सूझेगी वह दूर की सूझेगी।

हाँ, मैं क्या कह रहा था? ओ! याद आ गया। तो जनाब, ऐसी प्रजावत्सल सरकार से लोग ख़ामख़ाह लड़ रहे हैं। धरसाना में सरकार क्यों इतनी सख़्ती कर रही है? इसका यही कारण है कि सरकार जानती है कि ये लोग सब नासमझ हैं। मुफ़्त का नमक हाथ लगेगा तो अनाप-शनाप खा जायेंगे। नतीजा यह होगा कि सब घोर रजोगुणी हो जायँगे और अनेक प्रकार की अन्य हानियाँ भी उठाएँगे। इसलिए इनकी रक्षा करनी चाहिए। अतएव लोगों की रक्षा के लिए सरकार ने धर-साना में पहरा लगाया। लोग इसका तात्पर्य उलटा समझे और उन्होंने सत्याग्रह ठान दिया। यदि कोई स्वार्थी सरकार होती तो सोचती, अच्छा है मरने दो, हमारा क्या नुक़सान है। परन्तु अँगरेज तो स्वार्थी नहीं हैं और इसका प्रमाण यह है कि धरसाना में उन्होंने सत्याग्रह करने वालों

को मारना-पीटना तक क़बूल किया, परन्तु यह देखना उचित नहीं समझा कि लोग नमक पर अधिकार जमा कर स्वयम् अपने पैर में कुल्हाड़ी मारें। अजी डण्डों की मार तो अच्छी हो जायगी—अस्पताल इसी के लिए तो खुले हैं, परन्तु नमक खा-खाकर जो हानि लोग उठाएँगे उसका इलाज असम्भव हो जायगा। यदि कोई बालक ज़िद करके आग से खेलना चाहे तो माता-पिता क्या उसे ऐसा करने की आज्ञा दे देंगे? कभी नहीं। वे बालक को मारेंगे, पीटेंगे, डाटेंगे; सभी कुछ करेंगे, पर आग से कभी न खेलने देंगे। ऐसी दशा में 'माँ-बाप' अङ्गरेज भी यदि मार-पीट करते हैं तो क्या हर्ज है? परन्तु आजकल है कलियुग! लोग सगे माँ-बापों का कहना नहीं मानते, अँगरेज़ तो बेचारे पराए हैं।

परन्तु यदि एक बात हो तो बरदाश्त की जाय। लोग यह भी तो कह रहे हैं कि हम स्वराज्य लेंगे। मानों स्वराज्य भी कोई खिलौना है। स्वराज्य लेकर करेंगे क्या? यही न कि बैठे-बिठाए अपने ऊपर एक मुसीबत लाद लेंगे। अङ्गरेजों को हिन्दुस्तान पर राज्य करने में कितनी मुसीबत उठानी पड़ती है? अपना घर-द्वार छोड़ कर और हज़ारों कोस की यात्रा करके हिन्दुस्तान में आते हैं। यहाँ की गर्मी बरदाश्त करके हिन्दुस्तानियों की सेवा करते हैं। क्यों? इसलिए कि वे नही चाहते कि हिंदुस्तानियों के सिर पर इतना भारी बोझ लादें। राज्य करना बड़े जोखिम और परेशानी का काम है—दिल्लगी नहीं है। अंगरेज लोग कैसे राज्य करते हैं—यह उन्हीं का जी जानता है। पर बेचारे करें क्या, अपना कर्तव्य-पालन करते हैं। हिन्दुस्तानियों में इतनी तमीज़ भी नहीं, जो स्वयम् राज्य कर सकें, क्योंकि ये इतनी परेशानी और दिक़्क़त नहीं सह सकते। और सहना भी नहीं चाहिए। जब अँगरेज़ इनकी बला अपने सिर पर लिए हुए हैं तो इन्हें क्या आवश्यकता है, पर समझाए कौन? समझाए तो तब जब समझ में आए।

लोग अँगरेजों पर यह दोषारोपण करते हैं कि इनके राज्य में हिंदुस्तान ग़रीब हो गया और भूखों मरने लगा—हिन्दुस्तान का सब रुपया अँगरेज़ लोग विलायत ले गए। अपने राम की समझ में यह दोषारोपण

भी अनुचित है। अँगरेज लोग हिन्दुस्तान का रुपया यदि विलायत ले गए तो यह बहुत अच्छा हुआ। यदि यहाँ रुपया रहता तो नित्य चोरियाँ होतीं और डाके पड़ते। रुपया झगड़े की जड़ है। ऐसी चीज को देश में रखना मानों झगड़े की जड़ जमाना है। रुपया नहीं है तो आराम से पैर फैलाए मस्त पड़े हैं, न चोरों का खटका, न डाकुओं का डर। रुपया होता तो उसकी रक्षा करने की चेष्टा में प्राणों को संकट मिलता! खामखाह प्राणों को सङ्कट में डालना कहाँ की बुद्धिमानी है? हमारे-ऋषि लोग सदैव इस बात की शिक्षा देते रहे कि अपनी आत्मा को क्लेश मत पहुँचाओ, संसार के विषय-वासनाओं में मत फँसो, यह संसार असार है, धन-दौलत को निकृष्ट समझो। अब यह सोचना चाहिए कि जब रुपया पास होगा तो मनुष्य विषय-वासना में अवश्य फँसेगा और अनेक प्रकार के पाप-कार्य करेगा। अतएव यदि रुपया नहीं है तो बड़ी अच्छी बात है। विषय-वासना और पाप से तो बचे हुए हैं। उधर चारों ओर डाकुओं से बेफिक्र, इधर विषय-वासना और पाप से बचत! कितना बड़ा लाभ है! अङ्गरेजों का हिन्दुस्तानियों के प्रति कितना बड़ा उपकार परन्तु फिर भी लोग, धन्यवाद देना भाड़ में गया, उल्टी शिकायत करते हैं। अंग्रेज कमबख्तों के भाग्य में यश बदा ही नहीं है। ये भलाई भी करेंगे तो लोग बुराई ही समझेंगे। अब रही यह बात कि लोग भूखों मरते हैं तो यह अपना-अपना भाग्य है, अङ्गरेज किसी के भाग्य को थोड़ा ही बदल सकते हैं? जिसके भाग्य में भूखा मरना ही बदा है वह हिन्दुस्तान में क्या, अमेरिका चला जाय तब भी भूखा ही मरेगा। क्या अङ्गरेज भूखे नहीं मरते? इंगलैण्ड में लाखों अंग्रेज भूखों मरा करते हैं। और भूखा मरना तो भारतवासियों के धर्म में श्रेष्ठ समझा गया है। यहाँ भूखे मरने के लिए ही एकादशी, प्रदोष, पूर्णिमा, इतवार, मंगल इत्यादि के व्रत रक्खे गए हैं। भूखे मरने से स्वास्थ्य ठीक रहता है। जब बीमारी होती है तो वैद्य भी सब से अच्छी चिकित्सा यह समझते हैं कि लङ्घन कराया जाय। मुसलमान तो वर्ष में एक मास लगातार भूखे मरते हैं। अतएव जब भूखा मरना इतना श्रेष्ठ है तब

शिकायत क्यों की जाती है ? क्या इससे अंग्रेजों के कोमल हृदय पर चोट न लगती होगी कि भारतवासी स्वयम् तो शौकिया और स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए भूखे मरते हैं और नाम उनका बदनाम करते हैं। कोई न देखे, परन्तु इस अन्याय को परमात्मा तो देखता ही है। हाँ, एक बात तो भूल ही गया। भूखे मरने वाले स्वर्ग में स्थान पाते हैं। हिन्दू और मुसलमानों में अधिकतर तो इसीलिए भूखे मरते हैं कि इससे स्वर्ग मिलेगा। अतएव यदि प्रत्येक समय पेट डबल रोटी की तरह फूला रहे तो ईश्वर को स्वर्ग के फाटक में सदैव के लिए ताला डलवा देना पड़े। अब कहिये, स्वर्ग का फाटक किसकी बदौलत खुला हुआ है ? समझदार की मौत है, और क्या कहा जाय ?'

यह धरना क्या बला है और इससे क्या लाभ है— यही समझ में नहीं आता। विलायती कपड़े पर धरना, शराब पर धरना। विलायती, कपड़ा! हरे! हरे! इस तेरी-मेरी का भी कुछ ठिकाना है। "वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त मानने वाले आज इतने संकुचित हृदय हो गए कि खास अंग्रेजों के, अपने रक्षकों के, बनाए कपड़े का तिरस्कार कर रहे हैं। इसी से तो पुनः यह कहना पड़ता है कि घोर कलिकाल आ गया। यह एहसान तो भाड़ में गया कि अंग्रेजों की बदौलत हम लोगों को कैसे कैसे बढ़िया कपड़े पहनने को मिलते हैं। यह दशा है कि खाने को चाहे उबले चने ही मिलें, पर कपड़ा बढ़िया ही मिलता है। अजी खाना कौन देखता है ? कपड़ा तो सब देखते हैं। कपड़े से ही मनुष्य की शोभा है। इतनी साधारण बात भी हिन्दुस्तानी नहीं समझते। अंग्रेज बेचारे तो इस विचार से बढ़िया-बढ़िया कपड़े बना कर भेजते थे कि कोई यह न कहे कि हिन्दुस्तानियों को कपड़ा भी नहीं मिलता। अपना सिर खपाकर नित्य नई-नई डिजाइनों के कपड़े ईजाद कर के भेजे। उसका पुरस्कार यह मिला कि विलायती कपड़े पर धरना दिया जा रहा है। एक समय वह था कि 'विलायती' शब्द वस्तु की उत्तमता का सूचक होता था। कैसी ही वस्तु हो, जहाँ यह पता लगा कि विलायती है, बस तुरन्त यह

इतमीनान हो जाता था कि उत्तम है, सो आज उसी विलायती की यह दशा है। समय का फेर इसी को कहते हैं !!

कहते हैं कि कपड़े की बदौलत अंग्रेज लोग साठ करोड़ रुपए वार्षिक हथिया लेते हैं। हथिया लेते हैं तो क्या बेजा करते हैं ? चीज़ नहीं देते ? रुपया होता किसलिए है ? खाने और पहनने के लिए। सो यदि खराब और रद्दी कपड़ा पहन कर रुपया बचाया भी तो किस काम का ? कंजूसी की भी कोई हद होती है ! ऐसी कञ्जूसी किस काम की ?

ऐसी-ऐसी बढ़िया डिज़ाइनें आती थीं कि यदि एक-एक डिज़ाइन पर लाखों रुपये न्योछावर करके समुद्र में फेंक दिये जाते तब भी कोई बेजा बात नहीं थी। परन्तु हिन्दुस्तानियों में कृतज्ञता का माद्दा तो है ही नहीं। कृतज्ञता का माद्दा होता तो अंग्रेजों के पैर धो-धोकर पीते। और अब भी जो समझदार हिन्दुस्तानी हैं वे पैर धोकर पीते ही हैं। सच पूछिये तो इन्हीं हिन्दुस्तानियों के कारण भारतवर्ष सधा हुआ है, अन्यथा रसातल को चला जाता। शास्त्रों में लिखा है कि जिस मुहल्ले में एक भी पुण्यात्मा होता है वह मुहल्ला का मुहल्ला ईश्वरीय कोप से बचा रहता है। हिन्दुस्तान में तो ऐसे अनेक पुण्यात्मा हैं जो अंग्रेजों का उपकार मान कर उनकी पूजा करते हैं। इसीलिये हिन्दुस्तान धरती पर टिका हुआ है।

और तो और शराब पर भी धरना ? पूछो शराब बेचारी ने क्या अपराध किया है ? और यह दिल्लगी देखिये कि विलायती तो विलायती देशी शराब पर भी धरना है ! यह धांधली नहीं तो और क्या है ? देशी शराब पर इसीलिये धरना कि उससे अंग्रेजों को टैक्स मिलता है। यह अच्छा हिसाब है ? यदि अंग्रेजों को पानी से टैक्स मिलता तो शायद पानी पर भी धरना बैठ जाता। इस समय कोई शराबियों के हृदय से पूछे। यह बरसात के दिन, काली-काली घटाएँ उठती हैं, और शराब पर धरना ! हाय ! हाय! गला काट कर मर जाने की बात है ! इससे तो यही अच्छा है कि शराब के प्रेमियों को सङ्खिया खिला दी जाय।

कुछ लोगों का ख्याल है कि शराब तो सदैव के लिये बन्द हो जानी

चाहिए। परन्तु अपने राम का यह विचार है कि शराब बन्द न होगी। अमेरिका ने शराब बन्द तो की, परन्तु क्या नतीजा हुआ ? लाखों रुपये की शराब अब भी वहाँ बिकती है। लोग चुराकर बाहर से मँगाते हैं और बेचते हैं। हालांकि इसके लिये अलग पुलिस नियुक्त है, परन्तु फिर भी बिकती ही है। मान लीजिये कि भारत को स्वराज्य मिल गया तो क्या शराब बन्द हो जायगी ? अजी राम भजिये। जैसे अभी लोग नमक बनाते हैं वैसे ही तब शराब बनाएँगे। अजी अब तो सत्याग्रह का ऐसा नुस्खा हाथ लग गया है कि लोग जिस बात पर चाहेंगे सत्याग्रह करेंगे। वैद्यों की चाँदी हो जायगी। आसव के बहाने खूब शराबें बनाएँगे और बेचेंगे। स्वराज्य मिल जाने दीजिये, फिर अपने राम भी वैद्यक-शास्त्र पढ़ेंगे। वैसे तो चरक, सुश्रुत सब देख चुके हैं और पढ़ चुके हैं, क्योंकि उनके विज्ञापन निकला करते हैं और वैद्यों के यहाँ अलमारी में रक्खे रहते हैं।

सम्पादक जी, यह जो कुछ हो रहा है, सब एक सिरे से अन्याय ही अन्याय हो रहा है। इन अंग्रेजों की आह व्यर्थ न जायगी, देख लीजियेगा। इन बेचारों को जो व्यर्थ में सतायेगा वह सुख से न बैठने पायेगा। ऐसा अपने राम का विचार होता भया, आगे जो ईश्वर चाहेगा वही होगा। हालांकि अपने राम अच्छी तरह जानते हैं कि क्या होगा, परन्तु कहना बेकार है, क्योंकि जो अपने राम का विचार है वही इस समय सारे हिन्दुस्तान का है।

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: १० :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आज कानपुर के दंगे का कुछ विवेचन करने की इच्छा हो रही है। कानपुर का दंगा भी, सच मानिए, ईश्वर की लीला थी ! लोगों के लिए मनुष्य का मार डालना खटमल के मार डालने के समान था और घर फूँक देना ऐसा था. जैसे आपके प्रेस में कभी-कभी रद्दी फूँक दी जाती है। पुलिस ने उस समय ब्रह्म का पार्ट जिस खूबी से खेला है, वह सर्वथा प्रशंसनीय था। मनुष्यों की हत्या, घरों का लूटा जाना और फूँका जाना उसके लिए एक तमाशा था। माया में फँसे हुए प्राणी एक दूसरे का गला काट रहे थे और पुलिस यह लीला देख कर हँस रही थी ! यदि कभी कोई सहायता के लिए उसको पुकारता था तो वह मानों सुनती ही न थी। सुने भी तो कैसे ? मनुष्य कर्म-बन्धन तथा माया में फँसा हुआ दुख-सुख झेलता है। ब्रह्म उसमें हस्तक्षेप नहीं करता—हस्तक्षेप करे तो विश्व का सब कार्य ही उलट-पुलट हो जाय ! इस प्रकार यदि पुलिस हस्तक्षेप करती तो दंगे का सब कार्य उलट-पुलट हो जाता। कहते हैं कि गज की टेर सुन कर भक्त-वत्सल भगवान नंगे पैरों दौड़ पड़े थे। तो जनाब, वह कोई थर्ड-क्लास भगवान होंगे। फर्स्ट-क्लास भगवान अर्थात् ब्रह्म जूतियाँ चटकाते हुए भी नहीं घूमते—नंगे पैरों भला कौन दौड़ेगा ? पुलिस ने भी यही किया, उसने माया में पड़े हुए प्राणियों की ज़रा भी परवा न की। यदि वह थर्डक्लास भगवान की तरह होती तो पीड़ितों की पुकार सुन कर निश्चय ही अपने बूट उतार कर फेंक देती और नंगे पैरों दौड़ पड़ती। वह तो ब्रह्म की भांति निर्लेप तथा निर्विकार होकर चुपचाप सब लीला देखती रही। उसके लिए दंगा बिल्कुल साधारण

बात थी और क्यों न होती ! यह तो संसार है, इसमें ऐसा होता ही रहता है।

अब जरा माया में पड़े हुए प्राणियों की लीला सुनिए। कानपुर के दंगे का सूत्रपात, जहाँ तक अपने राम को मालूम हुआ है, इस प्रकार हुआ कि दो मुसलमान, जिनके सम्बन्ध में कहा जाता है, कि खुफ़िया पुलिस के आदमी थे, बूचड़खाने की ओर दौड़ते हुए गए और चिल्ला कर बोले कि—"मुसलमानो ! तुम्हें शर्म नहीं मालूम होती, यहाँ बैठे हो, बादशाही नाके पर हिन्दू मुसलमानों को पीट रहे हैं।" इतना सुनते ही मुसलमान लोग उठे और अपने पड़ोसी हिन्दुओं को पीटने लगे। सम्पादक जी, यह मनोवृत्ति आज तक मेरी समझ में नहीं आई, कि यदि कोई मुझसे आकर कहे कि अमुक स्थान में मुसलमान हिन्दुओं को पीट रहे हैं तो मैं हिन्दुओं की सहायता के लिए उस स्थान पर जाने की अपेक्षा उठकर अपने पड़ोसी मुसलमान को पीटने लगूँ"। साँप का विष झाड़ने वाले लोगों के संबंध में यह किम्वदन्ती अलबत्ता सुनने में आई है कि उनमें यह कमाल होता है कि जो कोई उनसे जाकर कहता है कि अमुक आदमी को साँप ने काट खाया तो वह सूचना देने वाले को तमाचा मारता है। तमाचे के लगते ही सूचना देने वाला बेहोश होकर गिर पड़ता है और उधर सर्पदंष्ट अच्छा हो जाता है। और इधर सूचना देने वाले के शरीर में सर्प-विष आ जाता है जिसे झाड़ने वाला मन्त्र द्वारा दूर कर देता है। यदि ऐसा कमाल भी होता कि अपने पड़ोसी को पीटने से दूसरी जगह का दंगा अपने आप शान्त हो जाता और इधर थोड़ी देर परस्पर लड़-भिड़ कर ये भी शांत हो जाते, तब भी कुछ बात होती। परन्तु यहाँ तो विष उतरने की अपेक्षा दूना चढ़ता है। वल्लाह क्या कमाल है, यद्यपि वीरता और न्याय इसमें लेशमात्र भी नहीं है। वीरता और न्याय तो तब हो, जब हम उन्हीं का सामना करें और उन्हीं को ठोकें-पीटें जिन्होंने कि ठोंक-पीट-काण्ड प्रारम्भ किया है। इसमें भगवान जाने कौन सी बहादुरी है कि राम से बदला लेने के लिए श्याम को पीट दिया जाय ! और फिर ऐसी दशा में, जबकि राम की हमने कभी सूरत भी

नहीं देखी और श्याम एक मुद्दत से हमारा पड़ोसी है। यह तो वैसी ही बात हुई कि कोई व्यक्ति यह सुन कर कि अमुक के पुत्र ने अपने पिता को पीटा, अपने पुत्र को पीटने लगे। क्यों? इसलिए कि पुत्र ने पिता को पीटा, इसलिए पुत्र को दण्ड अवश्य मिलना चाहिए। इस बात से कोई सरोकार नहीं कि किस पिता के बदले में कौन पुत्र पिटता है। इस अन्धेर का भी कुछ ठिकाना है! इन भले आदमियों के लिए उस समय न पुलिस का अस्तित्व रह जाता है न न्यायालय का। यों साधारणतया लड़ाई-झगड़ा होने पर पुलीस तथा न्यायालय की शरण ली जाती है, परन्तु लोग कभी-कभी अपने हाथ में कानून की नकेल पकड़ कर सरकार का पार्ट स्वयम् ही अदा करने पर कटिबद्ध हो जाते हैं। यद्यपि इसमें नुकसान उठाना पड़ता है; क्योंकि ऐसा करने में स्वयम् सरकार बहादुर भी पिट जाती है।

इस प्रकार के दङ्गों की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि अपराधी के बदले में निरपराध को दण्ड मिलता है। कानपुर के दंगे में हिन्दू-मुसलमान लड़े और दोनों ने बड़ी वीरता दिखाई। ख़ूब स्त्रियों और बच्चों पर हाथ साफ़ किए गए। जब से अँगरेज़ी राज्य हुआ तब से लोगों का अस्त्र-शस्त्र चलाने का अभ्यास छूटा हुआ है। अतएव इस विचार से, कि यह विद्या बिल्कुल लुप्त न हो जाय, लोग इस प्रकार कभी-कभी 'स्वाध्याय' कर लिया करते हैं। परन्तु यह स्वाध्याय अशिक्षित लोगों तक ही सीमाबद्ध रहता है। पढ़े-लिखे और बुद्धिमान लोग ज़रा सोच-समझ कर काम करते हैं। एक वकील साहब के मकान पर जब मुसलमानों ने आक्रमण किया तो वह बन्दूक़ बग़ल में, रख कर क़ानून की पुस्तक के पृष्ठ उलटने लगे और यह देखने लगे कि वह किस दफ़ा के अनुसार बन्दूक़ का उपयोग कर सकते हैं। गँवार मुसलमानों ने उन्हें इतना समय भी न दिया कि वह उस दफ़ा को ढूँढ़ लेते। बेचारों ने विवश होकर यह निश्चय किया कि चाहे मकान लुट जाय और सब लोग मार डाले जायँ, परन्तु वह बन्दूक़ न चलाएँगे। परिणाम यह हुआ कि उनका मकान लुट गया। उनके और उनके परिवार के प्राण

कुछ हथियारबन्द पुलिस के आ जाने से बच गए। अब लोग उन्हें बेवक़ूफ़ बनाते हैं, कि बन्दूक़ के होते हुए घर लुटवा दिया। अपने राम की समझ में उन्होंने बड़ी बुद्धिमानी का काम किया। अजी जनाब, बन्दूक़ इस काम के लिए थोड़े ही है। वह तो ब्याह-शादी में जरा भड़भड़ाहट करने और शान जमाने के लिए या फिर बन्दरों को धमकाने और कबूतर-बत्तख को मोक्ष दिलाने के लिए होती है। यदि बन्दूक से मनुष्य-हत्या हो जाती तो दफ़ा ३०२ में चालान न हो जाता। इससे यह अच्छा है कि बन्दूक की ओर ऐसे समय में देखे ही नहीं। परमात्मा की इच्छा होगी तो जानोमाल बच ही जायगा, अन्यथा बन्दूक क्या, बन्दूक की परदादी तोप भी नहीं बचा सकती। ३०२ दफ़ा के अनुसार फाँसी पर लटक कर मरने से तो यह अच्छा है कि अहिंसात्मक सत्याग्रही की तरह सकुटुम्ब वीर-गति को प्राप्त हो। वीर-गति से मरने वाले को स्वर्ग अवश्य मिलता है—यह सब जानते हैं। तो जनाब, घर का एक आदमी स्वर्ग को जायगा तो उसकी दुम में बँधे हुए उसके कुटुम्बी भी बिना टिकिट स्वर्ग में घुस ही जायँगे। भला बताइए तो यह श्रेष्ठ है या फाँसी के तख्ते पर मरना और अपने कुटुम्ब को निस्सहाय रोता-बिलखता छोड़ जाना।

इस पर भी लोग उक्त वकील साहब को बेवक़ूफ़ समझते हैं। लोगों में दूरदर्शिता का माद्दा तो है ही नहीं। इसके अतिरिक्त ऐन मौक़े पर हरामजादी कानून की किताब धोखा दे गई। घर में टेलीफोन भी नहीं था जो मैजिस्ट्रेट से पूछ लेते कि "हुज़ूर, मुसलमान मारे डाल रहे हैं, हुक्म हो तो एकाध बन्दूक मार दूँ, वरना आप पर से न्योछावर हो जाऊँ। मुझे मुसलमानों से इतना डर नहीं लगता, जितना कि फाँसी के तख्ते से। बिना आपकी आज्ञा के बन्दूक चलाऊँगा तो आप बिना फाँसी दिए छोड़ेंगे नहीं।" अब वकील साहब को टेलीफोन अवश्य लगवा लेना चाहिए और एक शीशे की अलमारी में कानून की किताब प्रत्येक समय खुली धरी रहे, जिसमें कि आवश्यकता पड़ने पर पृष्ठ उलटने की जरूरत न पड़े।

एक लाला साहब के यहाँ दो बन्दूकें थीं और द्वार पर दो गोरखे कुकड़ियाँ लिए पहरा दे रहे थे। जब मुसलमानों का आक्रमण हुआ तो गोरखों ने बन्दूकें माँगीं। परन्तु लाला साहब ने जो बन्दूकों की तरफ़ देखा तो बन्दूकों के पीछे उन्हें दफ़ा ३०२ तथा फाँसी के तख्ते की झलक भी दिखाई पड़ गई। बस फिर क्या था, साफ़ इन्कार कर गए। बेचारे दोनों गोरखे कुछ देर तक कुकड़ी से लड़े, तत्पश्चात मारे गए। लाला साहब ने मुसलमानों को दो हज़ार रुपए देकर कुछ घण्टों की मोहलत माँगी तब प्राण बचे; और वह मकान तथा माल-असबाब छोड़ कर सकुटुम्ब अपनी प्राण सम प्यारी सुन्दर बंदूकों सहित भाग निकले। उनका मकान फूँक दिया गया और असबाब लूट लिया गया। यद्यपि तहखाने में होने के कारण बारह बोरे सोना-चाँदी बच गया, जिसे वह शान्ति होने पर निकाल ले गए। लाला साहब दशहरे पर बन्दूकों का पूजन करने तथा ब्याह-शादी में व्यवहार निभा देने के अतिरिक्त यह भी नहीं जानते, कि बन्दूक किस मरज़ की दवा है।

शान्ति स्थापित होने के पश्चात् एक दिन अफ़वाह उड़ी कि आज मुसलमान संगठित होकर हमला करेंगे। एक सज्जन घबराए हुए दौड़े आए और बोले—"अब क्या होगा—कैसे प्राण बचेंगे ?" एक व्यक्ति पूछ बैठा—आपके यहाँ कोई हथियार है ?" बोले—"हां, बन्दूक है।" प्रश्न किया गया कि "तब फिर इतनी घबराहट क्यों है ?" बोले—"बन्दूक़ तो है, पर बन्दूक चलाने वाला कोई नहीं है।" सब लोग हँस पड़े। अपने राम होते तो कह देते—"बाबू जी, बन्दूक बेचने वाले ने आपको ठग लिया। बन्दूक के साथ बन्दूक चलाने वाला मुफ्त मिलता है, वह उसने आपको नहीं दिया।" तब एक सज्जन, जो बन्दूक का सदुपयोग जानते थे, उनके घर पर रात भर रहे। उन्होंने दूसरे दिन मित्रों से कहा—"ऐसे लोगों को तो लाइसेन्स दिया ही नहीं जाना चाहिए।" एक पोस्ट आफ़िस के एक कर्मचारी उस समय, जबकि दंगा पूर्णरूपेण जारी था, इस भय से पोस्ट आफ़िस चले, कि ग़ैरहाज़िरी होने से कहीं डिसमिस न कर दिए जायँ—यद्यपि दंगे के कारण उस दिन पोस्ट

आफ़िस बन्द था। हाथ में बन्दूक़ लिए हुए मुसलमानों की भीड़ के पास पहुँच कर बोले—"मुझसे कोई बोला तो बन्दूक मार दूँगा।" मुसलमानों ने बन्दूक़ देख कर कहा—"बाबू जी को जाने दो।" जब बाबू जी बन्दूक़ लिए हुए भीड़ में पहुँचे तो तड़ातड़ ऊपर लाठियां बरस पड़ीं, बाबू साहब की लाश अलग गिरी और बंदूक़ अलग। मुसलमान लाश को वहीं छोड़, बन्दूक लेकर चम्पत् हो गए। एक महोदय पिस्तौल हाथ में लिए पिट कर चले आए—जान बच गई, इतनी ख़ैर हुई। जान पर नौबत पहुँच गई, परन्तु न तो पिस्तौल हाथ से छूटा और न पिस्तौल से गोली। मित्रों के बीच में आए तो पिस्तौल हिला हिला कर अपनी मुसीबत का वर्णन करने लगे। एक महोदय मुस्करा कर बोले—"बाबू जी, पिस्तौल जेब में रख लीजिए, कहीं कोई छीन न ले।" सम्पादक जी कहाँ तक लिखूँ, ऐसी न जाने कितनी घटनाएं हुईं। साथ ही यह भी हुआ कि चार-छः हिन्दुओं ने केवल लाठी और ईंटों की मार से पचासों मुसलमानों को भगा दिया। कुछ मुसलमानों ने भी बड़ी वीरता दिखाई, अपने स्त्री-बच्चों को निस्सहाय छोड़, केवल अपने प्राण लेकर भाग निकले। इसी से अपने राम का यह कहना है कि यह दंगा ईश्वर की लीला थी। लोगों में अब तक इतना भय समाया हुआ है कि साधारण सी बात में भगदड़ मच जाती है। १० अप्रैल की रात को सड़क पर दो साँड़ लड़ पड़े, पुलिस वालों ने उन्हें भगाने के लिए हल्ला मचाया। उस हल्ले को सुन कर शहर भर के लोग, जो अपनी-अपनी छतों पर पड़े थे, चिल्लाने लगे। इस चिल्लाहट को सुनकर एक धनाढ्य परिवार के सज्जन यह समझ कर, कि फिर दंगा हो गया, इतनी घबराहट के साथ उठे कि तीन खण्ड की छत से नीचे आ गिरे। दूसरे दिन अस्पताल में उनका देहान्त हो गया। २५ अप्रैल की शाम को अपने राम चौक में एक मित्र की दूकान पर बैठे हुए थे। सहसा भगदड़ मच गई। लोग बेतहाशा भागने लगे और दूकानें बन्द होने लगीं। कुछ लोगों ने पूछा—"क्या बात है, क्यों भाग रहे हो?" तो कोई उत्तर नहीं देता, भागे चले जा रहे हैं। एक-दो ने उत्तर भी दिया तो बोले—"पता नहीं क्या

बात है ?' पता नहीं, परन्तु फिर भी भागे चले जा रहे हैं। दो-तीन मुसलमान भय के मारे नालियों में गिर गए। आखिर कुछ आदमी आगे बढ़े, पता लगाया तो मालूम हुआ कि मेस्टन रोड पर एक बाइसिकिल-सवार गिर पड़ा, उधर से एक बारात आ रही थी-बारात के कुछ आदमी उसे उठाने दौड़े बस इतनी सी बात में भगदड़ मच गई। अपने राम तो यह दशा देख कर स्तम्भित रह गए। कानपुर का इतना पतन हो गया! जिस कानपुर में लोग किसी भी समय किसी भी मुहल्ले में बेधड़क चले जाते थे, उसी कानपुर में इस समय इतना आतंक है कि लोग घर के बाहर निकलते हुए डरते हैं। पता नहीं, पूर्वावस्था आने में कितने दिन लगेंगे।

पता नहीं, हिन्दू-मुसलमानों का यह वैमनस्य कब दूर होगा। उस दिन एक महोदय ने कहा कि "जनाब, यह वैमनस्य कभी दूर नहीं हो सकता।" उनसे पूछा गया--"क्यों?" बोले --"दोनों की प्रत्येक बात एक-दूसरे के विरुद्ध पड़ती है।" फिर सवाल किया गया--"उदाहरण दीजिए!" कहने लगे--"जरा ग़ौर कीजिएगा!" मैंने कहा--"मैं जरा नहीं, बहुत ग़ौर कर रहा हूँ, आप कह चलिये।" बोले--"देखिये, मुसलमान पाजामा पहनते हैं और हिंदू धोती।"

मैंने कहा--वाक़ई, धोती-पाजामे में सदैव भिड़ंत होती रहती है, अतएव इनके पहनने वालों का भी लड़ते रहना स्वाभाविक ही है।

वह बोले--और सुनिये। हिंदू चोटी रखते हैं और मुसलमान दाढ़ी।

मैं बोला--यह भी बड़ी जबर्दस्त दलील है। बड़ी ख़ैरियत हुई कि हिंदुस्तान चीन में नहीं है, वरना रात-दिन जूता चलता रहता। चीनियों की चोटियाँ बहुत लम्बी होती हैं।

वह--हिंदू रोज नहाते हैं, मुसलमान रोज नहीं नहाते।

मैं--ख़ूब! यह भी पक्की बात है। आगे चलिये।

वह--नहाते समय हिंदू पहले पैर धोते हैं, परन्तु मुसलमान हाथ धोते हैं।

मैं—बेशक, ये सब बातें लड़ाई की जड़ हैं।

वह—ऐसी दशा में बताइए मेल कैसे हो सकता है?

मैंने कहा—यह न कहिए, हो सब-कुछ सकता है। संसार में असंभव कुछ भी नहीं है।

वह—कैसे हो सकता है, बताइए?

मैं—देखिए, न हिन्दू धोती पहनें न मुसलमान पाजामा; बल्कि घाघरा पलटन (हाईलैण्डर्स) की तरह दोनों घघरिया पहनें। न हिंदू चोटी रक्खें, न मुसलमान दाढ़ी। सप्ताह अथवा महीने में एक दिन ऐसा नियुक्त कर लिया जाय जिस दिन हिन्दू-मुसलमान दोनों नहाया करें, वैसे कोई न नहाय। नहाते समय न हिन्दू पैर धोवें न मुसलमान हाथ—इन दोनों अवयवों को पानी से बिल्कुल अलग रक्खा जाय। कहिए जनाब, तब तो मेल हो जायगा?

वह महोदय नाराज़ होकर बोले—आप युक्ति बताते हैं या मज़ाक़ करते हैं?

मैंने कहा—दोनों काम करता हूँ, आप न समझें तो क्या करूँ।

सम्पादक जी, क्या आप कोई ऐसी युक्ति बता सकते हैं, जिससे कि हिन्दू-मुसलमानों का यह चिर-वैमनस्य दूर हो सके?

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: ११ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

स्वर्गीय मौलाना मुहम्मदअली की तो अच्छी कट गई। वह जस भा थे ग़नीमत थे और अब तो यही कहना पड़ेगा कि—"खुदा बख्शे, बहुत सी खूबियाँ थीं मरने वाले में।" मुसलमान लोग अब तक बड़े गर्व के साथ कहते हैं कि—"जनाब, मुहम्मदअली ने राउण्डटेबिल कान्फ्रेन्स में धूम मचा दी और जो कहा, वह करके दिखा दिया।" अर्थात् बिना आजादी लिए जिन्दा हिन्दुस्तान नहीं लौटे। हालाँकि हिन्दुस्तान के डाक्टरों ने उनका स्वास्थ्य देख कर, उन्हें पहले ही इंगलैण्ड जाने से रोका था। अपने राम तो यह समझते हैं, कि डाक्टरों ने जो कहा था वही हुआ। खैर उनकी तो अच्छी कटी। अब बड़े भैया आक़िबत के बोरिए बटोरने के लिए रह गए। फ़ारसी की एक कहावत है कि—"गर पिदर नतवानद पिसर तमाम कुनद !" अर्थात् जो कार्य पिता नहीं कर पाता उसे पुत्र पूरा करता है। यदि इसी कहावत को यों कहा जाय कि "गर बिरादरे खुर्दनतवानद, बिरादरे कलाँ तमाम कुनद।" अर्थात् जो छोटा भाई नहीं कर सका, उसे बड़ा भाई पूरा करेगा। इसमें सन्देह नहीं, कि बड़े भैया हैं बड़े मेधावी, तब तो अकेले सैकड़ों "गांधी" का सामना करने की शक्ति रखते हैं। जिस प्रकार भीम में दस सहस्र हाथियों का बल था, उसी प्रकार बड़े भैया में सैकड़ों "गांधी" की शक्ति विद्यमान है। कसर इतनी है कि वह शक्ति केवल दो अँगुल की जबान में ही कैद होकर रह गई—यदि कहीं शरीर भर में फैली होती तो फिर क्या था—उस समय मौलाना जिहाद के झण्डे का बाँस पकड़े घूमते होते। उनकी जीभ में भी जो शक्ति है वह "बापू" नाम का जाप करके

उत्पन्न हुई है। शुक्र है, कि अनुष्ठान पूरा न हो पाया, यदि पूरा हो गया होता तो शायद मौलाना अल्लाह मियाँ के सामने भी खम ठोंक कर खड़े हो जाते। फिलहाल तो वह योग-भ्रष्ट योगी की भाँति ठोकरें खाते घूम रहे हैं।

मौलाना को मुसलमानों के भविष्य की जितनी चिन्ता है उतनी कदाचित बिहिस्त में बैठे हुए इस्लाम के जन्मदाता हजरत मुहम्मद साहब को भी न होगी। बेचारे करें क्या, उनका दिल ही ऐसा है। वह तो बहुत चाहते हैं कि बुढ़ापे में एकान्तवासी होकर 'अल्लाह! अल्लाह!' जपा करें, परन्तु कमबख्त दिल नहीं मानता। जब वह देखते हैं कि मुसलमानों में कोई अच्छा लीडर नहीं हैं तो दिल में गुदगुदी पैदा होती है। सोचते हैं—हम में कोई ऐब तो है नहीं, न काने हैं, न अन्धे, न लूले न लँगड़े। शरीर भी अपने सीमा-प्रान्त के बाहर तक अपना क़दम जमाए हुये है। ऐसी दशा में क्यों न लीडरी के लिये ज़ोर लगाया जाय। लीडर होना भी ऐसा चाहिए जो मील भर की दूरी से दिखाई पड़ जाय और हज़ारों आदमियों के बीच में भी इस प्रकार चमके जैसे गेहूँ के ढेर में मटर का दाना। गांधी जी जैसे 'लीडर' किस काम के, जो चार आदमियों के बीच में भी न दिखाई पड़ें। यही सब सोच-विचार कर बेचारे उठे। परन्तु अपने राम का यह विश्वास है कि जिस समय मौलाना उठे होंगे, उस समय किसी ने अवश्य छींका होगा। क्योंकि बेचारे अभी लीडर बन भी न पाये और लोगों ने लठियाना आरम्भ कर दिया।

मौलाना का ख्याल है, कि गांधी जी मुसलमानों का गला काटना चाहते हैं। परन्तु अपने राम की समझ में यह नहीं आता कि गांधी जी जैसे दुर्बल-शरीर व्यक्ति मौलाना जैसे मोटे-ताज़े मुसलमान का गला कैसा काट सकता है। मौलाना का गला काटने में मौलाना के दर्ज़ी को कितना कष्ट उठाना पड़ता होगा—इसका अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। मौलाना का कथन यह भी है कि "गांधी जी" मुसलमानों को परस्पर लड़वाना चाहते हैं। सो अपने राम की समझ में इस

कार्य को स्वयं मौलाना जिस खूबी से कर सकते हैं और कर रहे हैं उस खूबी से "गांधीजी" कभी नहीं कर सकते, क्योंकि मौलाना तो इस कला के आचार्य हैं। उनकी लीडरी तो इसी कला पर निर्भर है! जो बात अधिक मुसलमानों ने कही, बस मौलाना ने ठीक उसके विरुद्ध कहना प्रारम्भ किया। इस पर उधर मुसलमानों में चख-चख चली और इधर समाचार-पत्रों में मौलाना पर टीका-टिप्पणी होने लगी। बस मौलाना की लीडरी की देग चढ़ गई। लेकिन बहुत बड़ा भारी अफ़सोस यह है, कि सदा एक आँच की कसर रह जाती है—देग निगोड़ी भलीभाँति पकने नहीं पाती। इस मामले में मौलाना का भाग्य मौलाना का साथ एन मौक़े पर छोड़ देता है। जान पड़ता है, जितना हृष्ट-पुष्ट उनका शरीर है, उतना उनका भाग्य नहीं है। यदि कहीं ऐसा होता तो मौलाना हिन्दुस्तान को बग़ल में दाब कर मक्का-मदीना चले जाते।

मौलाना संयुक्त निर्वाचन के बहुत ही खिलाफ़ हैं। वह चाहते हैं कि मुसलमान अपना ढाई चावल का पुलाव अलग ही पकावें, जिससे कि मौलाना को भी खुरचन-बुरचन मिलती रहे। संयुक्त निर्वाचन में मौलाना को पुलाव की झलक भी देखने को न मिलेगी। पुलाव दूसरे लोग चख जायँगे और खाली देग मौलाना को माँजनी पड़ेगी। इस काम से मौलाना बहुत ही घबराते हैं। इसके अतिरिक्त संयुक्त निर्वाचन में मौलाना को हिन्दुओं से मिल-जुल कर रहना पड़ेगा। यह काम ऐसा असाध्य है- कि मौलाना से कभी हो ही नहीं सकता। मौलाना जिस समय स्वर्ग से इस मर्त्यलोक में अवतरित होने के लिये चले थे, उस समय अल्लाह मियाँ को यह वचन देकर चले थे, कि हिन्दुओं से कभी मेल न करेंगे। अतएव वह यदि मेल कर लें तो अल्लाह मियाँ नाराज होकर उन्हें बिहिश्त में घुसने न देंगे। हालांकि मौलाना को बिहिश्त की कोई अधिक परवाह नहीं; परन्तु जब हूर, गिलमाँ, शराबे-तहूरा, चश्मे-कौसर और दरख्ते-तूबा का ध्यान आ जाता है, तो छाती पर साँप लोट जाता है। इन चीजों के कारण बिहिश्त में जाना आवश्यक है। मर्त्यलोक में वह जितने कष्ट झेल रहे हैं वह केवल इस भरोसे पर कि

बिहिश्त में उक्त सब पदार्थ उन्हें अवश्य मिलेंगे। अतएव हिन्दुओं से मेल करके अल्लाह मियाँ को नाराज़ कर देने का साहस मौलाना में नहीं है। सम्पादक जी, कदाचित आप यह शङ्का करें कि यदि ऐसी बात थी तो मौलाना ने इतने दिनों तक गांधीजी के पैर क्यों दाबे। इसका कारण केवल यह था कि मौलाना गांधी जी को मुसलमान बनाने का प्रयत्न कर रहे थे और अपनी समझ में उन्होंने गांधी जी को मुसलमान बना ही लिया था—केवल बाक़ायदा कलमा पढ़ाने की देर थी; परन्तु एक दिन ख्वाब में हज़रत मुहम्मद साहब आए और उन्होंने मौलाना को डाँट कर कहा—"क्यों बे, तू हिन्दू होता जा रहा है!" तब मौलाना की आँखें खुलीं कि मैं चला था गांधी जी को मुसलमान बनाने सो उल्टा मैं ही हिंदू बनने लगा। बस उसी दिन से मौलाना ने क़सम खाली कि गांधी जी से सदा दूर ही रहेंगे और उनके प्रत्येक कार्य का विरोध करेंगे। सम्पादकजी, अपने राम को यह बात एक बहुत ही प्राइवेट आदमी से मालूम हुई है—केवल आपको बता रहा हूँ और किसी से न कह दीजिएगा। यह भी सुनने में आया, कि जिस समय ख्वाब में मुहम्मद साहब ने मौलाना को डाँटा तो मौलाना फूट-फूट कर रोए और बोले—"या हज़रत, मैं तो गांधी जी को कुफ्र से निकाल कर ईमान की रोशनी में लाना चाहता था—मेरा इरादा हिन्दू बनने का हर्गिज नहीं था। और मैं आप से वादा करता हूँ कि जब तक ज़िन्दा रहूँगा—हमेशा गांधीजी की मुखालफ़त करता रहूँगा—चाहे बात जा हो या बेजा। तब हज़रत ने फ़र्माया कि—"अच्छा जा, अगर तू ऐसा करेगा तो बिहिश्त में तुझे तेरे ही मानिन्द तन्दुरुस्त हूर मिलेगी।" सो सम्पादक जी, मौलाना अपने डील-डौल की हूर प्राप्त करने के लिए यह सब पापड़ बेल रहे हैं। वरना जनाब, चाहे संयुक्त निर्वाचन हो चाहे पृथक, मौलाना के ठेंगे से। हाँ, पृथक निर्वाचन होने से इतना लाभ मौलाना को अवश्य हो सकता है कि इक्के वाले, ताँगे वाले, भिश्ती, कुंजड़े, कसाई, धोबी, धुनिएं, जुलाहे—इन सबकी कृपा से मौलाना कौन्सिल की कुर्सी तक पहुँच ही जायेंगे। संयुक्त निर्वाचन में कौन्सिल

की चपरासगीरी भी शायद ही मिल सके, क्योंकि कौन्सिल के चपरासियों के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह फुर्तीले और दौड़-दौड़ कर काम करने वाले हों, ऐसे चपरासियों का वहाँ काम नहीं, जो पारा पिए हुए चूहे की भाँति हिल डुल भी न सकें।

मौलाना में सब से बड़ा गुण एक यह है कि कभी किसी बात पर स्थिर नहीं रहते। इतने भारी शरीर में, इतना हल्का चित्त ! यह बड़ी विचित्र बात है। इसका एक बहुत बड़ा कारण यह प्रतीत होता है कि मौलाना बेचारे स्वयं तो कभी कुछ नहीं कहते। उनकी असली राय क्या है और वह क्या चाहते हैं—यह तो कदाचित अल्लाह मियाँ ही जानते हों! वह जो कुछ कहते हैं, केवल अपने श्रोताओं को खुश करने के लिए! जिस बात में उनके श्रोता प्रसन्न होते हैं, वह वही कहते हैं। वह जानते हैं कि गँवार और बेपढ़ी मुसलमान जनता हिन्दुओं के विरुद्ध कहने से ही प्रसन्न होती है और यह समझती है कि जो हिन्दुओं का विरोधी है वही उनका सच्चा शुभचिन्तक है। इसीलिए बेचारे मौलाना को उनको खुश करने के लिए हिन्दुओं के विरुद्ध अफीम उगलनी पड़ती है। इस पर आप कदाचित यह शङ्का करें कि यदि ऐसी बात है तो बड़े भैया पढ़े-लिखे समझदार मुसलमानों की जमाअत से क्यों भागते हैं ? इसका कारण अपनेराम की समझ में यह है कि पढ़े-लिखे लोग यह बात जानते हैं कि मौलाना अफीम विभाग के अफसर रह चुके हैं इस कारण यह जब उगलेंगे तब अफीम ही उगलेंगे। अतएव वे इन्हें पतियाते ही नहीं। मौलाना भी समझते हैं कि—"इन मुँहफटों के बीच में हर तरह से मुश्किल है। यदि इनके मन की कहूँगा तो ये लोग मेरी नेकनियती पर विश्वास नहीं करेंगे और जो इनके विरुद्ध कहूँगा तो हत्थे पर ही टोक देंगे। इनके सामने जबान खोलना अपनी आबरू गँवाना है। इसलिए इनसे दूर रहना ही अच्छा है। कुँजड़े-कसाई भले, जो चुपचाप हमारी बात सुन कर खुश हो जाते हैं।"

बड़े भैया मुसलमानों से कहते हैं कि तुम्हें हिन्दुओं से लड़ने के लिए तैयार रहना चाहिए और सरकार से भी लड़ने के लिए तैयार रहना

चाहिए। बेशक, बिल्कुल तैयार हैं, केवल आपके हुक्म भर की देर रहना चाहिए। क्योंकि जल्दी में काम खराब होता है। जिस प्रकार आप तमाम ज़माने भर से लड़ने को तैयार हैं, उसी प्रकार आपके अनुयायी भी लड़ने को तैयार हैं। अल्लाह मियाँ दो अँगुल की जबान सलामत रक्खें और उसे तेज़ रखने के लिए चटपट सालन सप्लाई करते रहें—फिर देखिए कैसी घमासान लड़ाई होती है कि शॉर्टहैण्ड जानने वाले रिपोर्टर भी मुँह बाए खड़े देखते रहें। अपने राम को इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि यदि मौलाना चाहें तो हिन्दुओं को सुबह-शाम कोस-कोस कर नेस्तोनाबूद कर दें, क्योंकि मौलाना और उनके समस्त अनुयायी अल्लाह मियाँ के बहुत ही प्यारे बन्दे हैं और हिन्दू सब काफ़िर और मुरदित हैं। रही ब्रिटिश सरकार, सो उसे हराना कौन बड़ी बात है। जहाँ मौलाना ने यह एलान किया कि उन्हें स्वराज्य-वराज्य की कोई आवश्यकता नहीं—बस ब्रिटिश सरकार नोकदुम भाग खड़ी होगी। कसर केवल इतनी ही है कि कुछ नासमझ और बेवक़ूफ मुसलमान मौलाना का विरोध कर रहे हैं, और मौलाना जैसे योग्य, बुद्धिमान और राजनीति का कीमा बना कर खा जाने वाले व्यक्ति का कहना नहीं मानते। सब से बड़ा रोना तो यही है कि मुसलमानों में एका नहीं, संगठन नहीं। चौबीस करोड़ हिन्दुओं ने केवल महात्मा जी को अगुआ बना दिया और उनको यह अधिकार दे दिया कि वह स्याह करें या सफ़ेद—सब ठीक है और सात करोड़ मुसलमान मौलाना को अगुआ नहीं बना रहे हैं। इसी से तो कभी-कभी यह इच्छा होती है कि फकीर बन कर छोटे भैया की कब्र पर जा बैठें।

सम्पादक जी, अपने राम को अफ़ीमचियों के बहुत से किस्से मालूम हैं, इस कारण अपने राम मौलाना की बातों को अधिक महत्व नहीं देना चाहते। मौलाना बहुत दिनों तक अफ़ीम-विभाग के कर्मचारी रहे हैं, अतएव उनके दिमाग में अफ़ीम का असर कहाँ तक न पहुँचा होगा। और मैं आपको भी यही सलाह दूँगा कि आप भी उनकी बातों को अफीमचियों की गप्प ही समझें।

भवदीय
—विजयानन्द (दुबे जी)

: १२ :

ग्रजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

लङ्काशायर के मिल-स्वामी ग्राजकल बेतरह परेशान हैं। भारतवर्ष के बॉयकॉट से बेचारों की नींद हराम हो गई है। अपने राम की समझ में यह बॉयकॉट बिल्कुल नियम-विरुद्ध है; क्योंकि कहावत है कि "पीठ की मार दे ले, परन्तु पेट की मार न दे।" इस कहावत के अनुसार यह बॉयकॉट सोलहो आने बेजा है। विशेषतः जब कि उपरोक्त कहावत एक हिन्दुस्तानी कहावत है। हिन्दुस्तानियों को अपनी कहावतों का अक्षरशः पालन करना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करेंगे, तो उनकी कहावतों का कोई मूल्य नहीं रह जायगा। इसके अतिरिक्त इस समय लङ्काशायर का बॉयकॉट करना गुरुद्रोह के समान है। जिस लङ्काशायर ने भारत को ऐसे-ऐसे बढ़िया कपड़े पहनाए, जिस लङ्काशायर ने भारतवर्ष को कपड़ा बनाना सिखाया, जिस लङ्काशायर ने अपने हानि-लाभ का ख्याल न करके, भारत के मिलों को कपड़े की मैशीनें सप्लाई कीं; उस लङ्काशायर से ऐसा व्यवहार ! इस कृतघ्नता का भी कोई ठिकाना है !! यदि विलायत वाले मैशीनों का आविष्कार न करते, तो भारत के मिलों की क्या दशा होती ? भारतवर्ष के हित के लिए लंकाशायर ने क्या नहीं किया ? नई-नई मैशीनें बनाईं, रंग-बिरंगे कपड़े बनाए, उतनी दूर से जहाज़ पर लाद कर भेजे और भगवान जाने कौन-कौन से काया-कष्ट सहे। बेचारे ने सब कुछ किया, कुछ भी उठा नहीं रक्खा। भला बताइए तो सही, विलायत में धोती जोड़े कौन पहनता है ? साड़ियों की खपत विलायत में कितनी है ? परन्तु फिर भी बेचारा लंकाशायर ये चीजें पूर्ण निस्वार्थ भाव से केवल हिन्दुस्तान के लिए बनाता रहा। जो

व्यक्ति स्वयं मर-खप कर ऐसी वस्तु बनावे, जो उसके किसी काम की न हो, उस व्यक्ति को आप क्या कहेंगे ? अपने राम तो उस आदमी को दो ही उपाधि दे सकते हैं—या तो प्रथम श्रेणी का बेवकूफ या प्रथम श्रेणी का परोपकारी। कुछ लोग इस पर कह सकते हैं कि यह तो उसने अपने आर्थिक लाभ के लिए किया—यह तो व्यापार था ; इसमें परोपकार की कौन सी बात है। ऐसे लोगों के लिए अपने राम का यह उत्तर है कि आर्थिक लाभ तथा व्यापार के सैंकड़ों रास्ते हैं। यदि लंकाशायर धोती जोड़े न बना कर पतलूनें बनाता, तो क्या उसे लाभ न होता ? जैसे हिन्दुस्तान धोतियाँ खरीदता रहा है, यदि उसी तरह अन्य देश लंकाशायर की पतलूनें खरीदते तो अवश्य लाभ होता। अब यह बात ही दूसरी है कि कोई खरीदे ही नहीं। इसे बेचारा लंकाशायर क्या करे ?

हिन्दुस्तान के बायकाट के कारण लंकाशायर को इतनी घबराहट क्यों है ? इसका कारण यह नहीं है कि वह कोई ऐसी चीज़ नहीं बना सकता जो दूसरे देशों में खप सके। वह अभी ऐसी-ऐसी चीजें बना सकता है कि अन्य देश वाले तुरन्त उसकी नकल कर लें ; परन्तु बात केवल यह है कि उसे धोती जोड़े और छींट बनाने की आदत पड़ गई है ! कहावत भी है कि अभ्यास क्रमशः स्वभाव हो जाता है। अतएव इतने दिनों का अभ्यास अवश्य स्वभाव बन गया होगा। इधर आदमियों का अभ्यास हुआ उधर मैशीनों के पुर्जे भी सदा एक चीज बनाते रहने के कारण इस करवट से घिसे कि अब उनमें कोई दूसरी चीज बन ही नहीं सकती। अब आप ही बताइए, ऐसी दशा में बेचारा लंकाशायर क्या करे ? उधर मिल के कर्मचारी अन्य कोई वस्तु बनाना नहीं चाहते, इधर मैशीनें बना नहीं सकतीं। न कहिएगा, कितनी बड़ी मजबूरी है। भगवान ऐसी मजबूरी किसी बाल-बच्चे वाले पर न डाले। इसमें सारा अपराध हिन्दुस्तान का है। पहले तो उसने बेचारे से अपने मतलब की चीजें बनवा कर आदत खराब कर दी और अब जब कि वह अन्य किसी के काम की चीज बनाने के काम का न रहा तब अब बायकाट।

कर रहे हैं। क्या भगवान इस अन्याय को न देखेगा ? लोग कहते हैं कि लंकाशायर का व्यापार सुदृढ़ बनाने के लिए हिन्दुस्तान का उद्योग-धन्धा नष्ट किया गया। यह भी बिलकुल नासमझी की बात है। जिसे हिन्दुस्तानी उद्योग-धन्धा नष्ट होना बताते हैं वह न नष्ट था न भ्रष्ट। वह तो हिन्दुस्तान को आराम पहुँचाने की बात थी। यदि हिंदुस्तानियों के हाथ से काम छुड़ा कर अंगरेज़ स्वयं वह काम करने लगे तो आराम किसे मिला ? अँगरेज़ लोग उन राजाओं में नहीं हैं जो स्वयं तो मख-मली गद्दों पर लोटा करें और प्रजा मेहनत-मज़दूरी करे। अंगरेज स्वयं मेहनत-मज़दूरी करते हैं और अपनी प्रजा को आराम पहुंचाते हैं। हिंदुस्तानियों में बुद्धि तो है ही नहीं, जो इन बारीक बातों को समझ सकें। जब से महात्मा जी ने खद्दर तथा चर्खे का प्रचार किया, तब से हिन्दुस्तानियों को कितना कष्ट हो रहा है। रुई इकट्ठी करो, उसे धुनको, फिर कातो, तत्पश्चात् बुनो तब कहीं कपड़ा पहनना नसीब हो ; और वह भी ऐसा कि बदन छिल जाय। पहले यह दिक्कत कहाँ थी ? आराम से बाजार गए, खट से रुपए फेंके, चट से कपड़ा ले आए, झट सिलवाया और फट पहन लिया। न चर्खे से मतलब था न धुनकी से। रही यह बात कि रुपए अधिक देने पड़ते थे और रुपया सब विदेश चला जाता था। सो जनाब, रुपए अधिक देने की बात तो यह है कि या तो आराम ही उठा लिया जाय या रुपया ही बचा लिया जाय—दोनों काम साथ-साथ नहीं हो सकते। लोग नौकर क्यों रखते हैं ? आराम ही के लिए न ! यदि अपने हाथ से काम कर लिया जाय तो नौकर की तनख्वाह का रुपरा बचे या नहीं ? तो क्या वे लोग बेवकूफ हैं जो रुपए खर्च करके नौकर रखते हैं ? दूसरी बात रुपया विदेश जाने की है—सो चला जाय, हमारी बला से। उसके बदले में आराम तो मिलता है और बढ़िया-बढ़िया डिज़ाइनों के दर्शन तो होते हैं। और रुपया तो निमित्त-मात्र है—असली चीज तो अन्न-वस्त्र है। सो अन्न भी भूमि से उत्पन्न होता है और कपास भी। सो जनाब, अंगरेज कुछ भूमि तो उठा नहीं ले जा सकते। भूमि तो रहेगी ही और जब भूमि रहेगी तो अन्न-वस्त्र भी

मिलता ही रहेगा—रुपया चाहे रहे चाहे भाड़ में जाय। बल्कि रुपया जितना कम रहे उतना अच्छा—चोर-डाकुओं का भय न रहेगा। सम्पादक जी, ये बातें सर्वसाधारण नहीं समझ सकते। यह बात अर्थशास्त्री ही समझ सकते हैं। और अर्थ-शास्त्री भी कैसे? अपने राम जैसे, जो अर्थ-शास्त्र को कोई चीज ही नहीं समझते। ऐसी दशा में यदि लंकाशायर वाले यह कहते हैं कि हिन्दुस्तानियों को कपड़ा खरीदने के लिए मजबूर किया जाय, तो क्या बेजा कहते हैं! कुछ लोगों का कहना है कि अंगरेजों की समस्त फौजें भी हिन्दुस्तानियों को लंकाशायर का कपड़ा खरीदने के लिए मजबूर नहीं कर सकतीं। अपने राम को यह बात फूटी आँखों भी नहीं सुझाई देती। क्यों नहीं मजबूर कर सकतीं? आखिर लोग जेल क्या अपनी खुशी से चले जाते हैं, फाँसी पर क्या अपनी इच्छा से लटक जाते हैं। सरकार ही तो उन्हें ऐसा करने के लिए मजबूर करती है। इसी प्रकार कपड़ा खरीदने के लिए भी मजबूर कर सकती है। अजी जनाब, सरकार बहादुर चाहे तो यह प्रबन्ध करसकती है कि प्रत्येक महीने प्रत्येक घर में, उस घर की आवश्यकतानुसार कपड़े के थान पुलिस द्वारा पहुँचवा दिया करे और उनके घर से मूल्य के रुपए मँगवा लिया करे। लोग खुशी से रुपए न दें तो पुलिस ज़बरदस्ती छीन लाया करे। यदि रुपए न मिलें तो मेज, कुर्सी, बर्तन—जो कुछ मिले; ले आया करे; प्यूनिटिव पुलिस का टैक्स वसूल करने में जब रुपए के बदले मेज, कुर्सियाँ ली जा सकती हैं तो कपड़े के मूल्य के बदले में भी ये चीजें ली जा सकती हैं। लोग रुपए छिपा सकते हैं, जेवर छिपा सकते हैं, परन्तु मेज, कुर्सी इत्यादि नहीं छिपा सकते! जिसके घर में कुछ भी न मिले, उसे सरकार जेल में भिजवा सकती है। जब यह दशा होगी तब लोग झख मारेंगे और लंकाशायर का कपड़ा खरीदेंगे। और फ़िलहाल तो सबसे सरल युक्ति यह है कि जब तक मर्दुमशुमारी के हिसाब से हिन्दुस्तान का प्रत्येक आदमी इस बात का वादा न कर ले कि वह प्रत्येक महीने में लंकाशायर का कम से कम एक थान अवश्य खरीदेगा तब तक स्वराज्य ही न दिया जाय। वादा खाली ज़बानी न

हो—पक्की लिखा-पढ़ी कर ली जाय—हिन्दुओं से गंगामाई की और मुसलमानों से कुरान-मजीद की कसम खिलवा ली जाय—तब स्वराज्य दिया जाय। यदि लंकाशायर वाले यह युक्ति खेल जायँ तो देखिए उनका कपड़ा इस तरह बिकने लगे जैसे लावारिस का माल। सम्पादक जी, कृपा करके मेरी ओर से यह युक्ति लंकाशायर वालों के कानों तक पहुँचा दीजिए। मुझे यह विश्वास है कि इसके बदले में वे मुझे रायबहादुर या दुबे बहादुर की उपाधि अवश्य देंगे, परन्तु अपने राम को किसी उपाधि की आवश्यकता नहीं है। अपने राम तो केवल परोपकार के लिए यह सब कर रहे हैं। अधिक से अधिक लंकाशायर वाले इतनी कृपा करें कि अपने राम को कपड़ा खरीदने से मुस्तसना कर दें; क्योंकि यदि उन्होंने अपने राम के यहाँ कपड़े के थान भिजवा कर जबरदस्ती रुपया वसूल किया तो बड़ी थूकाफ़जीहती होगी। रुपया अपने राम के पास है नहीं—यदि तवा-कढ़ाही ले गए तो लल्ला की महतारी घर में न बैठने देगी, इसलिए अपने राम पर कृपा रक्खें—बस अपने उपकार के बदले में अपने राम केवल इतना ही चाहते हैं।

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: १३ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आम लोगों का यह ख्याल है कि कानपुर का दंगा पुलिस की बदौलत हुआ—अर्थात् पुलिस ने दंगा रोकने की कोई कोशिश नहीं की। परन्तु अपने राम इस बात की एक मात्रा भी सही नहीं मानते। पुलिस और दंगा करावे—हरे! हरे! पुलिस दंगा करा ही नहीं सकती। जो शान्ति और रक्षा का काम करता हो, वह दंगा कैसे करा सकता है! उसे दंगा कराने की युक्ति ही नहीं मालूम। यदि केवल इस बात से, कि पुलिस ने दंगा रोकने का प्रयत्न नहीं किया, यह अनुमान लगाया जाय कि पुलिस ने ही दंगा कराया—तो यह बात भी ग़लत है। पुलिस ने दंगा रोकने की बहुत कोशिश की। सच मानिए, यदि पुलिस दंगा रोकने की कोशिश न करती, तो आप समझते हैं, क्या हो जाता? हिन्दुस्तान के नक्शे में से कानपुर का नामोनिशान मिट जाता। यह पुलिस के प्रयत्न का ही फल है, कि इतने बड़े दंगे में कुल चार-पाँच सौ आदमी मरे और सवा चार सौ के लगभग मकान नष्ट हुए। यदि पुलिस प्रयत्न न करती तो कानपुर में आदमी के नाम चिड़िया का बच्चा और मकान के नाम चील का घोंसला भी न बचता। सो जनाब, चार-पाँच सौ आदमियों का मर जाना कोई बड़ी बात नहीं। प्लेग तथा हैजे में तो इससे कहीं अधिक मनुष्य मर जाते हैं और भूकम्प आने से इससे कहीं अधिक मकान नष्ट हो जाते हैं। यह सब कुछ नहीं, बाजा वर्ष ही मनहूस होता है। यह सम्वत् बहुत खराब है। थोड़ी देर को मान भी लिया जाय कि कानपुर में आग दंगाइयों ने लगाई; परन्तु बाहर देहातों से जो गाँव के गाँव फुँके जाने के समाचार आ रहे हैं, सो

क्या वे सब झूठ हैं ? और यदि सच हैं तो वहाँ किसने आग लगाई ? इसी से अपने राम की यह धारणा हुई है, और अभी हाल ही में हुई है, कि यह सब सरासर ग़लत है। यह जो कुछ हुआ, सब होनहार था। जहाँ मि० सेल से कलक्टर, मि० बेरन जैसे एडिशनल मैजिस्ट्रेट, मि० रोजर्स जैसे पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट तथा मि० गुलाम हुसैन जैसे कोतवाल हों, वहाँ दंगा हो जाना कोई मज़ाक नहीं था। सेल साहब इतने शान्ति-प्रिय आदमी—ओफ़ भूल गया—आदमी नहीं, अंग्रेज, साहब ! हाँ तो साहब हों वहाँ दंगा हो जाय ! उनकी शान्तिप्रियता का एक मँझला नमूना यह है कि दंगे के समय बेचारे अपने बँगले के बाहर नहीं निकले। निकलते भी कैसे ? शान्तिप्रिय साहब ठहरे—दंगे की सूरत से नफ़रत। ऐसी दशा में अपनी आँखों से दंगा कैसे देखते, कहीं जी मचलाने लगता, या तबीयत बिगड़ जाती तो क्या होता ? और भी बेजा होता। यदि दंगाइयों को पता लग जाता कि कलक्टर साहब बीमार हो गए, तो उनका साहस और भी बढ़ जाता। इसलिए उस समय उन्हें अपना चित्त ठिकाने रखने की अत्यन्त आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त एक खतरा और भी था। यदि उन पर कोई आक्रमण कर बैठता और उनके चोट-चपेट लग जाती अथवा—यदि भविष्य में फिर कभी इस प्रकार का अवसर पड़े तो ईश्वर ऐसा कदापि न करे और सेल साहब जब तक गंगा-यमुना में पानी रहे तब तक कच्छपावतार की तरह जल-बिहार किया करें, यदि उनकी जान चली जाती तो क्या होता ? कानपुर अनाथ हो जाता। तब और भी ग़जब होता ! अथवा उनके चोट लगती तो उन्हें क्रोध आता। उस क्रोध में यदि वह तोपें लगवा कर कानपुर उड़वा देते तो क्या होता ! इसीसे अपने राम का यह फ़ैसला है कि सेल साहब ने बड़ी बुद्धिमता की, जो गंगा के तट पर (अपने बंगले में) बैठे ईसा मसीह से दंगे के शान्त हो जाने की प्रार्थना करते रहे। और उनकी प्रार्थना स्वीकृत भी हुई। दंगा शान्त हुआ और फिर हुआ और क्यों न होता ! सीधे-सच्चे और पुण्यात्मा साहब ठहरे—उनकी प्रार्थना ख़ाली थोड़ा ही जा सकती थी !

कुछ लोग उन पर इसलिए नाराज़ हैं कि जब उनसे सहायता के लिए प्रार्थना की गई तो उन्होंने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। ध्यान कैसे देते! ध्यान देना व्यर्थ था, क्योंकि वह जानते थे कि यह दंगा एक न एक दिन अवश्य शान्त होगा और इसमें मरेंगे भी वही, जिनकी मौत आई है। बिना मौत के कोई किसी को मार नहीं सकता और जिसकी मौत आ गई है, उसे कोई बचा नहीं सकता। अज्ञानी लोग इस तथ्य को नहीं समझते; परन्तु सेल साहब तो अज्ञानी नहीं हैं—आई० सी० एस० की परीक्षा पास हैं। वह सब समझते है, सब जानते हैं, परन्तु ज़बान से नहीं कहते। कहें भी तो किससे? कोई समझने वाला भी तो हो। दूसरे रहस्य की बातें सर्वसाधारण से कही भी नहीं जा सकतीं।

मि० बेरन ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट भी बड़े ही भले आदमी हैं। उन्होंने भी मन ही मन दंगा रोकने की बहुत बड़ी चेष्टा की। परन्तु जनाब, दंगा जब हो गया तब कहीं जल्दी रुकता है! इसके अतिरिक्त वह ठहरे डि० मैजिस्ट्रेट के मातहत—उनके ही कदमों पर चला चाहें। ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट जब तक डि० मैजिस्ट्रेट के कदमों पर न चलेगा, तब तक डि० मैजिस्ट्रेट कैसे होगा? और डि० मैजिस्ट्रेट होना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा जीवन ही बेकाम है। वह भी मि० सेल की भाँति ईसा-मसीह का स्मरण करते रहे। ठीक भी है—सङ्कट के समय परमात्मा ही याद आता है। मनुष्य का चाहा कभी नहीं होता—परमात्मा का ही चाहा होता है— इसलिए हाथ-पैर हिलाना व्यर्थ है। इतने पर भी उन्होंने यथाशक्ति प्रयत्न किया, खूब दौड़े-धूपे; परन्तु बेचारे क्या करते? दंगाई लोग मूर्ख थे—इतने मूर्ख थे, कि उन्होंने जरा भी समझ से काम नहीं लिया। उनसे तो काङ्ग्रेस वाले कहीं अच्छे। एक तो बेचारे हिंसात्मक उपद्रव नहीं करते, दूसरे गिरफ़्तार होने पर चुपचाप अपनी खुशी से जेल में जाकर बैठ जाते हैं। ऐसे लोगों पर लाठी-प्रहार करने में कुछ आनन्द भी आता है। दंगाइयों पर लाठी-प्रहार करने में कुछ आनन्द नहीं। एक तो कमबख्त भाग जाते हैं—खड़े नहीं रहते। हालाँकि जगद्गुरु के फ़तवानुसार उन्हें

भागना नहीं चाहिए—खड़े रहना चाहिए। यह बिल्कुल सच है कि जब डकाई आग लगा कर, लूट कर, हत्या करके भाग खड़े होते है, तो उन्हें कैसे गिरफ़्तार किया जा सकता है। बहादुरी के मानी तो यह है कि वे भागें नहीं खड़े रहें। उस समय पुलिस तथा अधिकारी यदि उन्हें गिरफ्तार न करें, तो उनका कुसूर है। भगोड़ों को ढूँढ़ना, उनका पीछा करना, तत्पश्चात् उन्हें गिरफ्तार करना, यह बड़ा तूले-अमल है! इतनी परेशानी कौन उठाए? इसलिए यही नीति अच्छी है, कि अच्छा बच्चा. इस समय तुम्हारा जो जी चाहे करो, तुमसे कोई न बोलेगा, आखिर कभी तो थकोगे ही, उस समय समझ लिया जायगा।

मि० रोजर्स (पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट) बेचारे बिल्कुल नए आदमी थे। उन्हें शहर के गली-कूचों का पता नहीं, बदमाशों का हुलिया नहीं मालूम, न किसी से जान न पहचान। ऐसी दशा में वह प्रबन्ध भी क्या करते! इसके अतिरिक्त उन्हें पहले कभी ऐसा दंगा देखने को नहीं मिला था। उन्हें ठीक तरह यह भी पता नहीं था कि साम्प्रदायिक दंगे को रोकना भी चाहिए या नहीं—यदि रोकना भी चाहिए, तो कितने दिनों बाद। इन सब बातों की जानकारी प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था, कि पहले वह दंगे का भली-भाँति अध्ययन कर लेते। अध्ययन करने के लिए यह भी ज़रूरी था कि दंगा कुछ दिनों चलने दिया जाय और क्या! अध्ययन कुछ एक दिन में थोड़ा ही हो जाता है। और ऐसा अवसर बार-बार थोड़ा ही मिलता है। इन सब बातों को सोच-समझ कर वह दंगे का अध्ययन करने लगे। यदि पहले से ही उनका अध्ययन होता तो जनाब, वह दंगा जेल के फाटक की भाँति क्षण-भर में बन्द करवा देते।

रहे कोतवाल साहब, सो जनाब, वह आदमी तो हैं नहीं—साक्षात् देवता हैं। पिछले सत्याग्रह आन्दोलन में उन्होंने कैसे कैसे काम किए। काङ्ग्रेस वालों का वह साथ दिया कि लोग उन पर बलि-बलि जाते थे। सत्याग्रहियों ने इतना ऊधम मचाया, परन्तु उन्होंने न कभी लाठी-प्रहार करवाया, न गोली चलवाई। सत्याग्रहियों को गिरफ़्तार भी

करते थे, तो अफ़सरों के हुक्म से मजबूर होकर ! परन्तु सच मानिए, गिरफ़्तारी के समय उनकी आँखों में आँसू निकल आते थे। ऐसे सज्जन व्यक्ति के लिए कहा जाता है कि उन्होंने दंगाइयों को उत्साहित किया। शिव ! शिव ! जब लोगों में ऐसी कृतघ्नता है तो किसी के साथ कोई नेकी क्यों करेगा ?

कहा जाता है कि उन्होंने दङ्गाइयों को गिरफ्तार नहीं किया और जो कुछ अन्य अफसरों द्वारा गिरफ्तार करके उनके सुपुर्द किए गए, उन्हें भी छोड़ दिया। इस पर अपने राम का कहना यह है कि कोतवाल साहब इतने शरीफ़ और भले आदमी हैं कि किसी को गिरफ़्तार करना तो वह जानते ही नहीं। न जाने पूर्व-जन्म में कौन पाप किए थे, जो पुलिस की नौकरी करनी पड़ी, अन्यथा वह इस महकमे के योग्य ही न थे। उनके जैसा आदमी, जिसके शरीर में हृदय के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं; पुलिस वालों जैसी हृदयहीनता कहाँ से लावें। यह तो खैर दंगे का मामला था ; जब दंगा नहीं था तब उन्होंने अपनी इसी हृदय की हृदयता के कारण कभी जुआरियों और कोकेन-फ़रोशों को नहीं पकड़ा। क्यों पकड़ते ? जो जैसा करेगा वह वैसा भरेगा—अल्लाह मियाँ सबको देखते हैं और वही सबको कर्मों का फल देते हैं। फिर बन्दा अपनी टाँग अड़ा कर गुनहगार क्यों बने ? दंगे के समय बदमाशों को पकड़ने से क्या फ़ायदा था ? यह माना, वे लड़ रहे थे तो आपस ही में तो लड़ रहे थे ; किसी दूसरे से तो नहीं लड़ रहे थे। हाँ, यदि सरकार के विरुद्ध कोई सर उठाता तो अलबत्ता वह कुछ हाथ-पैर हिलाते; क्योंकि सरकार का नमक खाते हैं। उस समय यदि नमकहरामी करते तो खुदा भी नाराज होता। मामूली लड़ाई-दंगे तो हुआ ही करते हैं। गिरफ़्तार हुए आदमियों को उन्होंने क्यों छोड़ दिया ? इसमें भी बड़ी गूढ़ बात थी, जिसे अपने राम के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। कारण यह था कि यदि बिना हौसले निकले हुए लोग पकड़ लिए जाते, तो पुनः दंगा होने की सम्भावना रहती ; क्योंकि लोग अपने बचे-खुचे अरमान निकालते ही। इसलिए उन्होंने बदमाशों को छोड़ दिया कि

जाओ अपने हौंसले पूरे कर लो, ताकि भविष्य में शान्त होकर तो बैठो। अरे हाँ, एक दफा जो कुछ होना हो, हो जाय—नित्य की दाँता किट-किट तो मिटे। रोज की कलह से एक बार जी भर के निबट लेना अच्छा है। इन सब बातों को सोचते-समझते हुए अपनेराम का यह अन्तिम निर्णय है कि कानपुर के अधिकारियों ने जो कुछ किया वह ठीक किया। उस समय ऐसी ही मसलहत थी और भविष्य में पूर्ण शान्ति स्थापित करने के लिए दंगे का चरम सीमा पर पहुँच जाना आवश्यक था। और अब जो वह गिरफ्तारियाँ कर रही है, वह भी बिल्कुल उचित है। क्योंकि पहले लड़ लेने दो, पीछे गिरफ्तार करो, यह पुलिस की पुरानी नीति है। और अपने राम की यह भी राय है कि कानपुर-निवासी जो इन अधिकारियों के कानपुर से हटा दिए जाने पर जोर दे रहे हैं, यह उनकी महामूर्खता है; क्योंकि यदि ये लोग कानपुर से हटा दिए गए तो कानपुर के भाग्य फूट जायँगे और जिस नगर में ये लोग भेजे जायँगे उसके नसीब खुल जायँगे।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

: १४ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

कहिए, देश के लीडरों की आजकल कैसी कट रही है, इसका भी कुछ पता है ? कोई आन्दोलन न होने के कारण बेचारे बैठे-बैठे जङ्ग खाये जा रहे हैं। क्या करें, कोई काम ही नहीं। बड़े-बड़े लीडरों का समय तो व्याख्यान देने, लेख लिखने तथा प्रेस-प्रतिनिधियों के प्रश्नों का उत्तर देने में कट जाता है। परन्तु बेचारे छुटभइयों की मिट्टी पलीद हो रही है। इन बेचारों की इतनी हैसियत भी नहीं कि स्वास्थ्य सुधारने के लिये कहीं बाहर ही चले जायँ। अपने शहर में भला इतनी गुञ्जाइश तो है कि एकाध देशभक्त डाक्टर मुफ्त में चिकित्सा करने को तैयार हो जाते हैं। बाहर जाकर यदि गले में ढोल डाल कर यह मुनादी करते फिरें कि "हम लीडर हैं ! हमने देश के लिये इतने कष्ट उठाये हैं, इतने दिन जेल में पड़े रहे हैं और अब भी आवश्यकता पड़े तो तुरन्त जेल में जा बैठें।" तब भी शायद ही कोई पतियाय। ऐसे व्यक्ति स्वास्थ्य सुधारने के लिये हिन्दुस्तान के बाहर जाना तो दूर रहा, अपने शहर के बाहर भी नहीं जा सकते। और ऐसे लीडर, ईश्वर की दया से, थोड़े नहीं हैं। इनकी संख्या बहुत है। कोई नगर ऐसा न होगा, जिसमें इन की काफ़ी संख्या न हो। गत आन्दोलन में ऐसे लीडरों की संख्या बहुत बढ़ गई। जो कोई स्वेच्छा से अथवा पुलिस की कृपा से एक बार भी जेल चला गया, वह परमात्मा की कृपा से लीडर होकर ही निकला। और क्यों न होता ? जब छूट कर आए तो स्टेशन पर स्वागत हुआ, शहर में जुलूस निकला, सभा हुई—उसमें उन्हें भी दो-चार शब्द बोलने पड़े। जेल से छूट कर घर की ओर चलते समय अपने लीडर होने में यदि कुछ शको-शुबह उत्पन्न भी हुआ, तो वह उपयुक्त बातों से बिल्कुल

ही निर्जीव हो गया। कुछ ऐसे महानुभाव भी थे, जो "करघा छोड़ तमाशे जाय, नाहक़ चोट जुलाहा खाय" वाली कहावत के अनुसार बेगार में धर लिए गए। उन्होंने जेल ही में क़सम खा ली थी कि अब ऐसे तमाशों के पास भी न भटकेंगे, जिनकी बदौलत जेल की हवा खानी पड़े। तमाशबीनी का परिणाम .खराब होता है। ऐसे लोग लौट कर आए तो घर के काम-धन्धों में ऐसे जुटे कि .फ़ुर्सत ही न मिले। कोई सभा-वभा देखते हैं तो कतरा कर निकल जाते हैं। किसी ने पूछा भी कि—"आज सभा में न चलोगे?" तो उत्तर दिया कि—"एक बड़ा आवश्यक काम है, उससे फ़ुर्सत मिली तो पहुँच जाऊँगा।" परन्तु बहुधा .फ़ुर्सत ही नहीं मिलती—यदि कुछ लोक-लाज का ध्यान आ गया तो सभा समाप्त होने के समय पहुँच गए। लोगों ने सूरत देख ली—बस इतना ही काफी है। इन लोगों के सम्बन्ध में अपनेराम बिल्कुल निश्चिन्त हैं। यदि चिन्ता है तो उन लोगों की, जो कि अपने को लीडर समझते हैं या फिर उन बेचारों की, जो लीडरी के अतिरिक्त और कोई काम कर ही नहीं सकते और न करना चाहते हैं। संसार में ऐसे काम बहुत ही कम हैं, जिनमें आम के आम और गुठलियों के दाम खड़े हो सकें। उन बहुत कम कामों में लीडरी भी सम्मिलित है। उन बड़े-बड़े लीडरों की बात छोड़ दीजिए, जिनका 'स्वास्थ्य सुधारने के लिये' हिंदुस्तान भर का जलवायु बहुत ही नाक़िस साबित हो चुका है। भगवान् जाने, हिन्दुस्तान के निवासियों का स्वास्थ्य किस प्रकार अपने अड्डे पर डटा रहता है। वह तो कहिए बड़ी खैर है कि अभी मङ्गल-ग्रह का रास्ता नहीं मिला, अन्यथा पृथ्वी-मण्डल भर का जलवायु उनका स्वास्थ्य सुधारने में कच्ची खा जाता और उन बेचारों को मङ्गल-ग्रह जाना पड़ता। इन लीडरों की बात छोड़ दीजिये, क्योंकि इन लीडरों की माया अपनेराम जैसे साधारण व्यक्ति की समझ के बाहर की बात है। उन लीडरों की दशा पर ग़ौर कीजिये, जिनकी लीडरी केवल शहर अथवा अधिक से अधिक ज़िले तक परिमित है। ये बेचारे स्वप्न देख रहे थे कि एक दिन वह भी आवेगा, जब कि ये जिस शहर में जायँगे, वहाँ के रईस

और अमीरों में इस बात पर जूता चलने के लिये तैयार हो जायगा कि नेता महोदय को हम अपने यहाँ टिकावेंगे। तब नेता जी एक छोटा सा व्याख्यान देकर उस झगड़े को रफ़ा-दफ़ा कर देंगे। इसके पश्चात् शहर में जुलूस निकलेगा। बाजारों में, दूकानों पर, मकानों की छतों पर लोग इस प्रकार भरे होंगे, जैसे कि चारपाई में खटमल। कोई फूल बरसाएगा, कोई गुलदस्ता फेंक मारेगा; नेता जी की जय-जयकार से आकाश का कलेजा दहल उठेगा। इसके पश्चात् जनाब फोटो खींचे, जायँगे, मानपत्र दिये जायँगे। लोग तरह-तरह की बातें पूछने आवेंगे। प्रत्येक समय बड़े-बड़े आदमी हाथ बाँधे हुए नौकरों की तरह सामने खड़े रहेंगे। स्वास्थ्य ठीक न रहने पर भी तर माल उड़ाने पड़ेंगे। और फिर सभा की जायगी—व्याख्यान दिया जायगा। व्याख्यान के पश्चात् यदि नेता जी को जुकाम भी हो जायगा तो देश-भर के पत्रों में यह समाचार निकल जायगा और सारा देश नेता जी का जुकाम अच्छा करने के लिए ईश्वर से रो-रोकर प्रार्थना करेगा। जब वहाँ से चलेंगे तो अगले स्टेशन तक के लिए न जाने कहाँ से टिकट भी आ जायगा। वहाँ पहुँचेंगे तो स्टेशन पर स्वागत के लिये आदमी मौजूद ही रहेंगे। वहाँ फिर वही बातें। इस प्रकार अपनी जेब से एक छदाम निकाले बिना ही नेता जी आराम से सारा हिन्दुस्तान घूम आवेंगे। बताइए, इस सुख के आगे स्वर्ग-सुख भी झेंप जाता है। जब स्वर्ग-सुख प्राप्त करने के लिये मनुष्य पहाड़ों की कन्दराओं और जंगली जानवरों के मठों में घुसे पड़े रहते हैं, तो इस सुख की प्राप्ति के लिए यदि कभी-कभी जेल में पड़ा रहना पड़े तो क्या हर्ज है? बिना तपस्या किए स्वर्ग-सुख नहीं मिल सकता। इस सुख-प्राप्ति की तपोभूमि जेल है। सो जनाब! तपोभूमि की सैर भी कर आए। परन्तु अब बाहर तो क्या, अपने ही शहर में कोई नहीं पूछता। नेता जी जूतियाँ चटकाते घूमते हैं। कोई ऐसा विषय भी नहीं, जो दूसरे-तीसरे दिन व्याख्यान ही फटकार दिया करें। अकारण व्याख्यान दें तो उनके पास उतने आदमी भी न फटकें, जितने कि परेड बाज़ार में ताक़त की दवा और ऊसर साँड़े का तेल बेचने वालों के पास

जमा हो जाते हैं। महात्माजी ने सन्धि करके सब गुड़ गोबर कर दिया। आन्दोलन चलता रहता तो कुछ तो क़द्र होती। या फिर स्वराज्य ही मिल जाय, जिससे कि जेल जाने का सार्टीफ़िकेट दिखा कर कोई ओहदा प्राप्त करें। इस प्रकार अधर में लटकने से तो कहीं के न रहे। इससे तो वही अच्छा था कि जेल में ही पड़े रहते—और कुछ न होता तो कीमत ही बढ़ती रहती। हारे दर्जे और कुछ न हो तो हिन्दू-मुसलमानों का दंगा ही होता रहे, जिससे सम्भव है, जाँच-कमीशन की मेम्बरी मिल जाय अथवा जा-बेजा तौर से हिन्दुओं को दबा कर तथा मुसलमानों की हाँ में हाँ मिला कर हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करें और इस प्रकार कुछ नाम कमाने का अवसर हाथ लगे। कुछ लोगों ने तो अपना बाहरी रूप और रङ्ग-ढङ्ग बिल्कुल महात्मा गांधी जैसा बनाया, परन्तु फिर भी महात्मा जी जैसी क़द्र न हुई। अफ़सोस!

सम्पादक जी, ऐसी दशा में हमारे भूतपूर्व जेल-तपस्वी क्या करें। कोई रोज़गार-धन्धा करें तो उसके लिए रुपया चाहिए। दूसरे यह काम भी नेता जी की चित्तवृत्ति के प्रतिकूल है। नेता जी और रोजगार-धन्धा! शिव! शिव! यही करना होता तो जेल की हवा क्या झख मारने के लिए खाई फिर! यदि ऐसा कर भी लें तो नेतापन पर हरताल पुती जाती है। वह नेता ही क्या, जो व्याख्यान देने, प्रेस-प्रतिनिधियों से बात करने के अतिरिक्त पेट के धन्धे के लिए कुछ करे। जिस के लिये लोगों को प्रत्येक समय षट्रस व्यञ्जन लिए खड़ा रहना चाहिए वह पेट के धन्धे की चिन्ता करे—डूब मरने की बात है। अतएव ये लोग करें तो क्या करें? कदाचित् आप कह उठें कि देहातों में घूम-घूम कर ग्राम-सङ्गठन करें, किसानों में जागृति पैदा करें, सो जनाब, यह कहना जितना सरल है उतना सरल करना नहीं है। देहातों में घूमने में बड़ी कठिनाइयाँ हैं। उन कठिनाइयों को आप समझ ही नहीं सकते—कभी देहातों में घूमे हों तो समझें। पहली बात तो यह है कि जेल की रोटियाँ खाने; देश-सेवा करने और व्याख्यान देने के कारण नेता महोदय का हाजमा इतना खराब हो गया है अंगूर, सेब, सन्तरा,

केला, अमरूद, गँडेरी, ककड़ी, दूध, दही, मक्खन, शहद इत्यादि के अतिरिक्त इन्हें कुछ हज़म ही नहीं होता। ये चीज़ें देहातों में कहाँ धरी हैं। देहात वाले इन चीज़ों का प्रबन्ध नहीं कर सकते। हाँ, इन चीज़ों से भरा हुआ एक छकड़ा प्रत्येक समय नेताजी के साथ रहे तो फिर देखिए, ऐसा बढ़िया ग्राम-संगठन हो, जैसा शहद की मक्खियों का होता है। इसमें सन्देह नहीं कि किसान ही देश के अन्नदाता हैं और किसानों के उद्धार पर ही देश का उद्धार निर्भर है। किसानों का जीवन ही आदर्श जीवन है। देहातों के जलवायु का क्या कहना! किसानों के बराबर कोई सीधा और सच्चा नहीं, किसानों के बराबर कोई भला-मानुष नहीं। ग़रज कि तमाम ज़माने की खूबियाँ केवल किसानों में ही घुस कर रह गई हैं। साथ ही जितनी परेशानी और मुसीबत पृथ्वी पर ब्रह्मा जी ने तवल्लुद की है, वह सब किसानों को ही झेलनी पड़ती है। यह सब ठीक है, परन्तु उनके बीच में रह कर काम करना—यह ज़रा टेढ़ी खीर है। उन्हें तो दूर से ही शिक्षा दी जा सकती है। क्योंकि न तो वहाँ अंगूर और संतरे हैं, न खस की टट्टियाँ और न बिजली के पंखे और न मोटरकारें। जौ-बेझर की रोटियाँ और मट्ठा कौन खाय? छकड़ों पर कौन सवार हो? जलती हुई धूप में कौन घूमे? अंगूर की जगह महुए और सन्तरे की जगह कैथा! सो डाक्टर दोनों चीज़ों को स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकर बताते हैं। जौ-बेझरा कैसे हज़्म होगा, गेहूँ तो हज़्म होता नहीं। फल और दूध-मक्खन के अतिरिक्त और कुछ खा ही नहीं सकते। जौ-बेझरा खाना होता तो जेल क्या बुरा था, जहाँ किसी भी समय (कोई कानून तोड़ कर) खा सकते हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ जो व्याख्यान देंगे उनको प्रेस में कौन भेजेगा? जंगल में मोर नाचा किसने देखा? तमाम ज़माने भर की लियाकत खर्च कर दीजिए, मगर दाद देने वाला कोई नहीं। कोई बात ज़रा भी उल्टी पड़ जाय तो उजड्ड किसान सिर की खाज मिटाने को तैयार हो जायँगे। वहाँ का खेल तो कभी-कभी का ही ठीक है। और वह भी इस तरह कि चार

दिन पहले से कहला भेजा कि अमुक दिन नेता जी पधारेंगे। उनके लिए पाव भर मक्खन और मक्खन के लिए मिश्री हो, शकर न हो, दो सेर दूध और जितने प्रकार के फल मिल सकें वे सब प्रस्तुत रहें। क्योंकि इसके अतिरिक्त और कुछ खायेंगे तो लौट कर आना कठिन हो जायगा। इस प्रकार तैयारी करके नेता जी एक दिन मोटरकार अथवा रेल द्वारा देहात में पहुँचे। लोगों से जय बुलवाई, पैर छुवाए और एक व्याख्यान में उनको संगठित होने की शिक्षा देकर, स्वराज्य में सर्व-सुख प्राप्ति का सब्ज़ बाग़ दिखाकर और ज़मींदारों तथा सरकार को कोस कर वापस आ गए। शहर में आकर किसी चेले द्वारा प्रेस में अपने दौरे तथा व्याख्यान की रिपोर्ट भिजवा दी—बस ग्राम संगठन और किसानों की जाग्रति का पहाड़ खुद गया। शहर में जब कभी व्याख्यान देना पड़ा तो यही रोना रोना पड़ता है कि आप लोग किसानों का संगठन कीजिए। कहते किनसे हैं? व्यापारियों से, नौकरी-पेशा वालों से। जिन्हें पेट के धन्धे से ही छुट्टी नहीं। अपने लिए तो शहर का संगठन ही ठीक है। देहात का संगठन दूसरे करें! सो फ़िलहाल शहर के संगठन का काम भी पिलपिलाया हुआ है। ऐसी दशा में इन नेताओं के लिए कोई काम नहीं रह गया। दिन भर बैठे चर्खा चलावें, यह भी असम्भव है। चर्खा चलाना तो वैसा ही है, जैसा भगवान का पूजन करना। घण्टे आध घण्टे काफी है। समय पर कसम खा सकते हैं कि हम नित्य चर्खा चलाते हैं। अपनी जीविका उपार्जन करने के लिए चर्खा चलाना बड़ा कष्ट-साध्य है। चर्खा तो दूसरों से ही चलवाना ठीक है। या फिर महात्मा जी चर्खा चला सकते हैं। और यदि नेता लोग दिन भर चर्खा चलाने लगेंगे, तो बस फिर भगवान मालिक हैं। जनता को शिक्षा कौन देगा?

ये सब कठिनाइयाँ नेता लोगों के सामने हैं। सम्पादक जी, आप ही बतावें, इन कठिनाइयों से निकलने की क्या युक्ति है?

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

: १५ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

हिन्दुस्तान की नौकरशाही इस बात की सरतोड़ चेष्टा कर रही है, कि किसी प्रकार कोई ऐसा चमत्कार हो जाय; जिससे कि गोलमेज-सभा का कचूमर निकल जाय। यद्यपि आजकल चमत्कारों का युग नहीं रहा—यह युग तो हज़रत ईसा के साथ समाप्त हो गया, परन्तु फिर भी नौकरशाही घोर आशावाद से काम ले रही है। यदि यह कहा जाय कि वह सोलहो आने चमत्कार के भरोसे ही बैठी है, सो बात भी नहीं है। वह कर्मयोग का सिद्धान्त उसी प्रकार मानती है, जिस प्रकार कि कंस और रावण ने माना था। "किए जाओ कोशिश मेरे दोस्तो" यह उसका मूल-मन्त्र है। महात्मा जी के गोलमेज सभा में जाने की बात तय हो जाने पर नौकरशाही उसी प्रकार व्याकुल हो उठी, जिस प्रकार कि नखहीन खल्वाट सिर में खुजली होने पर व्याकुल हो उठता है। "हैं! महात्मा जी लन्दन जायँगे—ग़ज़ब हो गया। तब तो आई शामत। गर्मियों में नैनीताल और शिमले का आनन्द लूटने को कैसे मिलेगा? यहाँ तो बड़े-बड़े लखपती सेठ-साहूकार, राजे-महाराजे हाथ बाँधे खड़े रहते हैं। "होम" में तो कोई टके को भी न पूछेगा। वलायत में यह स्वर्ग-सुख कदाचित कभी-कभी ख्वाब में मिले तो मिले—मगर जब मिलेगा तो नींद भी हराम कर देगा।" ऐसे विचार नौकरशाही की खोपड़ी; शरीफ़ा में बर्रं की भाँति गूँजे, तब घबरा कर ईसा-मसीह से दुआ माँगी—या ईसा-मसीह, महात्मा जी की मत पलट दे—अथवा उनके डाक्टरों की मत पलट दे, जिससे कि वे महात्मा जी को वलायत जाने की आज्ञा ही दें।

नौकरशाही इसी चिन्ता में थी, कि महात्मा जी ने कह दिया कि— "बिना मुसलमानों को राजी किए मैं वलायत जाऊँगा ही नहीं।" फिर क्या था, नौकरशाही मारे खुशी के तकधिनाधिन नाच उठी। उसने सोचा, अब क्या है—पौबारह हैं! ईसा-मसीह चाहेंगे तो मुसलमान कयामत तक राजी न होंगे। उनकी नकेल तो अपने हाथ में है। जहाँ ज़रा शह दी तो नकेल तुड़ा कर बलबलाते हुए दुलत्तियाँ फटकारने लगेंगे। सो जनाब, हुआ भी वैसा ही। मौ० शौकतअली और उनके कुछ अनुयायियों ने खूब दुलत्तियाँ फटकारीं। हिन्दुओं को कोसा, कांग्रेस को बुरा-भला कहा, महात्मा जी को खरीखोटी सुनाईं। इधर बिल्ली के भागों छीका टूटा, बनारस, कानपुर आदि में साम्प्रदायिक दंगे हुए। नौकरशाही ने तय कर डाला कि अब तो महात्मा जी वलायत कदापि न जा सकेंगे, सीधे-सच्चे आदमी हैं, जो कहा है उसका पालन अवश्य करेंगे; चाहे स्वराज्य मिले या न मिले। परन्तु नौकरशाही को यह पता नहीं था कि सीधे सच्चे होते हुए भी महात्मा जी इतने बेवकूफ नहीं हैं, जो नौकरशाही के जाल में फँस जायँ! अन्त में जब महात्मा जी ने यह कहा कि वह प्रत्येक दशा में जाने को तैयार हैं, तो नौकर-शाही मानों आकाश से गिरी! सारा गुड़ गोबर हो गया!! परन्तु फिर भी उसे मुसलमानों से बहुत कुछ आशा है। उसकी डूबती हुई नौका को पार लगाने वाले केवल मुसलमान ही हैं। वह प्रत्येक समय यही रटा करती है—'मौलाना शौकतअली तुम लग मेरी दौर—जैसे काग जहाज को सूझे और न ठौर!"

मौलाना शौकतअली भी भक्तवत्सल ठहरे। नौकरशाही की टेर पर ध्यान न देकर, महात्मा जी की बात मान लें—यह भला कैसे हो सकता है। भोपाल-कान्फ्रेन्स के भँवर में जो नैया आ गई थी, उसे मौलाना ने किस खूबी से निकाला। अपने राम तो इन हथकण्डों पर जी-जान से निसार हैं। जहाँ मौलाना हों वहाँ कोई निर्णय हो जाय! अजी तोबा कीजिए। आखिर इतना भारी-भरकम व्यक्तित्व किस दिन काम आयेगा! इधर अनेक राष्ट्रवादी मुसलमान नेता, उधर अकेले मौलाना! मगर

क्या मजाल जो त्योरी पर जरा भी मैल आ जाय ! और मैल आवे कैसे ? जिस खूँटे के बल पर वह कूद रहे हैं, पहले उस पर तो ग़ौर कीजिए । विशुद्ध अष्टधातु का बना हुआ है !!

भोपाल-कान्फ्रेन्स के असफल होने पर नौकरशाही को पुनः कुछ आशा बँधी है । डूबते को तिनके का सहारा ! सारा दारोमदार इस बात पर है कि किसी प्रकार गोलमेज सभा न होने पावे, और चाहे जो हो जाय– जी हाँ ! चाहे हिन्दू-मुसलमान आक़बत तक लड़ते रहें, चाहे रोज़ बम फटा करें, चाहे भारत में ग़दर फैल जाय । इन सबका सामना करने की शक्ति नौकरशाही में है, परन्तु गोलमेज़ कान्फ्रेन्स—उहुँक—उसका तो न होना ही अच्छा है । भगवान जाने, वहाँ महात्मा जी कौन सा मंत्र फूँक दें । महात्मा जी का इँगलैंड जाना ही बहुत ख़तरनाक बात है । क्योंकि जो महात्मा जी से मिलता है, वही उनका समर्थक बन जाता है । बड़ा अन्धेर है । लार्ड इर्विन ही को देख लीजिए । जब तक बड़े शरीफ और भलेमानुष रहे । खूब दमन किया, खूब आर्डिनेन्स निकाले । मगर महात्मा जी से भेंट होते ही जनाब, उनकी तो हवा पलट गई । और अब देखिए, इंगलैण्ड में बैठे कैसी बातें बना रहे हैं । जी हाँ, चर्चिल साहब से मोरचा ले रहे हैं । कौन चर्चिल ? वही चर्चिल, जो भारत को इतना प्यार करते हैं कि उसे अपने से अलग होने देना नहीं चाहते । क्योंकि उनका विश्वास है कि हमारा यह पाला-पोसा बच्चा यदि हमसे अलग हो गया तो फिर इसकी खैर नहीं—न जाने बेचारे की क्या दुर्दशा हो । अभी तो हमें कमा के खिलाता है, फिर इसे अपना पेट भरना भी कठिन हो जायगा । और सच्ची बात तो यह है कि अभी तक तो हमने इसकी देख-भाल की और, जब हमारी बुढ़ौती आई और वह समय आया कि यह हमारी रक्षा करे, हमारा पेट भरे, तब लोग कहते हैं कि इसे स्वतन्त्र कर दो—क्या खूब ! आजकल ठहरा कलियुग ! लड़के माँ-बाप का ख्याल नहीं करते ? यदि स्वतन्त्र हो जाने पर हमारा पालन-पोषण करने के बजाय खोपड़ी सहलाने लगे तो क्या होगा ? इसलिए और चाहे जो हो, भारत को स्वतन्त्रता नहीं मिलनी

चाहिए। सो जनाब, लार्ड इर्विन साहब भारत-हितैषी चर्चिल साहब से जबान लड़ाते हैं। यह क्या है? यह महात्मा जी के जादू का असर है। सो जनाब, ऐसे जादूगर को इंगलैंड जाने ही क्यों दिया जाय! कहीं ऐसा न हो कि चर्चिल इत्यादि पर भी उनका जादू चल जाय, तो गजब ही हो जाय। हालाँकि ऐसी उम्मीद नहीं है। चर्चिल इत्यादि भी वह जिन हैं कि कभी क़ाबू में आवेंगे ही नहीं। परन्तु फिर भी सतर्क रहना अच्छा है। जहाँ तक हो सके, ऐसा अवसर ही क्यों आने दिया जाय।

और सुनिए! उधर अमेरिका से एक डेपूटेशन इंगलैण्ड में महात्मा जी की सहायता करने आवेगा। यह और भी मनहूस बात है। उन अलल बछेड़ों को भला कौन दबा सकेगा। वे हिन्दुस्तानी तो हैं नहीं, जो दफ़ा १४४ और इसी प्रकार की अन्य बातों से भय खा जायँ! उनसे यदि अधिक छेड़-छाड़ की जायगी, तो वे धौलधप्पा कर बैठेंगे। इधर उदार-दल के लायड जार्ज इत्यादि भी कुछ ढुलमुल-यकीन आदमी हैं। कहीं भावुकता में आकर महात्मा जी को ईसा-मसीह का अवतार मान बैठें तो जनाब नौकरशाही तो कहीं की न रहेगी। और श्रीमान पञ्चम जार्ज! उनको तो महात्मा जी की झलक भी न दिखाना चाहिए। वह भी बड़े सहृदय और भावुक हैं। इसके अतिरिक्त मजदूर-पार्टी है, साम्य-वादी दल है, और स्वतन्त्रता-प्रिय स्त्रियों की फ़ौज है। गरज सब तरफ से आफ़त ही आफ़त है! इसीलिए तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि महात्मा जी इंगलैण्ड जावें ही नहीं। बस इसी में कुशल है। सो जनाब, इसकी कोई युक्ति निकालनी चाहिए। मौलाना शौकतअली आदमी तो काम के हैं, परन्तु जरा कुछ थोड़े से भड़भड़िए बहुत हैं, इसलिए पढ़े-लिखे लोगों पर उनका प्रभाव कम पड़ता है। और कोई ऐसा आदमी दिखाई नहीं पड़ता। क्या किया जाय, कुछ समझ में नहीं आता। सम्पादक जी, आप ही कोई युक्ति बताइए। मगर युक्ति बढ़िया हो। निशाने पर ऐसी बैठे, जैसे तीर बैठता है। वह केवल इतना करे कि महात्मा जी को समझा-बुझा कर गोलमेज सभा में जाने से रोक दें। महात्मा जी उसकी बात मान जायँ, तब तो अच्छा ही है, अन्यथा

कोई ऐसी चाल चले कि महात्मा जी नाराज होकर रूठ जायँ कि—"अब मैं गोलमेज कान्फ्रेन्स में कदापि न जाऊँगा।" यदि कोई ऐसा वीरबाँकड़ा, चञ्चल-चतुर मिल जाय, तो फिर क्या कहना है! उसका तो भाग्य खुल ही जाय -साथ में अपने राम और आपकी भी कुछ चाँदी हो जाय! चेष्टा कीजिए। सम्भव है, भाग्य लड़ जाय! परन्तु यदि ऐसा आदमी मिल जाय, तो उसे किसी सन्दूक में बन्द करके रख लीजिएगा। ऐसा न हो किसी दुष्ट क्रान्तिकारी को पता लग जाय तो "शूट" कर दे—इसका ध्यान रखिएगा।

भवदीय,
—विजयानन्द (दुबे जी)

: १६ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

कानपुर में चेहल्लुम हो गया। कुछ लोगों की धारणा है कि सकुशल बीत गया। परन्तु अपने राम ऐसा सोचने की भूल कदापि नहीं कर सकते। जहाँ ताजियों पर पिकेटिंग हुई हो, जहाँ ४०-५० मुसलमान भाई पिकेटिंग करने के कारण जेल में बन्द कर दिए गए हों, वहाँ के लिए यह कहना कि सकुशल बीत गया—सकुशलता का मजाक उड़ाना है। हाँ, यदि हिन्दू भाई अपनी खोपड़ी को सही-सलामत पाने के कारण ऐसा कहते हैं, तब तो यह बात सोलहो आने ठीक है। कहावत है कि, 'आप मरे तो जग मरा, आप जिए तो जग जिया।' परन्तु जरा मुसलमान भाइयों के दिल से तो कोई पूछे और विशेषतः सुन्नियों के दिल से अवश्य पूछे। उधर मुहर्रम अधूरा हुआ, चालीस दिन तक मुर्दों को घर में रक्खा। चेहल्लुम पर भी मुर्दों को दफ़नाने न पाए, अब भगवान जाने उन्हें कब तक सेंतना पड़े। जब तक ताज़िए दफ़न न हो जायँ, तब तक कोई शुभ कार्य नहीं हो सकता। स्त्रियाँ रंगीन कपड़े नहीं पहन सकतीं। यह अनन्त काल का स्यापा किसी क़दर अखरने वाला तो अवश्य हो सकता है। वे लोग मजे में रहे, जिन्होंने अशरे से लेकर चेहल्लुम तक के स्यापे का आनन्द उठा कर समझ लिया कि इसमें कुछ विशेष लुत्फ़ नहीं है, व्यर्थ की ज़िद है। इस ज़िद में अपनी ही हानि है। इन लोगों ने तो पिकेटिंग तथा विरोध होते हुए भी अपने ताजिए दफ़ना ही दिए। अब इन लोगों के लिए वे मुसलमान, जिन्होंने अपने ताजिए नहीं दफ़नाए, यह कहते हैं कि ये लोग जी-हुजूर श्रेणी के हैं। अतएव इन्होंने अधिकारियों को प्रसन्न करने के लिए ताजिए दफ़ना दिए। ताज़ियों के

दफ़नाए जाने से अधिकारियों को क्या प्रसन्नता हुई होगी, यह भगवान जानें। अपने राम तो करबला गए नहीं—सम्भव है, वहाँ रेवड़ियाँ बँटी हों और अधिकारियों की जेबें रेवड़ियों से भर गई हों। यदि हिन्दुओं का मामला होता तो यह अनुमान लगाया जा सकता था कि तेरहीं के भोज में कलेक्टर, सुपरिण्टेण्डेण्ट इत्यादि को भी निमन्त्रित करने की बात होगी; परन्तु ताज़ियों के सम्बन्ध में तो ऐसा अनुमान लगाया नहीं जा सकता—फिर इसमें अधिकारियों के प्रसन्न होने की कौन सी बात है, यह मुसलमान भाई ही बता सकते हैं। हाँ, अधिक से अधिक उनके प्रसन्न होने की बात यह हो सकती है कि उस दिन उनका यथेष्ट मनोरञ्जन हुआ। ख़ूब इधर से उधर घूमे, दिन भर चहल-पहल रही, कुछ लोगों को जेल भेजने का सौभाग्य मिला और अन्त में यह वाहवाही मिली कि—'भई वाह! ख़ूब इन्तज़ाम किया! ऐसा इन्तज़ाम किया कि न हत्याएँ हुईं, न घर लूटे गए, न कहीं आग लगाई गई।' ग़रज़ कुछ भी तो न हो पाया। अफ़सोस! जिन लोगों ने अपने ताज़िए दफ़न नहीं किए उन लोगों के पास ताज़िए दफ़न न करने का बड़ा प्रबल कारण है। और वह कारण यह है कि गांधी-सेवा-समिति का साइनबोर्ड नहीं हटाया गया। बहुधा "मारूँ घुटना फूटे आँख" वाला कारण भी बड़ा बलवान और हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। मुहर्रम में दो दिन अलमों का जुलूस नहीं निकला, उसका कारण भी यही कमबख्त साइनबोर्ड था और ताज़ियों को न दफ़नाने का कारण था उन जुलूसों का नामख़ाते लिखा जाना। साइन-बोर्ड नहीं उतारा गया, इसलिए जुलूस नहीं निकला और जुलूस नहीं निकला इसलिए ताज़िए दफ़न नहीं किए गए। अब मुसलमान भाइयों ने इस त्रैराशिक को गणित के नियमानुसार काट-पीट कर संक्षिप्त कर डाला। अतएव अब जुलूस का प्रश्न उड़ गया और रह गया केवल यह कि साइनबोर्ड नहीं उतारा गया, इसलिए ताज़िए दफ़न नहीं किये गए। कितना सुन्दर हिसाब-किताब रहा। सुन्दर क्यों न रहे, कोई मामूली दिमाग़ का लगाया हुआ हिसाब थोड़ा ही है। यह हिसाब बैरिस्टरों,

ग्रेज्युएटों, म्यूनिसिपिल कमिश्नरों के "मस्तिष्क-सम्मेलन" से उत्पन्न हुआ है। आगे चल कर सम्भव है, इसमें और उन्नति की जाय और इसका रूप यह बन जाय---ईद क्यों नहीं मनाई गई ? इसलिए कि साइनबोर्ड नहीं उतारा गया। रोज़े क्यों नहीं रक्खे गए ? इसलिए कि साइनबोर्ड नहीं उतारा गया। बकरीद पर .कुर्बानी क्यों नहीं की गई ? इसलिए कि साइनबोर्ड नहीं उतारा गया। कानपुर के मुसलमान इस वर्ष हज करने नहीं जायँगे। क्यों ? इसलिए कि साइनबोर्ड नहीं उतारा गया। मौलाना शौकतअली कानपुर कदापि न आएँगे। क्यों ? इसलिए कि साइनबोर्ड नहीं उतारा गया। मुसलमान भाई ज़िद के पक्के हैं। साइनबोर्ड के पीछे हाथ धोकर पड़ेंगे, तो कभी न कभी उतर ही जायगा। अपने राम तो मुसलमान भाइयों की एक अदा पर जी-जान से .कुर्बान हो जाने का इरादा कर रहे हैं। वह अदा थी "पिकेटिंग!" मुसलमान भाई भी पिकेटिंग करने लगे। हिजड़ों के घर बेटा तो हुआ। यह क्या कम .खुशी की बात है ? अपने राम को इस बात का रञ्ज शायद ही चैन से बैठने दे कि अपने राम ने मुसलमान भाइयों की पिकेटिंग नहीं देखी। एक तरह से अच्छा भी हुआ। यदि कहीं उनकी इस अदा पर आसक्त हो जाते तो कहीं के न रहते। परन्तु एक बात यह बहुत बुरी हुई कि सिर मुँड़ाते ही ओले पड़े। पहली ही बार धरे गए और जेल की हवा खानी पड़ी। इस सम्बन्ध में अपने राम को एक चुटकुला याद आ गया। एक जुलाहे के लड़के को मौलवी साहब घर पर पढ़ाते थे। एक दिन मौलवी साहब ने लड़के को पीटा। लड़का क्रोधित होकर घर के भीतर से चाकू ले आया और मौलवी साहब की नाक काटने दौड़ा। मौलवी साहब भयभीत होकर एक कोठरी में घुस गए और भीतर से द्वार बन्द कर लिया। इतने में लड़के के पिता को पता लगा। वह कोठरी के द्वार पर आकर मौलवी साहब से बोला---"मौलवी जी, हमारे खान्दान में आज तक किसी ने हथियार नहीं उठाया। आज हमारे होनहार ने हथियार उठाया है, तो उसका वार खाली मत जाने दीजिए। दरवाज़ा खोल कर चुपचाप नाक कटवा लीजिए, नहीं तो लड़के का

हौसला पस्त हो जायगा।" इस कहावत के अनुसार यदि अपने राम वहाँ पर उपस्थित होते तो जो मुसलमान भाई अपने ताज़िए दफ़न करने के लिए ले गए थे, उनसे निवेदन करते कि—भाइयो, ताज़िए चाहे दफ़न हों या न हों, परन्तु आप पिकेटिंग करने वालों का उत्साह भंग न कीजिए। ज़रा हिम्मत तो खुलने दीजिए। क्यों सम्पादक जी, आपकी क्या राय है? ऐसा होना चाहिये या नहीं? उन बेचारों का उत्साह भंग हो गया, इससे क्या लाभ हुआ? कुछ नहीं। वैसे अपने राम को यह पूर्ण विश्वास है कि मुसलमानों का मामला था इससे पिकेटिंग की गई। यदि कहीं हिन्दू-मुसलमानों का मामला होता तो पिकेटिंग के स्थान पर "पिटोइंग" हो जाती। उस समय मुसलमान भाइयों को पिकेटिंग का ध्यान भी न आता। और आनन्द यह है कि साइनबोर्ड को मुसलमान भाई केवल इसलिए उतरवाना चाहते हैं कि उस पर गांधी जी का नाम है। गांधी जी के सामने तो क्या, उनके नाम के सामने भी मुसलमानों के झण्डे नहीं झुक सकते। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उन्हीं गांधी जी के सिद्धान्तों का आश्रय लिया जाता है। ठीक है—मीठा-मीठा हप, कड़ुवा-कड़ुवा थू। जहाँ अपने मतलब की बात हो, जहाँ अपना स्वार्थ पूरा होता हो वहाँ गांधी जी के बताए हुये रास्ते पर चलना ही ठीक है; परन्तु वैसे गांधी जी के नाम से नफ़रत। कितना अच्छा सिद्धान्त है। कुछ भी हो परन्तु इससे यह पता तो चल गया कि आवश्यकता पड़ने पर मुसलमान भाइयों को भी गांधी जी का अनुकरण करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता। लक्षण तो शुभ हैं।

अब सुना जाता है कि जो ताज़िये सड़कों और चौराहों पर विराजमान हैं, उनके हटाने के लिये अधिकारियों की ओर से मुसलमानों को नोटिस दिया गया जायगा। अफ़वाह है कि यदि अधिकारी लोग जबरदस्ती से ताजिए हटवाएँगे तो मुसलमान लोग सत्याग्रह करेंगे। यह और भी प्रसन्नता की बात है। पिकेटिंग तो मुसलमान भाइयों को आ गया, अब अहिंसात्मक सत्याग्रह का सबक़ और सीख लें, तो बस फिर

क्या है—हिन्दुस्तान का बेड़ा पार लग जाय ! परन्तु यह सबक़ हिन्दुओं के मुक़ाबिले में भी मुसलमान भाई याद रक्खेंगे, इसमें अपने राम को सन्देह है। अधिकारियों के मुक़ाबले में तो अहिंसात्मक सत्याग्रह के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है ? बन्दूकों तथा संगीनों का मुक़ाबला कौन कर सकता है ! हाँ, यदि समय पड़ने पर निहत्थे हिन्दुओं के मुक़ाबले में भी यही अहिंसा का भाव रहे, तब पता चले कि मुसलमान भाइयों ने अपना सबक़ ठीक तरह से याद किया है या नहीं।

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: १७ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की।

क्या गांधी-इर्विन समझौता टूट जायगा ? हालाँकि कुछ लोगों का ख्याल तो यह है कि वह टूट चुका है, या तोड़ा जा रहा है। परन्तु अपने राम इतनी जल्दी तोड़-फोड़ हो जाने के ज़रा कम क़ायल रहते हैं। हालाँकि यह बात भी पक्की है कि बनाने में चाहे बरसों लग जायँ। परन्तु तोड़ने में कुछ देर नहीं लगती। कमाने में मुद्दतें गुज़र जाती हैं, लेकिन खर्च करने में समय नहीं लगता। यह सब बहुत पुराने बंधे-टँके उसूल हैं। कुछ लोगों का ख्याल है कि यदि इर्विन महोदय वायसराय होते, तो यह समझौता कदापि न टूटता। वलायत में इर्विन महोदय की जो क़द्र हुई, वह सब जानते हैं। इधर हिन्दुस्तान में नौकरशाही ने उनकी उतनी ही क़द्र की, जितनी कि "उतरा शहना मर्दक नाम" की कहावत के अनुसार की जा सकती थी। इससे अधिक बेचारी नौकरशाही और कर ही क्या सकती थी। समझौता तोड़ने के सम्बन्ध में कुछ लोग नौकरशाही को ज़िम्मेदार ठहरा रहे हैं। अपने राम की समझ में यह बात ज़रा कम आती है। नौकरशाही समझौता तोड़ ही नहीं सकती। यदि तोड़ सकती हो जनाब, अब तक कभी का तोड़ डालती। असल में बात यह है कि यह समझने वालों की समझ का फ़ितूर है। आख़िर यह कैसे समझा गया कि समझौता तोड़ने की कोशिश की जा रही है। नौकरशाही षड्यन्त्र केसों की सृष्टि कर रही है, किसानों पर दमन कर रही है, कांग्रेस वालों को दिक़ कर रही है, शान्तमय धरना देने वालों को गिरफ़्तार कर रही है—बस इतनी ही बातें हैं ना? सो जनाब, यह कोई ऐसी बातें नहीं हैं, जिनसे यह समझा जाय, कि नौकर-

शाही समझौता तोड़ने की चेष्टा में है। अरे भई, कोई अपना प्रबन्ध न करे, इन्तज़ाम न करे, इसमें समझौता तोड़ने की कौन सी बात है? षड्यन्त्र तो हो ही रहे हैं और होते ही रहते हैं। यदि न हों तो सी० आई० डी० विभाग किस मरज़ की दवा है। आख़िर इस विभाग वाले यह भी तो समझते हैं कि उनका हराम की तनख्वाह लेना परमात्मा को दुखेगा। इसलिए वह अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं। दूसरे यदि कौंसिलों में प्रश्न उठा दिए गए कि सी० आई० डी० विभाग ने कौन सा तीर मारा, तो क्या उत्तर दिया जायगा? अतएव यह आवश्यक है कि कुछ न कुछ होता रहे। साथ ही यह बात भी है कि अन्य देशों को भी पता चलता रहेगा कि हिन्दुस्तान में अङ्गरेजों पर कैसे-कैसे अत्याचार हो रहे हैं! बेचारों के लिए नित्य बम तैयार होते हैं। लोग उनके ख़ून के प्यासे घूमा करते हैं, परन्तु पीने को नसीब नहीं होता। ब्रिटिश सरकार को उलटने के लिए जब नवयुवक तक पिस्तौल बांधे घूमते हैं, तो जवान, अर्द्धवस्यक और बुड्ढे तो भगवान जाने क्या करते होंगे। वे जो कुछ करते हैं, यदि उसका पता लग जाय तो अन्धेर ही हो जाय। यह तो कहिए कि सी० आई० डी० विभाग ही ऐसा है, जो थोड़ी-बहुती बातों का पता अपनी तबीयत से लगा लेता है! और यह ब्रिटिश सरकार का भाग्य है कि सी० आई० डी० पकड़ती एक को है और दस अपने आप जेल में घुसे चले आते हैं। इनाम-इकराम के लालच में कमबख़्त ख़ुद ही मुख़बिर बन जाते हैं और बदनाम करते हैं पुसिल को! हालांकि इन मुख़बिरों के कारण पुलिस को बड़ी परेशानी उठानी पड़ती है। उन्होंने किसी ऐसे व्यक्ति का नाम ले दिया कि जिसकी सूरत भी कभी पुलिस ने नहीं देखी, नाम भी नहीं सुना। अब मुख़बिर साहब तो टका भर की ज़बान हिला कर अलग हो गए। उधर पुलिस को उसकी तलाश करने की चिन्ता सवार हुई। इन सब बातों के देखते हुए यह कहना एक बड़ी साधारण सी हिमाक़त है कि सरकार दमन कर रही है।

अब किसानों पर अत्याचार करने की बात पर विचार करना चाहिए। किसानों पर सरकार नहीं, वरन् ज़मींदार अत्याचार कर रहे

हैं। सरकार का इसमें कोई अपराध नहीं है। हां, ज़मींदार जब किसानों के अत्याचार से पीड़ित होकर सरकार से सहायता मांगते हैं, तब मजबूरन सरकार को सहायता देनी पड़ती है। यदि वह ऐसा न करे तो अपने कर्त्तव्य से गिर जाय। ज़मींदारों ही की बदौलत उसे मालगुजारी मिलती है। अतएव यदि वह ज़मींदारों के साथ ऐसे अवसर पर दग़ा करे तो विश्वासघातक कहलाएगी। दूसरे यदि ज़मींदार को लगान न मिलेगा तो सरकार को मालगुजारी कहाँ से मिलेगी? इसलिए ज़मींदारों की सहायता करना आवश्यक है। भले आदमियों का यह काम नहीं है कि जिससे अपने को लाभ होता हो उसको समय पड़ने पर सहायता न दें। यह माना कि इससे किसानों को कष्ट पहुँचता है, परंतु ईससे क्या हुआ? किसान तो सदैव ही कष्ट भोगते रहते हैं। उन्हें तो कष्ट भोगने और भूखों मरने की आदत हो गई है। ख़राबी तो बेचारे ज़मींदारों की है, जो हमेशा तर-माल उड़ाते रहे हैं। वे कष्ट कदापि नहीं भोग सकते, और सरकार के होते हुए वे कष्ट भोगें, यह भी तो सरकार के लिए डूब मरने की बात है। इसलिए इन सब बातों पर ग़ौर करते हुए सरकार पर यह दोषारोपण करना भी अनुचित है कि वह किसानों पर दमन कर रही है। कुछ लोग इस बात से असन्तुष्ट हैं कि किसानों के लगान में यथेष्ट छूट नहीं की गई। सो यह तो अपनी अपनी समाई की बात है। आखिर सरकार का भी कुछ खर्च है या नहीं? या वह हवा ही फाँक कर रहती है। कहने और करने में बड़ा फ़र्क़ होता है। यदि दोषारोपण करने वाले सरकार की स्थिति में होते तो उन्हें पता चलता। नुक़्ताचीनी करना तो बड़ा आसान है। यह कहा जा सकता है कि सरकार फौजी खर्च घटा कर, बड़े-बड़े अफसरों की तनख्वाहों में कमी करके अपनी कमी को पूरा कर सकती है। सो जनाब, यह काम भी बड़ा कठिन है। अफ़सर लोग अपना देश, घर-द्वार छोड़ कर सात समुद्र पार आते हैं, तो इसी लालच से कि लम्बी तनख्वाह मिलेगी। अन्यथा मक्खन-रोटी तो विलायत में भी मिल सकती है। यदि उनकी तनख्वाह कम की जाय और वह नाराज़ होकर चल दें, तो यहाँ का

इन्तज़ाम कौन करे ? हिन्दुस्तानियों को इतना माद्दा अभी ईसा मसीह ने अता नहीं फ़र्माया है कि वह अच्छा इन्तज़ाम कर सकें। फ़ौजी खर्च को घटाया जाय तो भारतवर्ष में ग़दर फैल जाय ! जब इतनी फौज मौजूद है, तब तो रात-दिन लूट-मार, डाक़ाजनी, साम्प्रदायिक झगड़े होते ही हैं—यदि इसमें भी कमी कर दी जाय तो हिन्दुस्तान ग़ारत हो जाय। ये बातें सर्व-साधारण नहीं समझ सकते। जो शासन करते हैं, वे ही समझ सकते हैं !

अब काँग्रेसवादियों पर दमन करने की बात को लीजिए। सो यह तो कोई नई बात नहीं है। काँग्रेस वाले हैं भी बड़े ऊधमी ! सब जगह अपनी टाँग अड़ाते हैं। इन्होंने तो मानों खुदाई फौजदारी का ठेका ही ले लिया है। यह अन्धेर तो देखिए, कि ज़रा भी भय नहीं खाते। किसानों से कहते फिरते हैं कि लगान न दो और मशहूर यह करते हैं कि किसानों को लगान देने के लिए कह रहे हैं। महात्मा जी को छोड़ कर अन्य सब काँग्रेसमैन समझौता तोड़ने की भरसक चेष्टा कर रहे हैं। लोगों से कहते हैं, युद्ध के लिए तैयार रहो। यह भी कोई भलमनसी की बातें हैं। उन्हें कहना चाहिए कि, "भाइयो, अब कभी युद्ध का नाम मत लेना, चाहे स्वराज्य मिले या न मिले।" समझौते के अर्थ ही यह हैं। बताइए, विदेशी कपड़े पर फिर धरना आरम्भ कर दिया है। वह नाक में दम कर देने वाली बात है या नहीं ? उधर लंकाशायर वाले अलग परेशान कर रहे हैं कि बॉयकॉट हटवाओ, इधर काँग्रेस वाले समझौता होने पर भी धरना दे रहे हैं। ऐसी दशा में भारत-सरकार बेचारी क्या करे—ज़हर खा ले ? काँग्रेस वालों की आँखों में तो ज़रा भी शील नहीं रहा। सरकार ने उनके साथ क्या-क्या नेकियाँ की हैं। जेल से छोड़ दिया, मुक़दमे उठा लिए, परन्तु फिर भी इनका मिजाज नहीं मिलता। बड़े अफ़सोस की बात है। अभी हाल में एक दारोग़ा साहब की शिकायत छपी थी कि वह लोगों को मुफ्त शराब तथा ताड़ी पिलाने का प्रलोभन दिखाते हैं। अब देखिए, इसमें भी लोग ऐब समझते हैं। पूछिए, कोई वस्तु मुफ्त में बाँटना अच्छा है या बुरा ? उस दारोग़ा बेचारे की

भलमनसाहत को तो देखते नहीं, कि उसने कितने उपकार का काम करना विचारा था। शराब और ताड़ी पीना इसीलिये तो बुरा माना जाता है कि उसमें पैसा व्यर्थ तथा आवश्यकता से अधिक खर्च हो जाता है। परन्तु यदि ये वस्तुएं मुफ्त मिलती हैं तो फिर पीने में क्या हर्ज है? मुफ्त की शराब काज़ी तक के लिए हलाल मानी गई है। अपने राम का तो यह कथन है कि यदि मुफ्त मिले तो संखिया भी खा लेना चाहिए—यह तो भला शराब और ताड़ी है। परन्तु कहें किस से? अंधे के आगे रोवें अपने दीदे खोवें। जिस वस्तु के लिए मज़बूर लोग अपनी गाढ़ी कमाई का अधिकांश खर्च कर डालते हैं, वह मुफ्त मिले तब भी उसमें दोष समझा जाय! बलिहारी है इस बुद्धि की। इसी बुद्धि पर हिन्दुस्तानी स्वराज्य माँगते हैं?

सम्पादक जी, अब आप समझे कि सरकार पर समझौता तोड़ने का जो दोषारोपण किया जा रहा है, वह सरासर ग़लत है। यह सरकार की फूटी क़िस्मत का दोष है कि वह जो कुछ करती है, लोग उसके उलटे ही अर्थ लगाते हैं। जब दिन बुरे आते हैं तब ऐसा ही होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आजकल सरकार के दिन बहुत ही बुरे हैं।

भवदीय
—विजयानन्द (दुबे जी)

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

कल रात में अपने राम ने एक बड़ा विचित्र स्वप्न देखा। विजया की झोंक में शाम ही से पड़के सो गए। पहले तो कुछ ऊट-पटांग स्वप्न देखा, तत्पश्चात् क्या देखते हैं कि एक पहाड़ी स्थान में चले जा रहे हैं। अब अपने राम चक्कर में पड़े कि कहाँ से कहाँ आ गए। न टिकिट लिया, न रेल पर सवार हुए, फिर यहाँ कैसे आ गए। फिर समतल भूमि होती तो भी गनीमत थी, पहाड़ पर कैसे चढ़ आए। यह तो अपने राम के स्वभाव के विरुद्ध बात हुई। क्योंकि अपने राम पहाड़ को दूर ही से देख कर उसका आनन्द उठा लेते हैं, पास कभी नहीं फटकते। हरिद्वार गए तो लोगों ने कहा; उस पहाड़ी पर देवी जी हैं—अपने राम ने नीचे ही से हाथ जोड़ लिए। लोगों ने ऊपर जाने के लिए आग्रह किया परंतु अपने राम ने साफ़ इन्कार कर दिया। कहा-देवी जी यदि अपने राम को दर्शन देना चाहें, तो नीचे आने का कष्ट करें, अपने राम तो ऊपर जाने से रहे। लोगों ने कहा—"देवी जी को क्या ग़रज, जो नीचे आवें।" अपने राम ने उत्तर दिया—"तो फ़िलहाल अपने राम को भी ऊपर जाने की कोई खास ज़रूरत नहीं है।" इसी प्रकार अजमेर में दो-एक पहाड़ियों को दिखाकर लोगों ने कहा-इस पर तारागढ़ का क़िला है, इस पर हनुमान जी का मन्दिर है, यह नागा पहाड़ है, इस पर एक पानी के कुण्ड में हज़ारों साँप रहते हैं-देखने योग्य चीज़ है। परन्तु अपने राम टस से मस नहीं हुए। अपने राम को कुछ तारागढ़ का किला तो फ़तह करना ही न था, हनुमान जी के मन्दिर अपने शहर ही में गली-गली हैं। रहा नाग पहाड़, सो जनाब, यहाँ बिच्छू का मन्त्र तक

नहीं आता, नाग पहाड़ पर जाकर जान खतरे में कौन डालता है। एक साँप को देख कर ही रूह फना हो जाती है–हजारों साँप देख कर तो बिना साँप काटे ही जहर चढ़ जाता। इसी अजमेर के अन्नसागर में साँपों को पानी में तैरते देख कर सागर की सूरत से नफरत हो गई–अन्यथा पहले तो इच्छा हुई थी कि स्नान कर डालें। अन्नसागर की श्वेत सुन्दर सीढ़ियों पर साँप के बच्चों को बिलबिलाते हुए देख कर इच्छा हुई थी कि कमिश्नर को लिख भेजें कि यहाँ की म्यूनिसिपैलिटी सख्त नालायक है, जो इस प्रकार साँपों को बिना इजाजत घूमने-फिरने देती है। ओहो! सम्पादक जी, क्षमा कीजिएगा। मैं कहाँ से कहाँ बहक गया। हाँ, तो अपने राम को जब पहाड़ की चढ़ाई से इतनी सख्त नफ्-रत है, तो फिर इस शैल पर कैसे आ गए। परन्तु करते क्या, मजबूरी थी–अब तो आ ही गए। खैर, जब आ ही गए हैं तो कुछ सैर-सपाटा तो कर ही लेना चाहिए। यह सोच कर आगे बढ़े। आकाश और पाताल में बने हुए सुन्दर मकानों को देखते-देखते एक बहुत बड़े और अत्यन्त सुन्दर भवन के सामने पहुँच गए। इस मकान पर "गार्ड" का पहरा था। उन्होंने देखते ही ललकारा कि इधर कहाँ आते हो! मैंने उत्तर दिया–"भाई मैं अपनी इच्छा से यहाँ नहीं आया हूँ। मेरा वश चलता तो मैं यहाँ आना तो क्या, इधर मुँह करके भी न बैठता। खैर, जब आ ही गया हूँ, तो कृपा करके यह तो बता दो कि यह भवन किसका है?" उनमें से एक ने उत्तर दिया–"क्या तुम इतना भी नहीं जानते?" मैंने कहा–"मैं इतना क्या बहुत-कुछ नहीं जानता। अभी तुम मुझे जानते नहीं हो कि मैं कौन हूँ।" उसने जवाब दिया–"यह वायसराय का महल है।" अररर! इतना सुनना था कि अपने राम तुरन्त समझ गए कि दुर्भाग्य शिमला शैल पर खींच लाया। नाम बहुत दिनों से सुनते थे, पर आज बदकिस्मती से देख भी लिया। खैर, चलो वायसराय महोदय से मिलते चलो। यहाँ का आना तो सुफल हो जाय! यह सोच कर गार्ड से कहा–"हिज एक्सिलेन्सी को सूचना दो कि चुबे जी महाराज आपसे मिलना चाहते हैं।"

गार्ड ने कहा—अपने नाम का कार्ड दो।

मैंने उत्तर दिया—तुम बड़े अहमक़ आदमी हो, जब मैंने तुमसे कह दिया कि मैं अपनी इच्छा से यहाँ नहीं आया हूँ, तो फिर कार्ड और लिफाफे की बात क्यों करते हो? अपनी इच्छा से आता तो कार्ड, लिफाफे, स्टाम्प, गोंददानी इत्यादि सब ले आता। फ़िलहाल तो बिल्कुल निहत्था आया हूँ।

ख़ैर जनाब, थोड़ी देर तू तू-मैं मैं होती रही और गाली-गलौज तथा जूता-लात पर नौबत आने ही वाली थी कि हिज़ एक्सिलेन्सी ख़ुद बाहर निकल आए। मैंने बड़े अदब से झुक कर सलाम किया। हिज एक्सिलेन्सी ने पूछा—"क्या चाहते हो?" मैंने उत्तर दिया—"श्रीमान् से दो-दो बातें करना चाहता हूँ।"

फिर प्रश्न किया गया—कहाँ से आए हो?

मैंने उत्तर दिया—"मैं स्वयम् तो आया नहीं हूँ, और न मुझे यह पता है कि मैं कैसे यहाँ आ गया। परन्तु फिर भी श्रीमान् से वार्त्तालाप करने की बड़ी लालसा है।" हिज़ एक्सिलेन्सी थोड़ी देर तक मेरी सूरत देखते रहे, तत्पश्चात् उन्होंने एक गार्ड से कुछ इशारा किया। उस गार्ड ने आगे बढ़ कर मेरी जामा-तलाशी ली। मैं समझ गया कि हिज़ एक्सि-लेन्सी को सन्देह है कि कहीं मैं कोई पिस्तौल या बम तो नहीं लाया हूँ। मैंने तुरन्त कहा—"श्रीमान किसी बात की चिन्ता न करें, पिस्तौल की सूरत मैंने दूर से दो-एक बार देखी है—हाथ से छुआ हो तो क़सम ले लीजिए और बम का नाम अख़बारों में पढ़ा है। मुझे यह भी पता नहीं कि वाक़ई बम कोई चीज़ होती भी है या लोगों ने योंही नाम मशहूर कर दिया। पिस्तौल-बन्दूक़ की तो बात ही क्या, मैं अपने पास पेन्सिल बनाने के लिए चाकू तक तो रखता नहीं; क्योंकि जबसे फाउन्टेनपेन खरीदा तब से पेन्सिल का काम ही नहीं पड़ता। इस प्रकार मैं अपने पास कोई हथियार नहीं रखता, खाली ज़बानी जमा खर्च रखता हूँ।" यह सुन कर हिज़ एक्सिलेन्सी मुस्कराए और मुझे अन्दर बुला ले गए। एक आलीशान कमरे के अन्दर ले जाकर एक मख़मली ईज़ी-चेयर

पर बिठाया और स्वयं सामने बैठ कर बोले—"कहो, क्या कहना चाहते हो ?" मैंने उत्तर दिया—"मैं कहना तो कुछ भी नहीं चाहता, केवल कुछ पूछना चाहता हूँ।" हिज़ एक्सिलेन्सी बोले—"हाँ हाँ, मेरा मतलब यही है कि तुम्हें जो कुछ पूछना हो पूछो।"

मैंने पूछा—पहले यह बताइए कि आप हिन्दुस्तान में आकर प्रसन्न तो हैं। क्योंकि आजकल हिन्दुस्तान की जो दशा है, उसे देखते हुए बहुत कम वायसरॉय ऐसे निकलेंगे, जो यहाँ आकर प्रसन्न रहें।

हिज़ एक्सिलेन्सी ने कुछ क्षणों तक विचार कर कहा—यह तो बड़ा टेढ़ा प्रश्न है। मैं स्वयम् नहीं जानता कि मैं यहाँ आकर प्रसन्न हूँ या नहीं। हाँ, मैं यह कह सकता हूँ कि मेरे मातहत मुझे प्रसन्न रखने की पूरी चेष्टा करते रहते हैं।

मैंने कहा· सो तो अवश्य करते रहते होंगे। क्योंकि आपको प्रसन्न रक्खे बिना वे अपनी इच्छानुसार कभी कोई काम नहीं कर सकते। अच्छा, अब यह बताइए कि राउण्डटेबुल कॉन्फ्रेन्स होगी ही, मानेगी नहीं ?

हिज़ एक्सिलेन्सी ने उत्तर दिया—अवश्य होगी, न होने के क्या मानी ?

"मानी और अर्थ पूछने की मेरी मजाल नहीं, मैं तो केवल बात पूछना हूँ। अच्छा अब यह बताइए कि राउण्डटेबुल कॉन्फ्रेन्स में कुछ मिलेगा भी या नहीं ?

"इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। यह तो हिन्दुस्तान की तक़दीर है। हिन्दुस्तान की तक़दीर में होगा तो मिल जायगा।"

"बेशक ! बेशक ! तक़दीर का तो सारा खेल ही है। जैसे श्रीमान् को तक़दीर से हिन्दुस्तान की वायसराई मिल गई, वैसे ही सम्भव है, हिन्दुस्तान को क़िस्मत से कुछ मिल जाय ! क्यों, यही बात है न ?"

"हाँ, ऐसी ही बात हो सकती है।"

"अच्छा, अब यह बताइए कि यदि राउण्डटेबुल कॉन्फ्रेन्स फेल हो गई तो क्या होगा ?"

"फ़ेल कैसे होगी ? फ़ेल कभी नहीं होगी ।"

"हाँ, यह अपने राम को पूर्ण विश्वास है कि आपके मारे कभी न फ़ेल होने पाएगी, परन्तु फिर भी एहतियातन पूछे ले रहा हूँ ।"

"हिन्दुस्तान की तक़दीर खराब होगी, तो अवश्य फ़ेल हो जायगी ।"

"मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि श्रीमान् शनैःशनैः भाग्यवादी होते जा रहे हैं। मान लीजिए कि अगर फ़ेल हो गई तो फिर क्या होगा ?"

"जो ख़ुदा को मंजूर होगा, वह होगा ।"

"ख़ुदा को तो जो मञ्जूर होगा वह होता रहेगा—फ़िलहाल आप को क्या मञ्जूर होगा ?"

"जिसमें हिन्दुस्तान की भलाई होगी, हमको वही मञ्जूर होगा ।"

"बेशक कायदे से ऐसा होना ही चाहिए, परन्तु आप अपनी व्यक्तिगत बात छोड़ कर ब्रिटिश सरकार की बात कहिए ।"

"ब्रिटिश सरकार की बात ब्रिटिश सरकार जाने। पराये दिल का हाल हम क्या बता सकते हैं ?"

"साम्प्रदायिक प्रश्न कब हल होगा ?"

"जब ख़ुदा की मर्ज़ी होगी ।"

"श्रीमान तो पूरे वली-अल्लाह की सी बातें करते हैं—यह बहुत ही बड़ी भारी ख़ुशी की बात है। परन्तु फिलहाल तो मैं आपकी मर्ज़ी की बात जानना चाहता हूँ कि आपकी मर्ज़ी क्या है। साम्प्रदायिक झगड़ों को आप मुहब्बत की निगाह से देखते हैं या नफ़रत की ?"

"नफ़रत की !"

"इनको बन्द करने के लिए आप कुछ प्रयत्न करते हैं या नहीं ?"

"हम बहुत प्रयत्न करते हैं, परन्तु हिन्दुस्तान इतना जाहिल मुल्क है कि उस पर किसी बात का असर नहीं होता ।"

"वाक़ई बड़ा जाहिल मुल्क है, यह बात आप एक दफा फिर कहिए। अपनी ख़ुशी से नहीं, तो मेरी ख़ातिर से कह दीजिएगा ।"

"हम एक बात को एक ही दफ़ा कहते हैं, दोबारा नहीं।"

"वाकई एक ही दफ़ा कहने से आपकी बात का पूरा असर होजाता है—दोबारा कहने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।"

"और कुछ पूछना चाहते हो ?"

"पूछना तो बहुत कुछ चाहता था, परन्तु आप ऐसे माकूल जवाब देते हैं कि अब कुछ पूछने का साहस नहीं पड़ता।"

"अच्छा तो सलाम !"

यह कह कर वायसराय महोदय ने मझे विदा किया। बाहर आकर मैंने जो सोचा कि वायसराय की मुलाक़ात से मुल्की मामलात में मेरी कुछ ज्ञान-वृद्धि हुई, तो मुझे पता लगा कि जैसा कोरा मै पहले था, वैसा ही अब भी हूँ। इतना मालूम होते ही मेरे हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि वायसराय में यही एक बात ऐसी है, जो उन्हें वायसराय बनाती है। मेरे सब प्रश्नों के उत्तर भी दे दिए, परन्तु मेरी ज्ञान-वृद्धि ख़ाक भी न हुई। धन्य है, ऐसे न होते तो कनाडा से यहाँ क्यों····।

अकस्मात् आँख खुल गई, देखा कि शिमला-शैल के बजाय अपने मकान की छत पर लेटा हुआ हूँ। थोड़ी देर के लिए अफ़सोस हुआ, परन्तु फिर यह सोच कर सन्तोष हुआ कि अपना शिमला तो यही है।

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: १९ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

नेपोलियन कहा करता था कि 'असम्भव' शब्द मूर्खों के कोष में होता है। इसी प्रकार यदि मि० अर्नेस्ट हाटसन भी कहें तो उनके मुख से बहुत ही शोभा दे। क्यों न हो, आखिर उन्होंने गांधी जी को रोक ही लिया। लोगों ने हालांकि बड़े जोर लगाये थे, परन्तु फिर भी महात्मा जी चले ही जा रहे थे—किसी के रोके नहीं रुक रहे थे—तब नौकरशाही ने आँखों में आँसू भर कर कहा—"जान पड़ता है ब्रिटिश जाति वीरों से खाली हो गई।" यह सुन कर बड़े-बड़े महारथियों ने सिर झुका लिया। आखिर मि० हाटसन से न रहा गया। उन्होंने कहा—"अभी बड़े-बड़े वीर मौजूद हैं, हालांकि सूरत से वह वीर नहीं मालूम होते। मगर सूरत से होता क्या है ? बड़े-बड़े पाजी-सूरत शरीफ़ निकलते हैं और शरीफ़सूरत पाजी प्रमाणित होते हैं ! मैं इनमें से कौन हूँ, यह आप ही लोग जानें या मेरे काम बता देंगे। गांधी जी जैसे आदमी को, जो पग-पग पर मचलते हैं, जो पहले से ही यह इरादा किए बैठे हैं कि जहाँ तक हो सकेगा, लन्दन नहीं जायेंगे, रोक लेना क्या कठिन है ? वह तो एक फुलझड़ी में जहाज पर से भी उतर आ सकते हैं। कहिए तो यहीं से न जाने दूं, कहिए अदन से वापस बुला लूं, कहिए मार्सलेज़ से लौटा लूं। और हुक्म हो तो यह कमाल दिखाऊँ कि लन्दन पहुँच कर भी गोलमेज़ कान्फ्रेन्स में भाग न लें। वाह वा ! वाह वा ! इस बीसवीं शताब्दी में भी ऐसा आदमी मौजूद है ! बिलकुल ग़लत ! यकीन नहीं आता ! तो फिर दिखाऊँ कमाल ? अच्छा जाओ मैं गांधी जी को रोकने का जाम अर्थात् बीड़ा (यूरोपियनों में बीड़े की जगह जाम उठाया

जाता है) उठाता हूँ। सो जनाब, ऐसा बढ़िया जाम उठाया कि महात्मा जी को रोक ही तो दिया। वाह रे, मेरे शेर! जो काम किया तूने वह रुस्तम से न होगा। अब मि० हाटसन को जल्दी ही कोई खिताब मिल जाना चाहिए, वरना उनका उत्साह भंग हो जायगा। अपने राम ने तो उन्हें "ब्रिटिश साम्राज्य उद्धारक" का ख़िताब दे ही डाला। इसमें सन्देह नहीं कि यदि गांधी जी वलायत चले जाते तो ब्रिटिश साम्राज्य की नैया मँझधार में डूब जाती। मि० हाटसन की बदौलत अब वह मोटर बोट की तरह फ़र्राटे भरती हुई जल-विहार कर रही है।

वल्लाह कितने बढ़िया तर्क निकाले हैं। पहला तर्क तो यह है कि दिल्ली का समझौता नहीं टूटा। कैसे टूट सकता है? टूटना कोई दिल्लगी तो है नहीं। नौकरशाही का कोई व्यक्ति समझौता तोड़ ही नहीं सकता। लॉर्ड इर्विन इतने बुद्धिमान आदमी थे कि समझौता तोड़ने की युक्ति किसी को बता ही नहीं गए। क्योंकि वह जानते थे कि यदि युक्ति बता दी जायगी तो लोग फौरन से पेश्तर समझौते को तोड़-फोड़ कर रख देंगे। इसके अतिरिक्त भारत-सरकार के सिवा और कोई यह पता नहीं लगा सकता कि समझौता टूटा या नहीं। भारत-सरकार के पास ऐसे ऐसे यन्त्र हैं कि केवल उन्हीं यन्त्रों से किसी टूट-फूट का पता लग सकता है। जो वस्तु वैसे देखने से टूटी दिखाई पड़ती है वह वस्तु यदि इन यंत्रों से देखी जाय तो कदापि टूटी हुई न मिलेगी। जो चीज़ वैसे अटूटी दिखाई पड़ती है वह इन यन्त्रों से टूटी हुई दिखाई देगी। यह सब विज्ञान की करामत है। हिन्दुस्तानी आदमी इन वैज्ञानिक बातों को नहीं समझ सकते। वे तो जो स्थूल दृष्टि से देखते हैं वही ठीक समझने लगते हैं। यही कारण है कि ये लोग जो करते हैं वह पूरा नहीं उतरता। यदि सूक्ष्म दृष्टि से वैज्ञानिक क्रियाओं से तथा वैज्ञानिक यन्त्रों के द्वारा काम करें तो फिर देखिए काम कैसा फिट बैठता है। देखा जनाब, केवल इस तर्क से महात्मा जी का वलायत जाना रुक गया। मगर कुछ लोग ऐसे भी निकले जिन्हें यह तर्क बिल्कुल ठीक जँचा। सर तेजबहादुर सप्रू, मि० जयकर, मौलाना शौकतअली उर्फ़ बड़े भैया, डॉ० मुञ्जे इत्यादि

तो चले ही गए—माने नहीं। चले न जाते तो करते क्या? गोलमेज़ कॉन्फ़ेन्स कोई छोड़ने की चीज़ है! न जाने पूर्वजन्म के किन पुण्यों से यह अवसर नसीब हुआ, सो उसे ज़रा सी बात के लिए छोड़ दें? महात्मा जी का हृदय तो खुर्दबीन की ख़ासियत रखता है, उन्हें तो छोटी बात भी बहुत बड़ी दिखाई देती है। और इन लोगों को ईश्वर की दया से ऐसा हृदय प्राप्त हुआ है कि हाथी का सवार भुनगा दिखाई पड़ता है। महात्मा जी बात का बतंगड़ बना देते हैं, परन्तु ये लोग तो कम्बख़्त बतङ्गड़ को भी रसबतियों में बदल देते हैं। ऐसे आदमियों से भला कोई कैसे जीत सकता है? कोई कुछ कहे, कोई कुछ करे, परन्तु कॉन्फ़ेन्स नहीं छूटेगी। वहाँ तो जाना ही पड़ेगा। क्या महात्मा जी न जायँगे तो स्वराज्य न मिलेगा? शिव! शिव! स्वराज्य कम्बख़्त तो मिलने के लिए रस्सियाँ तुड़ा रहा है। केवल लोगों के वलायत पहुँचने की देर है। महात्मा जी तो ख़ामख़ाह चलती गाड़ी में रोड़ा अटकाते हैं। मान लीजिए, यदि भारत-सरकार ने समझौता तोड़ा ही था तो इससे क्या हुआ? संसार में कोई वस्तु नित्य नहीं हैं। जब यह संसार ही अनित्य है तो इसके पदार्थ नित्य कैसे हो सकते हैं? समझौता तो कभी न कभी टूटता ही। अब टूटा तो क्या, तब टूटता तो क्या! मतलब तो स्वराज्य मिलने से है, सो वह मिला धरा है। ये लोग आखिर कुछ घास खोदने तो जा ही नहीं रहे हैं। घास ही खोदना होता तो इस बरसात के मौसम में हिन्दुस्तान में उसकी क्या कमी थी? इससे एक लाभ और है और वह यह कि ब्रिटिश सरकार पर इससे प्रभाव पड़ेगा। जब वह देखेगी कि ये लोग ऐसे राजभक्त हैं कि अपने नेता महात्मा गांधी के न आने पर दौड़े चले आए तो उसके हृदय में इन लोगों के प्रति इतना स्नेह तथा वात्सल्य उत्पन्न होगा कि वह तुरन्त कहेगी कि यह स्वराज्य बँधा खड़ा है इसे खोल ले जाओ। हमने तुम्हें तुम्हारी राजभक्ति पर प्रसन्न होकर यह स्वराज्य तुम्हें बख़्शीश दिया। लेकिन साथ में यह शर्त भी है कि महात्मा गांधी और उनके चेले इसे हाथ न लगाने पावें। उस समय कदाचित मौलाना शौकतअली ख़म ठोंक कर खड़े हो जायँ

और बलबला उठें कि महात्मा जी और उनके चेलों की क्या मजाल है जो स्वराज्य की तरफ आँख उठा कर भी देख सकें। ऐसा मन्त्र फूँक दूँ कि आपस ही में लड़ कर समाप्त हो जायँ। उस समय मौलाना की जो इज्जत होगी उसका वर्णन करना उचित नहीं। और फिलहाल भी काफी इज्जत है। इसके पहले जो कॉन्फ्रेन्स हुई थी उसमें भी जो इज्जत थी वह सबको मालूम है। उसमें मौलाना ने बहुत कुछ तरक्की की। हिन्दुस्तान में वह तूफान बर्पा किया कि सरकार को भी मानना पड़ा कि हाँ बड़े भैया भी कुछ काम के आदमी हैं।

इस प्रकार ये सब लोग मिल-जुल कर स्वराज्य को घसीट ही लावेंगे। बेचारे मालवीय जी भी पहुँच जाते तो अच्छा था। परन्तु वह तो गांधी जी के मारे रह गए। अपने राम को उनके रह जाने का बड़ा अफसोस है। मालवीय जी इतने समझदार होकर महात्मा जी के चक्कर में आ गए। महात्मा जी तो पहले से ही नहीं-नहीं कर रहे थे। मालवीय जी को उनका साथ नहीं ढूँढ़ना चाहिए था। स्वराज्य मिलता या न मिलता, परन्तु एक बार शान से वलायत तो हो आते। वृद्धावस्था है; फिर कदाचित ऐसा अवसर मिले न मिले। अफसोस अपने राम के तो सारे अरमान खाक में मिल गए। दयानिधान यदि चाहेंगे तो महात्मा जी की मति बदल देंगे। या फिर वायसरॉय महोदय के हृदय में दया का सञ्चार कर देंगे। ऐसा सुवर्ण-सुयोग हाथ से जा रहा है। परन्तु जब तक श्वासा तब तक आशा। अपने राम इतनी जल्दी निराश होने वाले जीव नहीं हैं। मालवीय जी के लिए अपने राम को बहुत कुछ आशा है। वह इतने सज्जन तथा धर्मनिष्ठ हैं कि भगवान उनकी टेर अवश्य सुनेंगे। उनकी टेर सुन जाने का श्रीगणेश तो हो चुका है। महात्मा जी ने स्वतन्त्र जाँच के लिए पञ्चायत का मसाला छोड़ कर हाईकोर्ट के जज की नियुक्ति की बात कही है। वह क्या है? यह मालवीय जी की टेर का प्रभाव है। वरना जनाब, महात्मा जी इतना लचने वाले आदमी नहीं थे। अब तो भारत-सरकार को महात्मा जी का प्रस्ताव मानना ही चाहिए। अगर नहीं मानेगी तो उसकी स्थिति बड़ी नाजुक हो जायगी।

तब सारा दोष भारत-सरकार ही के मत्थे पर मढ़ा जायगा। उस समय यह पूर्णतया प्रमाणित हो जायगा कि भारत-सरकार ने जानबूझ कर महात्मा जी का लन्दन जाना रोक दिया। वाह रे मालवीय जी, कैसी ज़बरदस्त ठण्डी साँस छोड़ी कि महात्मा जी का हृदय इतना पसीज गया। अब भी यदि लन्दन जाना नसीब न हो तो भाग्य का दोष है और क्या कहा जाय! क्योंकि भाग्य के आगे बल, विद्या, पुरुषार्थ इत्यादि कुछ काम नहीं देते। जिस दिन महात्मा जी मालवीय जी के साथ लन्दन-यात्रा के लिए जहाज़ पर सवार हो जायँगे और जहाज़ बम्बई से चला जायगा, अपने राम उस दिन चुपके से घी के चिराग़ जलायँगे और सवा पाँच पैसे का प्रसाद बाँटेंगे। भगवान को यदि अपने राम की मिठाई बदी होगी तो अवश्य कोई न कोई युक्ति निकालेंगे ही। मि० सप्रू तथा जयकर से भी अपने राम को बहुत बड़ी आशा है। जहाज़ से लेकर लन्दन तक वह कोई बात उठा न रक्खेंगे। क्योंकि पिछली बार तो जयकर महोदय महात्मा जी को लेने के लिए वलायत से हिन्दुस्तान आने वाले थे। इस बार साथ ले ही जा रहे थे कि यह अड़ङ्गा लगा। उनका जाना तो आवश्यक था, इसलिए बेचारे चले गए। क्योंकि महात्मा जी के न होने से कॉन्फ्रेन्स नहीं रुकेगी, परन्तु यदि यह युगल-मूर्त्ति न पहुँचती तो कॉन्फ्रेन्स कदापि न हो सकती।

सम्पादक जी, आप भी दुआ कीजिए कि महात्मा जी लन्दन पहुँच जायँ!

भवदीय
—विजयानन्द (दुबे जी)

: २० :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की।

आज अपने राम बहुत दिनों पश्चात् चिट्ठी लिखने का कष्ट उठा रहे हैं। इसका कारण यह था कि अपने राम पहले तो गृहस्थी के चक्कर में रहे। पहले लल्ला बीमार हुआ, फिर एक कार्यवश बाहर जाना पड़ा, वहाँ से लौटे तो अपने राम को ज्वरदेव की मेहमानदारी करनी पड़ी। ज्वरदेव आए तो इस इरादे से थे कि महीना दो महीना अपने राम के यहाँ ही टिके रहेंगे। परन्तु वैद्यों ने उनके पैर उखाड़ दिए और उन्हें अपना बोरियाबँधना सँभालना पड़ा। इसके पश्चात् आठ-दस दिन तक यह प्रबन्ध रखना पड़ा कि कहीं ज्वरदेव घूम-घाम कर फिर न आ डटें। इन्हीं सब झगड़ों में "चिट्ठी" तो क्या, लिफाफे पर पता लिखने तक की फुर्सत नहीं मिली। आप अपने मन में सोचते होंगे कि दुबे जी कहीं राउण्डटेबुल कॉन्फ्रेन्स में तो नहीं चले गए। जाने का इरादा तो पक्का था, परन्तु लोगों ने बहुत-कुछ समझाया-बुझाया कि जाने दीजिए, ग़म खाइए। महात्मा जी तो जा ही रहे हैं, फिर आप क्यों कष्ट उठायें। अपने राम के मित्र पं० बदरीनाथ के ठाकुर चाचा ने बड़ा विरोध किया। इधर अपने राम का नाई आँखों में आँसू भर कर बोला—"महीने में एक बार आपकी हजामत बनाने का सौभाग्य प्राप्त होता था, सो उसमें भी बाधा पड़ी जाती है।" (अभिप्राय उसका और शब्द अपने राम के हैं—यह ख्याल रखिएगा) अतएव इन सब लोगों की बात माननी ही पड़ी। खैर, अपने राम नहीं गए, यह अच्छा ही हुआ। अन्यथा महात्मा जी का जाना निश्चित हो जाने की सूचना पाकर मौलाना शौकतअली की तरह अपने राम को भी कहीं

रास्ते ही में रुक जाना पड़ता। क्योंकि महात्मा जी के साथ लन्दन पहुँचने से महात्मा जी के साथ-साथ अपने राम का स्वागत भी धूम-धाम से हो जाता। अकेले जाते तो कोई टके का भी न पूछता। और यह बात अपने राम को असहनीय हो जाती कि महात्मा जी का स्वागत तो इस धूम-धाम से हो और अपने राम को कोई पूछे तक नहीं। फिलहाल अपने राम को यही बात बहुत अखर गई है कि लन्दन की जनता ने महात्मा जी को "गुड ओल्ड गाँधी" कह कर उनका स्वागत किया, परन्तु किसी भकुए ने "गुड ओल्ड शौकतअली" अथवा "गुड ओल्ड बिग ब्रादर" न कहा। हालांकि "बड़े भैया" को यदि "नोटोरियस ओल्ड शौकतअली" कहा जाता तो उनके पहनने के समस्त कपड़े कम से कम एक इञ्च छोटे पड़ जाते। इस समय तो उनके कपड़े एक इञ्च ढीले हो गए हैं।

महात्मा जी के लन्दन पहुँच जाने से अब अपने राम बिल्कुल निश्चिन्त हो गए हैं। वह पहुँच गए हैं तो कुछ करके ही लौटेंगे, क्योंकि वह ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की नस खूब पहचानते हैं। देखिए न, जब से महात्मा जी लन्दन पहुँचे हैं, मि० चर्चिल अज्ञातवास में चले गए हैं। न वह लेक्चरबाज़ी है, न वह लेखबाजी और न खामखाह प्रेस-प्रतिनिधियों को अपनी राय नोट कराने का दौरा। चलो अच्छा है! महात्मा जी की बदौलत कुछ दिनों तो बेचारों को शान्ति से बैठना नसीब होगा। अन्यथा बेचारे भारतवर्ष की भलाई के निमित्त दौड़ते-दौड़ते परेशान हो रहे थे। महात्मा जी के पहुँच जाने से पर्दानशीन बन कर बैठ गए। अपने पुत्र से कह दिया कि—"जाओ बेटा, तुम महात्मा जी से मिलो, जुलो, मैं तो मर्दों से बात करूँगा नहीं। हाँ, यदि वह मुझसे मिलना चाहें तो घर पर ले आना, चिक के पीछे बैठ कर दो-दो बातें कर लूँगा।" परन्तु अपने राम को यह पूर्ण विश्वास है कि महात्मा जी से वार्त्तालाप होने के पश्चात् वह या तो पर्दा-वर्दा हटा कर महात्मा जी के चरणों में आ बैठेंगे और या फिर तीर्थ-यात्रा के लिए बाहर चले जायँगे। फिलहाल तो महात्मा जी का स्वागत देख कर उनको प्रसव-

पीड़ा सी हो रही होगी और साथ ही अपने देशवासियों की मूर्खता पर क्रोध आरहा होगा कि महात्माजी का ऐसा स्वागत क्यों कर रहे हैं। मि० चर्चिल अपने देश की सेवा करते-करते लगभग सठिया गए, परन्तु आज तक उनका ऐसा स्वागत कहीं नहीं किया गया। और इधर तो लोगों ने उन्हें बेवक़ूफ़ समझना आरम्भ कर दिया था। हालांकि वह इतने बेवक़ूफ़ नहीं हैं, जितने बाहर से दिखाई पड़ते हैं। परन्तु बेचारे ज़बान को क्या करें, वह कमबख्त काबू में नहीं रहती। यदि काबू में रही होती तो आज इस प्रकार मुँह छिपाना पड़ता?

खैर, यह तो जो कुछ हो रहा है, ठीक ही हो रहा है। परन्तु इधर ब्रिटिश सरकार द्वारा सोने की रोक-थाम का प्रभाव यह पड़ा है कि भारत में असंख्य लोगों का सोना हराम हो गया है। इस समाचार के आने के दूसरे दिन अपने राम से लोगों ने प्रश्नों की भरमार कर दी। एक महोदय बड़े घबराए हुए आए और बोले—दुबे जी, सुनते हैं, सरकार दिवालिया हो गई। अब क्या होगा? हमारा कुछ रुपया बैङ्क में जमा है। वह मिलेगा या नहीं? जिस दिन हम रुपया जमा करने गए थे, उस दिन छींकें हुई थीं, बिल्ली रास्ता भी काट गई थी, हमारा माथा उसी समय ठनका था, परन्तु लोगों के कहने-सुनने में आ गए। रुपया मारा गया तो बड़ा गज़ब हो जायगा। और तो कुछ नहीं, परंतु मुन्ना की माँ घर में न बैठने देगी, क्योंकि बैङ्क में रुपए जमा करने का सबसे अधिक विरोध उसी ने किया था। उनका कहना न माना—उसी का नतीजा यह निकला। हमने कई बार यह आजमा कर देखा है कि जिस बात में उसका कहना न माना, उस बात में हमें नीचा ही देखना पड़ा।

अपने राम ने उत्तर दिया—तो फ़िलहाल आप मुन्ना की माँ से ही सलाह लीजिए—जैसा वह कहे वैसा कीजिए। क्योंकि यदि ऐसे नाज़ुक समय में भी आपने उसका कहना न माना, तो केवल नीचा ही नहीं देखना पड़ेगा, वरन् तलातल, महातल और पाताल तक की यात्रा करनी पड़ेगी।

एक दूसरे महोदय बोले—हमारे पास चार-छः हज़ार के नोट रक्खे हैं, उनका क्या होगा ?

हमने उत्तर दिया—सर्दी का मौसम आ रहा है, आनन्द से आग सुलगा कर तापिएगा !

इतना सुनते ही उनका चेहरा फ़क़ हो गया, बोले—सच बताइए, नोटों के रुपए मिलेंगे या नहीं ?

अपने राम बोले—रुपए तो नहीं, परन्तु पैसे मिल जायंगे। चांदि सोने का सिक्का छोड़ कर और जो चाहिएगा, मिल जाएगा।

वह आँखें फाड़ कर बोले— "पैसे ! इतने पैसे गिनेगा कौन और लावेगा कौन ! घर में उनके रखने की जगह भी तो नहीं।" फिर कुछ सोच कर अपने ही आप बोले—तोल कर मिलेंगे-गिनती से तो मिलेंगे नहीं। खैर पैसे ही सही। अनाज भरने की कुसारी में भर देंगे और सराफी की दूकान खोल कर बैठ जायँगे। रुपए के सवा सोलह आने लगा देंगे। दम में सब निकल जाएँगे। क्यों, है न ठीक बात ! परन्तु यदि आप रुपए दिला सकें तो बड़ी कृपा हो, हम पाँच हज़ार के साढ़े चार हज़ार ही ले लेंगे।

उनका यह कथन सुनते ही अपने राम के मुँह में पानी भर आया कि मुफ्त में पाँच सौ मिलते हैं। परन्तु अफसोस ! अपने राम के पास भी साढ़े चार हज़ार रुपए नक़द नहीं थे। इसलिए मन मसोस कर रह गए। एक महोदय का रुपया डाक़खाने में जमा है। वह बौखलाए हुए दौड़े आए और बोले—डाक़खाना रुपए देगा या नहीं ?

अपने राम ने उत्तर दिया—बिल्कुल नहीं। टिकिट, लिफाफे, पोस्ट कार्ड देगा।

वह बोले—तो उन्हें लेकर क्या करेंगे ?

मैंने कहा—बेच लीजिएगा।

"इतने कहाँ तक बेचेंगे ?"

"तो मित्रों, रिश्तेदारों को खूब पत्र लिखा कीजिएगा। एक-एक दिन में एक-एक व्यक्ति को दस-दस पत्र लिखिएगा। बस बड़ी जल्दी

समाप्त हो जायँगे।''

"वाह, यह अच्छी सलाह दी! इससे हमें क्या लाभ होगा? हमारा रुपया तो गया!''

''रुपया नहीं जायगा। जायँगे तो लिफ़ाफे और पोस्टकार्ड।''

''वह एक ही बात है।''

"एक ही बात है तो जाने दीजिए। जैसे रुपए गए वैसे लिफ़ाफे इत्यादि गए।''

"आप तो मजाक करते हैं, यहाँ खाया-पिया नहीं पच रहा है। आपका रुपया डाकखाने या बैंक में जमा नहीं है।''

''प्रथम तो अपने राम के पास इतना रुपया ही नहीं है, जो कहीं जमा किया जाए। जो कुछ है उसकी रक्षा अपने राम भली-भाँति कर सकते हैं। उसके लिए डाकखाने और बैङ्क को कष्ट देने की आवश्यकता नहीं।''

''तो आप मजे में हैं हम लोग तो मरे।'' एक महाशय को यही अफ़सोस था कि यदि एक दिन पहले चाँदी और सोना खरीद लेते तो कुछ मिल जाता। उनका कहना यह है कि—"बड़ा नुकसान हो गया।' मानो कुछ घर से खो बैठे हों। उनकी दृष्टि में बाजार में जितना चाँदी सोना है वह सब उनका हो चुका था, परन्तु दुर्भाग्यवश हाथ से जाता रहा।

तेईस तारीख की शाम को एक महोदय आकर बोले—डाकखाना तो धड़ाधड़ रुपया बाट रहा है।

एक अफीमची प्रकृति का व्यक्ति चौंक कर बोला—बाँट रहा है?

"हाँ! ऐसे में आप भी दस-बीस ले आइए।''

"अजी आप मजाक करते हैं। ऐसा भला कहीं हो सकता है—जिसका जमा होगा उसी को देते होंगे।''

"जिसका नहीं जमा है उसे भी देते हैं। सरकार ने अपनी शान जमाने के लिए यह हुक्म निकाला है कि जो सरकार की जयजयकार

मनाते हुए डाकखाने के द्वार पर जायगा, उसे पाँच रुपए मिलेंगे।"

"अच्छा! तब तो इस प्रकार लाखों रुपया बँट जायगा।"

"बँट जायगा तो क्या है, सरकार कोई कङ्गाल हैं?"

"यही साबित करने के लिए तो ऐसा किया है। लाख पचास हज़ार बाँट कर साख जमा लेगी। अच्छा, यह तो बताइए, कल भी बँटेगा या नहीं?"

"एक सप्ताह तक रोज बँटेगा। एक सप्ताह में यदि कोई आदमी सूरतें बदल-बदल कर जाए तो पैंतीस ला सकता है। और यदि अपने घर वालों को भी भेजे तो फिर क्या कहना—जो चाहे पटील ले।"

उस व्यक्ति को पूर्ण विश्वास होगया था कि वास्तव में रुपया बँटता है और वह अपने मन में कदाचित् यह सोच ही रहा था कि कल से हम भी जाना आरम्भ करें और अपने घर वालों में से किस-किस को भेजे कि उसी समय उनकी गम्भीर मुद्रा देख कर एक मित्र हँस पड़े। बस, सब मामला ख़त्म होगया। वह दाँत निकाल कर झेंपी हुई हँसी से बोला—आप लोग दिल्लगी करते हैं—ऐसा कभी नहीं हो सकता! सरकार ऐसी उल्लू नहीं है, जो इस तरह रुपया बाँटे।

एक सज्जन यह समाचार पढ़ कर कि ब्रिटिश सरकार भारत का सोना इंगलैण्ड ले जाना चाहती है—सिर हिलाते हुए बोले—इसका मतलब बिरले ही आदमी समझे होंगे।

अपने राम ने पूछा—क्या मतलब है, ज़रा समझा दीजिए।

वह बोले—सरकार अब यह देख रही है कि भारत को स्वराज्य तो देना ही पड़ेगा, बिना स्वराज्य दिए जान नहीं बचती। इसलिए इस बहाने से हिन्दुस्तान का सोना हथिया लो। फिर जो होगा देखा जायगा। फिर लेता मरे या देता। अपने राम ने उनकी बात सुन कर कहा—आप लाए तो दूर की कौड़ी; परन्तु ऐसा हो नहीं सकता।

"अजी सब होगा—देखते चलिए। भारत को स्वराज्य तो मिलेगा, परन्तु साथ में तन पर लंगोटी ही लँगोटी रह जायगी।"

"तो इस समय आप कौन कमख्वाब पहने हुए हैं। लँगोटी तो रह

ही गई है, यों कहिए कि लंगोटी भी छीन लेंगे।"

"लँगोटी तो खैर क्या छीन सकते हैं। परन्तु बिल्कुल खुक्ख कर देंगे।"

इस प्रकार सम्पादक जी, प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार अनुमान लगाता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं, परिस्थिति आशङ्का-जनक अवश्य है। बड़े-बड़े लखपतियों तक के कलेजे धड़क रहे हैं कि देखें, क्या होता है। विशेषतः जिनके पास नोटों का आधिक्य है, वह यह सोचते है कि ऐसा न हो कि काग़ज़ ही कागज़ रह जाय। और इसमें सन्देह नहीं कि सोने-चाँदी के चुकने से नोटों का प्रचार बहुत बढ़ेगा। सरकार नोट ही देगी। क्यों, आपकी क्या राय है?

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

: २१ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

गोलमेज़ कान्फ्रेन्स तो सांपों की गठरी हो रही है। महात्मा जी परेशान हैं कि इस गठरी को कैसे सँभाला जाय ! मुसलमान भाई किसी ऐसी योजना पर, जो कि भारत के लिए सब प्रकार से हितकर हो, सहमत नहीं होते। उन्हें तो अपने हलवे माण्डे से मतलब है, मुर्दा चाहे दोजख़ में जाय या बिहिश्त में। अपने राम की समझ में तो यदि महात्मा जी मुसलमानों के प्रतिनिधि मि० जिन्ना, सर आग़ा खाँ तथा बड़े भैया से कह दें कि—अच्छा, जाओ तुम्हें पंजाब, बंगाल, सिन्ध, सीमाप्रान्त इनाम में दिया—तुम इन स्थानों में चाहे नंगे होकर नाचो, हमारी बला से। तो फिर देखिए अभी मामला तय हो जाय। बड़े भैया फिर नए सिरे से "बापू जी" के भक्त हो जायँ। मि० जिन्ना के सिर से जिन उतर जाय। सर आग़ा को घुड़दौड़ों के लिए नया उत्साह मिल जाय! परन्तु अफ़सोस तो यह है कि फिर भी अडङ्गा लगा ही रहेगा। तब अल्पसंख्यक जाति वाले हाय-तोबा मँचायँगे कि उन्हें कुछ नहीं मिला। इसलिए अपने राम की सलाह यह है कि उन्हें भी एक-एक शहर बांट दिया जाय और कह दिया जाय 'जाओ कमा खाओ', शेष जो बचे उसमें हिन्दू अपना गुजर चलावें। और यदि न भी बचे तो चिन्ता नहीं। घास-फूस खाने वाली जाति ठहरी। जङ्गलों की घास और पत्तियां खा कर रह सकती है। आजादी तो मिल जायगी। आनन्द से बेखटके जंगलों में विचर रहे हैं। जब जी चाहा घूमे फिरे, जब चाहा दरख्तों पर चढ़ सो रहे। इससे बढ़ कर स्वतन्त्रता और क्या हो सकती है ? फ़िलहाल तो खद्दर की भी ज़रूरत पड़ती है, फिर इससे भी मोक्ष मिल

जायगी। जी चाहे तो जर्मनी के नंगे सम्प्रदाय की भाँति प्रकृति देवी के सुपूत बन कर बिचरें अन्यथा वही पुराने वल्कल वस्त्र तथा मृगछालाएँ पहन-ओढ़ कर ब्रह्म का चिन्तवन करें।

स्वराज्य में क्या धरा है? यह सब नश्वर है—माया का खेल है। मनुष्य को मोक्ष का उपाय सोचना चाहिए।

कोई चाहे जो कहे, परन्तु अपने राम तो मुसलमानों के दमख़म के क़ायल है। कष्ट सहे हिन्दुओं ने, जेल गए हिन्दू, लाठियाँ तथा गोलियाँ खाईं हिन्दुओं ने और जब हिस्सा बँटाने का समय आया तो मुसलमान भाई सबसे आगे मौजूद हैं कि पहले हमारा पेट भर दो तब किसी को कुछ दो। अब वह न हिन्दुओं की सुनते हैं और न उन थोड़े से मुसलमानों की जो राष्ट्रीयता की भावना से सबके लिए बराबर अधिकार चाहते हैं। ईश्वर की दया से सरकार ने गोलमेज़ सभा में भेजा भी ऐसे टरों को है कि पुट्ठे पर हाथ ही नहीं धरने देते। उनकी इच्छा है कि बिल्कुल बे-लगाम रहें और न अगाड़ी का खटका हो न पिछाड़ी का। जब उनकी इच्छा हो हिन्दुओं पर दुलत्तियाँ झाड़ दें। उनकी देखा-देखी अल्पसंख्यक लोग भी उछल-कूद मचा रहे हैं कि कदाचित इस गड़बड़ में हमें भी छुटकारा मिल जाय तो हम भी अललबछेड़े होकर घूमें। बेचारे महात्मा जी परेशान हैं कि इनको किस प्रकार समझाया जाय। अपने राम को तो कुछ ऐसे लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं कि मुसलमान प्रतिनिधि कॉन्फ़्रेन्स को भंग करके ही छोड़ेंगे। क्योंकि उनका सिद्धान्त यह है कि यदि हमें इच्छा-भोजन नहीं मिलेगा तो हम किसी को भी न खाने देंगे।

इधर भारत में यह समझा जा रहा है कि यदि कॉन्फ्रेन्स फ़ेल हुई तो बड़े ज़ोर का संग्राम छिड़ेगा। और साथ ही रुपए में बारह आने यह निश्चित है कि कॉन्फ्रेन्स फ़ेल हो जायगी। अथवा अधिक से अधिक औपनिवेशिक स्वराज्य पर सौदा तय हो जाय। पूर्ण स्वतन्त्रता पर मियाँ भाई कभी सहमत न होंगे। क्योंकि वे समझते हैं कि पूर्ण स्वराज्य मिलते ही उनकी शामत आ जायगी। भगवान जाने इन्होंने कौन से ऐसे

गुनाह किए हैं जिसके कारण ये पूर्ण-स्वतन्त्रता से इतना घबराते हैं। पालतू तोता पिंजड़े के बाहर निकलते हुए डरता है; क्योंकि उसे भय रहता है कि कहीं पिंजड़े के बजाय चीलदेवी के उदर में वास न करना पड़े। इससे भाई, पिंजड़े में ही भले हैं। जान सलामत है तो पिंजड़े में ही कभी-कभी मस्त होकर बोली बोल लिया करेंगे। यह माना कि पिंजड़े में सुख नहीं है—परन्तु बाहर तो जान के भी लाले हैं। ऐसी स्वतन्त्रता पर लानत। हाँ, यदि स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् भी अङ्गरेज पीठ पर हाथ धरे रहे, तो फिर क्या है, एक-एक को समझ लेंगे।

इधर सिक्ख लोग समझते हैं कि हम न हिन्दू हैं न मुसलमान। स्वतन्त्रता मिल जाने पर दोनों ही हमारे शत्रु हो जायँगे। उस समय धरते-उठाते न बन पड़ेगा। इसलिए अभी सवेरा है। पक्की-पोढ़ी लिखा-पढ़ी हो जाना चाहिए, जिससे यदि हम नंगे भी नाचें तो कोई चूँ न कर सके। इस प्रकार ये लोग भारत की स्वतन्त्रता नहीं, अपनी स्वतन्त्रता चाहते हैं। ऐसी खींचा-तानी और स्वार्थपरता में भारत का क्या हित हो सकता है?

उधर तो यह हो रहा है, इधर भारत में दनादन टैक्सों की वृद्धि हो रही है। भारत-सरकार भी समझती है कि स्वराज्य-वराज्य तो कुछ मिलना नहीं है। अतएव अपने इन्तज़ाम से क्यों चूको। लोग ख़ुश थे कि सब चीज़ें सस्ती हैं—चैन से कटेगी। परन्तु अब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। चाहे सस्ता हो चाहे मन्दा, भारतवासियों के भाग्य में तो वही टिकिया-रोटी बदी है। भारत सरकार अपना बजट तो पूरा करेगी ही, चाहे कोई मरे या जिए, उसकी बला से। कुछ लोगों का कथन है कि फ़ौज तथा सिविल-सर्विस वालों का ख़र्च कम करके बजट पूरा किया जाय, नए टैक्स न लगाए जायँ और न पुरानों में वृद्धि की जाय। ऐसा भला कैसे हो सकता है? ऐसे कठिन समय में, जब कि भारत बग़ावत पर कमर बाँधे है, फ़ौज तथा सिविल-सर्विस वालों ही का भरोसा है। इनको नाराज़ करना ठीक नहीं। ये लोग नाराज़ हो जायँगे तो भारतवर्ष में पड़े हुए इन भोले-भाले परोपकारी, निस्सहाय तथा परदेशी

अँगरेजों तथा यूरोपियनों की रक्षा कौन करेगा ? हिन्दुस्तानी चाहे मरें चाहे जिएँ, परन्तु इनकी रक्षा का प्रबन्ध सबसे पहले होना चाहिए। यदि इनका बाल बांका हुआ तो न जाने कितनी प्रोषित-पतिकाओं की हाय भारत सरकार पर पड़ेगी। और यह मानी हुई बात है कि गोरी प्रोषित पतिका नायिका की हाय भगवान जल्दी सुन लेते हैं। इसके अतिरिक्त एक खटका यह भी है कि यदि किसी समय इन काले आदमियों पर गोली चलाने का अवसर आया तो फ़ौज वाले कहेंगे—"हमारी तनख्वाह कम कर दी गई, इसलिए हम गोली नहीं चलावेंगे।" अथवा यदि गोली चलावें भी तो ठीक निशाने पर न चलावें, ऊटपटाँग चला दें। सिविल-सर्विस वाले बागियों को गिरफ़्तार ही न करें अथवा उन्हें हलकी सजा दें, या बिल्कुल ही छोड़ दें। एक खटका हो तो उसका ख्याल न किया जाय, यहां तो सैकड़ों खटके ही खटके हैं। ऐसी दशा में इन लोगों की तनख्वाहें कैसे कम की जा सकती हैं ? यही गनीमत समझनी चाहिए जो ऐसे अवसर पर उनकी तनख्वाहें बढ़ाई नहीं जा रही हैं। हालांकि समय ऐसा ही है कि उनके वेतन में वृद्धि होनी चाहिए। क्योंकि आगे ऐसा वक्त आ रहा है कि इन लोगों को बहुत परिश्रम पड़ेगा। पिछले आन्दोलन में सिविल-सर्विस वालों तथा पुलीस को कितना परिश्रम पड़ा, कितना परिश्रम पड़ा है कि वैसे परिश्रम से भगवान बचावे। उसका कुछ पुरस्कार मिलना चाहिए था। सो लोग उलटा वेतन घटाना चाहते है—अच्छे रहे। जो कुछ घटा है उससे ही सरकार की नेकनीयती पर शक पैदा हो गया है। हाँ, जितने काले आदमी है उनकी तनख्वाहें अवश्य घटाई जानी चाहिएँ। क्योंकि इन लोगों का खर्च कम है। ये लोग भूखे-नंगे भी रह सकते हैं—कष्ट सहन कर सकते हैं। सच पूछिये तो आवश्यकता से अधिक मिलने पर ये लोग शेर हो जाते हैं और अफ़सरों से दबते नहीं। अतएव इन्हें तो आधे पेट ही भोजन मिलना चाहिए। जहाँ इन्हें भर पेट भोजन मिला कि इन्होंने सिर उठाया।

गोरे आदमियों की तनख्वाहें नहीं घट रही हैं, यह बात भी नहीं

है। देखिये लाट गवर्नर लोगों ने अपनी तनख्वाहें कितनी घटा दीं। उन्हें दस हजार रुपए मासिक वेतन मिलता था, अब उन्हें केवल साढ़े आठ हजार रुपए मिलेंगे। पन्द्रह सौ रुपए महीना कम होगया। कुछ ठिकाना है—पन्द्रह सौ ! रह कितने गए, केवल साढ़े आठ हजार। अब इतने में उन बेचारों का गुजर भगवान जाने कैसे चलेगा। न जाने उन्हें कौन-कौन सी वस्तुओं का त्याग करना पड़ेगा। हिन्दुस्तान की सेवा में यह हुआ है। विलायत में होते तो दस हजार के बजाय न जाने कितने पैदा करते होते। वॉयसराँय ही को लीजिए। अभी तक उन्हें २१ हजार से कुछ ऊपर मासिक वेतन मिलता था। अब वह बेचारे केवल १७ हजार के लगभग लेंगे। कुछ ठिकाना है। बयालिस सौ की कमी हो गई ! बयालिस सौ में उनके न जाने कितने काम निकलते थे, अब वे सब रुक जायँगे या नहीं ? इस पर भी लोग कहते हैं कि गोरों के वेतन में कुछ कमी की जाती। इससे अधिक और क्या कमी की जाय ? क्या उनके हाथ में ठीकरा थमा दिया जावे। विलायत में होते तो क्या यह मुसीबत झेलनी पड़ती है ? सच बात तो यह है कि जिस पर बीतती है, वही जानता है। जिसके पैर न जाय बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई। धन्य है इन लाट साहबों को कि इतना महान त्याग करके भारत की सेवा कर रहे हैं। ऐसे-वैसे का साहस नहीं हो सकता। और यह लुत्फ़ है कि स्वयम् तो २० तथा १५ रुपए सैंकड़ा कम लेंगे और अपने मातहतों से केवल १५ तथा १० सैंकड़ा कम कराया है। ठीक भी यही था। अफसर को मातहत से अधिक कुर्बानी करना चाहिए। यदि ऐसा न हो, तो अफसर तथा मातहत में भेद ही क्या रह गया। इसके अतिरिक्त मातहत बेचारों को कौन बड़ी लम्बी-चौड़ी तनख्वाह मिलती है। दो हजार से लेकर छः हजार से अधिक किसी को एक कौड़ी भी नहीं मिलती। होम-मेम्बर सर जेम्स क्ररार एसेम्बली में खून पसीना एक कर देते हैं, परन्तु उन्हें वेतन केवल साढ़े छः हजार के लगभग मिलता है। अब यदि इतने कम वेतन में से भी कमी हुई तो वह पूरा बलिदान समझना चाहिए। कोई भला और शरीफ अङ्गरेज हिन्दुस्तान में इतनी कम

तनख्वाह पर नहीं रह सकता। परन्तु ये बेचारे तो अपने देश की सेवा के निमित्त इतना बड़ा त्याग कर रहे हैं, परन्तु फिर भी लोगों की आँखों में इनकी तनख्वाहें मूसल की तरह खटकती हैं! मरभुक्खे हिन्दुस्तानी इनके त्याग की क्या कद्र कर सकते हैं। इन्हें तो यदि दोनों समय पेट भर दाल-रोटी या खिचड़ी मिल जाय तो बस ये उसी को बड़ी भारी न्यामत समझते हैं।

अपने राम का तो यह प्रस्ताव है कि भारत सरकार नौकरशाही को खामखाह इतना घोर कष्ट न दे और तनख्वाहें घटाने के बजाय कुछ और बढ़ा दे, जिससे कि ऐसे नाजुक समय में खूब काम करने का उत्साह रहे। क्यों सम्पादक जी, मेरा प्रस्ताव गलत तो नहीं है?

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: २२ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आखिर काश्मीर के सम्बन्ध में वायसरॉय को ऑर्डिनेन्स पास करना ही पड़ा। चलिए मुसलमान भी लहू लगा कर शहीदों में दाखिल हो गए। कांग्रेस और कांग्रेसवादियों के लिए तो ऑर्डिनेन्सों की झड़ी लग गई थी। अब एक आर्डिनेन्स साम्प्रदायिकतावादी मुसलमानों के लिए भी पास हो गया, यह अच्छा हुआ। अब मुसलमान भाई भी गर्व से सिर उठा कर कह सकेंगे कि हम भी पाँचवें सवारों में हैं। हमने भी देश-सेवा की है। जिनके लिए वायसराय को आर्डिनेन्स का निर्माण करना पड़े, वे देश-भक्त न होंगे तो फिर कौन होगा! मुसलमानों ने देखा कि देशभक्ति का सारा श्रेय हिन्दू लोग लूटे लिए जा रहे हैं और हम फिसड्डी ही रहे जाते हैं, इसलिए खूब सोच-समझ कर हाथ-पैर बचाते हुए काश्मीर को ताका। सोचा कि भारत-सरकार तो अपनी है। क्योंकि भारत-सरकार तथा ब्रिटिश जाति की जो सेवा मुसलमानों ने की है वह कोई मकुआ इस भू-मण्डल पर कर ही नहीं सकता। आन्दोलन में हिन्दुओं का साथ नहीं दिया, राष्ट्रीय मुसलमानों को जाति बाहर कर दिया, खद्दर तथा स्वदेशी कपड़े से उसी प्रकार घृणा की जैसे घृत से मक्खी घृणा करती है, विलायती कपड़े पर ऐसे गिरे जैसे मुर्गी खखार पर---केवल इतना ही नहीं, लंकाशायर वालों की निस्वार्थ सेवा करने के लिए एक कम्पनी भी खोल दी। इन सब सेवाओं के बल पर उनको यह अभिमान था कि हमारे सैय्याँ तो कोतवाल ही है अब डर काहे का। एक-एक करके जितने हिन्दू राज्य हैं सब पर अर्द्धचन्द्र का झण्डा फहरा दो। काश्मीर तो बिहिश्त समझा ही जाता है। सोचा

सब से पहले बिहिश्त पर ही कब्जा जमाओ। वल्लाह अगर बिहिश्त हाथ आ गया तो फिर क्या है—कयामत का इन्तजार करने से पिण्ड छूट जायगा, अल्लाह मियाँ के एहसान से मुक्त हो जायँगे। यह सोच कर पहले तो काश्मीर के मुसलमानों को भड़काया कि यदि पकीपकाई हंड़िया मिल जाय तो क्या बेजा है। काश्मीर के मुसलमान पहले तो हजरत आदम की तरह बहक गए, परन्तु जब देखा कि ऐसा करने से आदम की ही तरह निकाल बाहर किए जायँगे तो कुछ समझ आई। इधर जब पंजाब के मुसलमानों ने देखा कि सारा गुड़ गोबर हुआ जाता है तो अपने दिल ही दिल में महात्मा जी का स्मरण करके जत्थे भेजने पर कमर बाँधी। परन्तु इसी शर्त पर कि भारत-सरकार तो अपनी चहेती है। जत्थे तो क्या, यदि फौज भी ले जायँ तब भी चूँ न करेगी। फिलहाल जत्थों से आरम्भ किया जाय और मौका पाकर वे ही जत्थे फौज बन जायँ। भारत-सरकार ने भी पहले अपने लाडलों के इस कृत्य को प्यार भरी दृष्टि से देखा। सोचा चलो अच्छा है, अपने हितैषी और अपने प्यारों का जी बहलता है, अपना क्या हर्ज है। यदि इन्होंने इस खेल ही खेल में बिहिश्त को हथिया लिया तो लेकर जायँगे कहाँ, आखिर हमारे ही बाल-बच्चों के काम आएगा। प्रथम तो राजभक्त मुसलमान स्वयं ही उसे हमारे अर्पण कर देंगे और यदि खुशी से न दिया तो थोड़ा कर्ण-मर्दन करने से तो निश्चय ही दे देंगे; समझदार हैं—हिन्दुओं की तरह औंधी खोपड़ी के नहीं हैं। परन्तु जब देखा कि इस तरह तो बद-नामी हो जायगी और लाभ कुछ भी न होगा तो झट आर्डिनेन्स निकाला। ठीक भी है—रण्डी किसकी जोड़ू और भड़ुआ किसका/ साला! हालाँकि अपने राम कभी भी यह विश्वास करने को तैयार नहीं हो सकते कि यह आर्डिनेन्स मजबूरी से निकाला गया है। अपने राम का तो यह मत है कि भारत-सरकार पहले यह देखती रही कि काश्मीर राज्य यथेष्ट शक्तिशाली है, अपना प्रबन्ध स्वयम् करेगा—हम हस्तक्षेप क्यों करें। परन्तु जब बाहर के मुसलमान भी काश्मीर की जियारत करने को तैयार हुए तब उसने उन्हें रोकने के लिए यह इन्तजाम किया

है। ठीक भी है, इसके अतिरिक्त बेचारी-भारत-सरकार और कर ही क्या सकती है ? अब देखना है कि ब्रिटिश भारत के मुसलमान जत्थे भेजते हैं या नहीं। फिलहाल तो उन्हें इस आर्डिनेन्स पर बड़ा ही आश्चर्य हुआ होगा और होने की बात भी है ! जिसकी उन्होंने इतनी सेवा की, जिसके लिए बदनामी सही, देश द्रोही बने, उसकी ओर से यह पुरस्कार ! शिव ! शिव !! भारत-सरकार को उचित तो यह था कि इस कार्य में मुसलमानों की सहायता करती। जत्थों के लिए मार्ग में स्थान-स्थान पर सबीले और बावर्चीखाने खुलवा देती। यदि रेल पर जाते तो मुफ्त में रेल देती। सबसे अच्छी बात तो यह थी कि जत्थों की रक्षा के लिए एक फौजी दस्ता साथ कर देती। सो तो किया नहीं— उलटा आर्डिनेन्स पास कर दिया—वाह भाई वाह ! खूब कद्रदानी की। वाकई यह कहावत ठीक है कि नेकी का जमाना फिलहाल इधर दो-चार दिनों से नहीं रहा। रहता तो मुसलमानों के साथ ऐसा व्यवहार कभी हो सकता था ? अजी अल्ला-अल्ला कीजिए ! इस बात का कलक और अफसोस मुसलमानों को कम से कम कयामत तक तो रहेगा ही। कयामत होने के पश्चात् जब अल्लाह मियाँ न्याय की तराजू उठायेंगे तो सब धान बाइस पसेरी हो ही जाएँगे। कयामत के पहले तो न्याय किसी प्रकार हो ही नहीं सकता वरनः अभी मजा चखा दिया जा सकता। अभी तो सब मामला अन्याय पर चल रहा है। इसीलिए बेचारे मुसलमान मजबूर होकर रह जाते हैं। वाकई मजबूरी सब कुछ करा लेती है। मगर कुछ भी हो, मुसलमान भाई बड़े जीवट के आदमी हैं। यदि सरकार ने किसी मुसलमान को गिरफ्तार करके जेल न भेजा तो जत्थे बराबर नाक की सीध चले ही जाएँगे। वहाँ तक पहुँचे या न पहुँचे। और अगर खुदा स्वेच्छा से न ख्वास्ता कहीं पंजाब सरकार ने जत्थों के मार्ग में खाई-खन्दक खुदवा दिए, काँटे बिछवा दिए अथवा जेल बनवा दिए तो फिर देखिएगा, क्या मजा आता है। एक भी मुसलमान यदि गर्मी के दिनों में काश्मीर के बाहर रहना पसन्द करे तो अपने राम इस बात की कसम खा लेंगे कि इस जीवन में कभी काश्मीर

का मुँह न देखेंगे। परन्तु मुसलमान भाई हैं आवश्यकता से अधिक बुद्धिमान! इस अवसर पर यदि कलाबाज़ी खा जायँ तो कोई आश्चर्य नहीं। और है भी ठीक! चौबे जी चले थे छब्बे होने सो अपने राम की तरह दुबे ही रह गए। मुसलमान भाई चले थे बिहिश्त को, परन्तु यदि पहुँच गये जेल में तो सारा मजा ही किरकिरा हो जायगा। वल्लाह क्या सोचा था और क्या हो गया। वाकई बात यह है कि "सब यार हैं अपने मतलब के, दुनिया में किसी का कोई नहीं।" जिस पर भरोसा किया, जिसके सम्बन्ध में सोचा था कि आड़े वक्त पर काम आएगा, जब वही ऐन मौके पर दगा दे रहा है तो यह कहना ही पड़ता है कि यह संसार असार है—बस जो कुछ है मौला का नाम है, उसी से लगाना ठीक है। इन्सान इन्सान की मदद नहीं कर सकता, मदद करने वाला मालिक है जिसने यह जमीनो-आसमान और चाँद और सूरज बनाये हैं।

अपने राम को महाराज-काश्मीर की बुद्धि पर भी थोड़ी दया आती है। बहुत दिनों राज्य कर लिया, बहुत दिनों सुख भोग लिया। व्यर्थ में क्यों मुसलमान भाइयों का दिल दुखाते हैं। यदि महाराज-काश्मीर अपने राम से और इस प्रान्त के दो-एक उन नेताओं से जो मुसलमानों के प्रति उदारता में महात्मा जी से भी बाजी मार ले जाने का दिल रखते हैं, सलाह लें और उस सलाह को मानें तो उन्हें अपना राज्य मुसलमानों को सौंप कर बन में तपस्या करने चला जाना चाहिए। देखिए, कानपुर वालों ने मुसलमान भाइयों की खातिर साइनबोर्ड उतार दिया—क्यों? इसलिए कि उनका नन्हा सा दिल न दुखे और झगड़ा शान्त हो जाय! अतएव यदि महाराज-काश्मीर भी झगड़ा शान्त करने के लिए तथा मुसलमानों के दिल का दुख दूर करने के लिए अपना राज्य उनके हवाले कर दें तो हिन्दू-मुस्लिम झगड़े का अन्त सदैव के लिए हो जाय! अथवा महाराज-काश्मीर एक ऐसा कमीशन नियुक्त करें जो इस बात पर विचार करे कि उन्हें अपना राज्य मुसलमानों को सौंप देना चाहिए या नहीं तो इस झगड़े का निबटारा क्षण भर में हो जाय।

परन्तु शर्त यह है कि उस कमीशन में अपने राम अवश्य रक्खे जायँ और वे दो-एक नेता जिनका उल्लेख अपने राम ऊपर कर चुके हैं। सो अपने राम तो इसी समय कह रहे हैं कि जाँच करने से यह उचित मालूम होता है कि महाराज-काश्मीर अब बहुत दिन तक राज्य कर चुके, अब उन्हें अपना राज्य मुसलमानों को सौंप देना चाहिए। नेता लोग भी ऐसा ही कहेंगे, क्योंकि आदत ही ऐसी पड़ी हुई है कि मुसलमानों को ज़रा भी दुखी नहीं देख सकते। उनका दुख देखते ही आँखों से अश्रु-धारा फूट निकलती है, हृदय विदीर्ण होने लगता है। कुछ भी हो, परन्तु मुसलमान अपने भाई ही हैं। उनको प्रसन्न रखना प्राणिमात्र का कर्तव्य है। इसलिए महाराज-काश्मीर को उनके प्रति उदारता का नहीं, बिल्कुल गलत—अपने कर्तव्य का पालन अवश्य करना चाहिए। जब तक वह ऐसा नहीं करेंगे तब तक सच्चे राजा कहलाने के अधिकारी इस असार संसार में हो ही नहीं सकते।

सम्पादक जी, आप भी इस सम्बन्ध में खूब आन्दोलन कीजिए और अपने पत्र द्वारा महाराज-काश्मीर को उनके कर्तव्य का स्मरण दिला ही दीजिए। यदि आप ऐसा करेंगे तो देश की ठसाठस ठोस सेवा होगी।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

: २३ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

गोलमेज सभा का स्वाँग तो समाप्त हो रहा है । खोदा पहाड़ और निकला चूहा ! लाखों रुपए इस सभा में स्वाहा हो गए, परन्तु काम धेले का भी न हुआ । हो भी कैसे ? कॉङ्ग्रेस की माँग पूर्ण-स्वाधीनता है और अँगरेज़ लोग भारत के सम्बन्ध में स्वाधीनता के शब्द से उतना ही चौंकते हैं, जितना कि बेवक़ूफ़ घोड़ा अपनी छाया से ! सच बात तो यह है कि 'स्वाधीनता' शब्द अङ्गरेज़ जाति के लिए जितना शोभा देता है, उतना किसी के लिए दे ही नहीं सकता। विशेषत: भारत के साथ तो स्वाधीनता कभी जुड़नी ही नहीं चाहिए। इससे अंगरेजों का बहादुर कलेजा दहलने लगता है। संसार में अपने चोले के अतिरिक्त और किसी की स्वाधीनता अच्छी नहीं होती, यह ब्रिटिश नीति का वाक्य है। भारत, जो इतने दिनों तक गुलाम रहा है, यदि एकदम से स्वाधीन कर दिया जायगा, तो उसकी दशा उस कुत्ते की सी हो जायगी, जो दिन भर बँधे रहने के पश्चात् रात को खोला जाता है। ऐसा कुत्ता चोरों और उठाईगीरों के लिए कितना खूँख्वार होता है —यह आप जानते ही हैं ! इसका परिणाम यह होगा कि उसका जब मौक़ा लगेगा, अंगरेजों ही की टाँग धरेगा। अंगरेज़ लोग भारत छोड़ कर चले जायँ, यह सम्भव नहीं। ईश्वर ने उनका हृदय ही ऐसा बनाया है। वे तो परोपकार के लिए देश-विदेशों में मारे-मारे फिरते हैं—और कोई अभिप्राय थोड़ा ही है ! देखिए, अफ्रीका के घनघोर जंगलों में आदमखोरों को सभ्यता का पाठ पढ़ाते घूमते हैं। जंगली लोग सभ्यता का पाठ पढ़कर सब से पहली जो बात सीखते हैं, वह यह कि अंगरेज़

लोग संसार में सब से अधिक सभ्य, परोपकारी, बहादुर, ईमानदार, सच्चे, बलवान् तथा शक्तिशाली हैं। और शेष सब संसार स्वार्थी तथा धूर्त है। यह ज्ञान उदय होते ही सब से पहला काम जो जंगली करते हैं, वह यह है कि अपने जानो-माल की रक्षा का भार अंगरेजों को सौंप देते हैं। अंगरेज बेचारे केवल परोपकार के ख़याल से यह उत्तर-दायित्व अपने ऊपर ले लेते हैं। हालाँकि यह बहुत बड़ी भारी बुरी बात है कि जो राह बताए वही आगे चले। परन्तु लोग इस बात को नहीं समझते। परिश्रम से बचने के लिए अपना भार दूसरों पर लादने का मौक़ा ताका करते हैं। बेचारे अंगरेज यद्यपि इस बात से दुखी हैं कि जहाँ वे सभ्यता तथा शिक्षा का प्रचार करते हैं, वहाँ के लोग इन्हें ही अपनी जानो-माल का रक्षक नियुक्त कर देते हैं, परन्तु ईसामसीह की आज्ञा से विवश होकर उन्हें रक्षक बनना ही पड़ता है। ऐसी दशा में यदि वे ही जंगली लोग अंगरेज़ों से स्वाधीनता माँगने लगें तो अंगरेज कैसे दे सकते है! जिनमें स्वाधीन बनने की योग्यता नहीं, जिनमें अपने घर का प्रबन्ध स्वयम् करने का माद्दा नहीं, उनको स्वाधीनता देना मानो उन्हें कुँए में धकेलना है। इसीलिए बेचारे अँगरेज बहुत सोच समझ कर किसी को स्वाधीनता प्रदान करते हैं। भारत के साथ भी अँगरेज़ों ने थोड़ी नेकी नहीं की। अशिक्षित भारत को शिक्षित तथा सभ्य बनाया। हालाँकि कॉङ्ग्रेस का संगठन देख कर अंगरेजों के साथ-साथ अपने राम को भी इसमें सन्देह उत्पन्न हो गया है कि भारत अभी पूर्णतया सभ्य और शिक्षित हो गया है। कांग्रेस जो कार्य कर रही है, वह सभ्यता तथा शिक्षा का द्योतक ज़रा भी नहीं—ऐसा अक्ल के ठेके-दारों का ख़्याल है। शिक्षित और सभ्य केवल मुसलमान भाई कहे जा सकते हैं, जो यह भली-भाँति समझते हैं कि उन पर से अंगरेजों की छत्रछाया हटते ही अल्लाह मियाँ क़यामत नाज़िल कर देंगे। जब तक उन पर अंगरेजों का साया सलामत है, तब तक अल्लाह मियाँ के पिता-मह भी क़यामत नाज़िल करने का साहस नहीं कर सकते। इसे कहते हैं सभ्यता और शिक्षा का दिमाग़! क्यों न हो, आखिर हुकूमती दिमाग़

ठहरा; जो सत्रहवीं शताब्दी तक शासक रहे हों उनके दिमाग़ से हुकूमत की बू कैसे जा सकती है! यह बात दूसरी है, कि वह बू दिमाग़ की डिबिया में बन्द रहने के कारण बदबू में बदल गई हो, परन्तु है बू! इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। ऐसी दशा में मुसलमान-भाई यह कभी स्वीकार नहीं कर सकते कि अंगरेज़ लोग उनको इतने बड़े मुल्क में अकेला और निस्सहाय छोड़ कर चल दें! इसलिए मुसलमान भी यह चाहते हैं कि या तो अंगरेज सब कुछ हमें सौंप दें या फिर अपने ही क़ब्जे में रक्खें। इन दो के अतिरिक्त हिन्दुस्तान जैसे लावारिस माल का और कौन वारिस हो सकता है? हिन्दुओं के हाथ से तो हिन्दुस्तान को निकले हुए इतने दिन हो चुके कि तमादी हो गई। अब क़ानूनन् भी हिन्दुओं का कोई हक़ नहीं रहा। ऐसी दशा में हिन्दू लोग न जाने स्वराज्य और स्वाधीनता माँगने का दुस्साहस क्यों कर रहे हैं? पागल होगए है, घास खा गए हैं; क्योंकि पेट भर रोटियाँ नहीं मिलतीं! इतना होते हुए भी अपने राम अंगरेजों की उदारता पर उसी प्रकार फ़िदा हैं जैसे कि दीपक पर पतंग। अंगरेज़ बेचारे सबकुछ तो देने को तैयार हैं—खाली सेना तथा कोष अपने हाथ में रखना चाहते हैं। सो ठीक भी है, जिसके पास कोष रहेगा उसे उसकी रक्षा के लिए सेना भी रखनी पड़ेगी उसे सेना के भरण-पोषणार्थ कोष भी रखना पड़ेगा—सीधा सा हिसाब है, सीधी सी बात है। परन्तु इतनी मोटी बात भी हिन्दुओं की खोपड़ी-शरीफ़ा में नहीं समाती। अपने राम तो यह समझते हैं कि सेना को जहाँ तक दूर ही रक्खें, अच्छा हैं। सेना को पास रखना खतरनाक है। और आजकल जब कि चारों ओर डाके, चोरी इत्यादि होते रहते हैं। कोष भी अपने पास रखना जोखिम से ख़ाली नहीं। ये दोनों झगड़े की जड़ हैं और झगड़े से जहाँ तक दूर रहे, अच्छा है। हिन्दुस्तानी लोग फौज रक्खेंगे तो नित्य लड़ाई होगी। फौज कुछ बैठी तो खायगी नहीं, कुछ न कुछ काम तो उनसे लिया ही जायगा। और न कुछ होगा तो आपस ही में लड़ेगी। जिसको लड़ने की आदत है, वह हर जगह

और हर हालत में लड़ेगा। वह कभी चूक नहीं सकता। इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तानियों को नई नई फौज मिलेगी तो जरा फौज से काम लेने का शौक भी रहेगा। जिस प्रकार नया मुसलमान प्याज़ बहुत खाता है, उसी प्रकार फौज के नए स्वामी आरम्भ में खूब लड़ेंगे। बात-बात में पिस्तौल और बन्दूकें चलेंगी। जरा किसी नगर में कोई गड़बड़ हुई, बस गोली चल गई। जिनके अधिकार में ये फौजें रहेंगी, उनके अफसरों का क्या कहना। यदि अफसर लोग आपस में कभी लड़े तो बस ग़ज़ब ही हो जायगा। वे लोग जबानी जमा-खर्च तो रक्खेंगे ही नहीं—झट अपनी-अपनी फौज लेकर बट जायँगे कि "आओ निपट लो।" यह भी हो सकता है कि यही फ़ौज वाले लूट-पाट करने लगें, डाके डालने लगें-आखिर फौज ही ठहरी. उसे रोक कौन सकेगा? इन्हीं सब खटकों के कारण अंगरेज फौजें हिन्दुस्तानियों के अधिकार में नहीं देना चाहते। रहे अंगरेज़, सो एक तो वे फौजों का प्रबन्ध करना जानते हैं। अंगरेज़ को चाहे जितनी बड़ी फ़ौज दे दीजिए, परन्तु वे आपस में कभी नहीं लड़ेंगे। जब मौक़ा होगा, दूसरों पर ही गोलियाँ बरसाएँगे। आपस में जब लड़ेंगे, तो घूसों से! दूसरे फौज का बेकार पड़े रह कर रोटियाँ तोड़ना उन्हें ज़रा भी न अखरेगा—क्योंकि अपनी जेब से उन्हें धेला भी न देना पड़ेगा। यदि कोई दूसरा खर्च उठाने को तैयार हो, तो अंगरेज लोग हिन्दुस्तान में प्रति मनुष्य के लिए एक सिपाही रखने को तैयार हो सकते हैं; परन्तु इतना खर्च उठाने वाला है कौन? बेचारे थोड़ी सी फौज रक्खे हुए हैं, उसी पर लोग हाय-तोबा मचा रहे हैं कि हिन्दुस्तान की फौजें लूटे खा रही हैं। यह अन्धेर देखिए। लूटे खा रही हैं तो रक्षा भी तो वही करती है, वरना जनाब, अभी बोलशेविक आकर गर्दन नापने लगें। हालाँकि किसकी गर्दन नापें, हिन्दुस्तानियों की या अंगरेजों की? इसका ठीक-ठीक निश्चय नहीं है, परन्तु फिर भी फौजें रखना आवश्यक है। तीसरे कोई अंगरेज हिन्दुस्तानी की मातहती में नहीं रहना चाहता। रहे भी कैसे? मालिक कहीं नौकर की मातहती में रह सकता है? कोई भूला-भटका रह भी गया तो हिन्दुस्तानी अफसर

उससे सारा बदला चुकाने का प्रयत्न करेगा। आखिर अंगरेज़ बेवक़ूफ़ तो हैं नहीं, अपने भले-बुरे कार्य जानते हैं। उन्होंने अपने मातहत हिन्दुस्तानियों के साथ जो व्यवहार किए हैं, उससे अच्छे व्यवहार की प्रत्याशा वह कैसे रख सकते हैं। मान लीजिए, अफ़सर ने किसी अंगरेज़ से अंगरेजों पर गोली चलाने के लिए कहा, तो वह ऐसा कभी न करेगा। यह फ़ौजी नियम तो केवल हिन्दुस्तानियों पर लागू है कि अंगरेज अफ़सर कहे तो हिन्दुस्तानियों को अपने बाप पर भी गोली चलानी पड़ेगी ! यदि वह नहीं चलाता तो हुक्म-उदूली के अपराध में कोर्टमार्शल का शिकार बनता है। अंगरेज़ पर यह नियम लागू न हो सकेगा। इसलिए अंगरेज हिन्दुस्तानी अफसर की मातहती नहीं करना माँगता। अपने पापों से सब डरते हैं। इन सब बातों को सोच-समझ कर सम्पादक जी, अपने राम की भी यही राय है कि अंगरेज़ लोग फौज़ तथा कोष अपने ही हाथ में रक्खें—इसी में उनका कल्याण है !

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

: २४ :

अजी सम्पादकजी महाराज,

जयरामजी की ।

भई इस समय कौंसिल के अतिरिक्त और कुछ अच्छा नहीं लगता। जहाँ देखिए इसी की चर्चा है। क्या पढ़े लिखे—और क्या बे पढ़े—सब इसी की बातचीत किया करते हैं। पिछली चिट्ठी में मैंने आपको सूचना दी थी कि मैं भी कौंसिल के लिए खड़ा हो गया हूँ। बड़ी दिल्लगी रही। मेरे खड़े होने का समाचार फैलते ही, नाई, धोबी, कहार, मनिहार, गुण्डे, ठिलुहे, पहलवान, कवि, शायर, लेखक, सम्पादक, वगैरह वगैरह, सब चींटी दल की तरह घर घेरने लगे। अब जिसे देखिए वही कहता है हमारी बात मानिये, हमारे कहे अनुसार काम कीजिए तो इस तरह कौंसिल में घुस जाइये जैसे सूई में डोरा घुसता है। भई वाह! क्या कही है-सूई में डोरा घुसने की खूब कही। यह एक शायर साहब की उक्ति है। चित्त प्रसन्न हो गया।

मैंने कहा—'कोई है? इन शायर साहब को चार पैसे इनाम दे दो।' इतना सुनना था कि शायर साहब मचल गये-बोले, 'चार पैसे!' आपने भी मुझे कोई भिख-मंगा समझा है।' मैंने कहा—'अजी वाह आप भी क्या बातें करते हैं। फिलहाल चार पैसे की रेवड़ियाँ खाइये, मुँह मीठा कीजिए, जब कौंसिल में पहुँच जाऊँगा तो किसी दिन पँचमेल मिठाई खा लीजिएगा।' यह कहकर शायर साहब को ठंडा किया। एक मित्र महोदय ने द्वार पर रोशन-चौकी लाकर बिठा दी। अब मैं लाख कहता हूँ कि—'अरे भाई यह क्या वाहियातपन है!' पर वह कब मानते हैं। अतएव मैं चुप होकर घर में बैठ रहा। एक घण्टे भर बाद द्वार पर ढोलक बजने की आवाज सुनाई पड़ी। मैंने सोचा देखूँ यह कौनसी बला

आई। द्वार खोलकर क्या देखता हूँ चार पाँच 'जनखे' ढोलक बजा बजा कर गा रहे हैं—सुहागिन जच्चा मान करे नन्दलाल।' देखते ही आँखों में खून उतर आया। मैंने डाँटकर उन्हें रोका और पूछा—यह क्या वाहियात बात है, तुम लोग क्यों गा रहे हो?

उनमें से एक बोला—सलामती रहे; दरवाजे पर नौबत झड़ती देख—हमने समझा कोई खुशी का काम है—हम तो ऐसे ही मौकों पर आती हैं। अल्ला, जच्चा और बच्चा, दोनों को सलामत रक्खे।

मैंने कहा—कुछ घास तो नहीं खा गये हो, कैसी जच्चा कौर कहाँ का बच्चा, खैरियत इसी में है कि चुपचाप चले जाओ नहीं ढोलक-वोलक फोड़ डाली जायगी।

वहीं पर एक व्यक्ति खड़ा था वह उनसे बोला—यहाँ लड़का-वड़का कुछ नहीं हुआ। बात सिर्फ इतनी है कि हमारे पण्डित जी कौंसिल में जा रहे हैं।

यह सुनकर उनमें से एक नाक पर हाथ रखकर बोला—ऊई अल्लाह तो यह क्या कम खुशी की बात है। गाओरी गाओ—।

यह कहकर उसने पुनः ढोलक बजानी आरम्भ की और सबने गाना शुरू किया—'अरे मेरा बन्ना चला कौंसिल को।"

यह सुनते ही उपस्थित लोगों ने मुँह फेर फेरकर मुस्कराना आरंभ किया और मेरे मिज़ाज का पारा जो है सो २६० डिग्री पर पहुँचा। मैंने पुकारा-'कोई है' होने को वहाँ और कौन था—द्वार पर दुबेजी महाराज और घर के भीतर लल्ला की महतारी। परन्तु फिर भी न जानें कहाँ से आठ दस आदमी दौड़ पड़े बोले—क्या हुक्म है सरकार!

मैंने कहा—इन सबको शहर से निकाल दो।

सम्पादकजी, मेरा मतलब था कि यहाँ से हटा दो, परन्तु आठ-दस आदमियों ने जो एक बारगी कहा—'क्या हुक्म है सरकार!' तो कुछ थोड़ा सुरूर हो आया और मुँह से निकल गया—'इन सब को शहर से निकाल दो।'

खैर साहब वे सब किसी न किसी प्रकार वहाँ से हटाये गये। जब

जरा मिजाज ठंडा हुआ तो मैंने सोचा—कौंसिल में जाना भी बड़े सौभाग्य की बात है। अभी पहुँचे भी नहीं और सब तरह के लोग बिना बुलाये दौड़े आने लगे। जब पहुँच जाँयगे तब तो हम एक मुहल्ला ही अलग बसा लेंगे।

समाचार पाकर हमारे पण्डितजी भी दौड़ आये। आते ही पहले बोले-अब आप कौंसिल में जरूर पहुँच जायँगे-जनखों का आना बड़ा शुभ होता है। ये लोग हर्ष और आनन्द की मूर्त्ति हैं और ऐसे अवसर पर ही किसी के द्वार पर जाते हैं। ये लोग बिना बुलाये आपके द्वार पर आ गये-बड़े शुभ लक्षण हैं। अब आप निश्चय कौंसिल में जाँयगे। परन्तु आपने उनको खाली लौटा दिया, यह अच्छा नहीं किया—उन्हें कुछ दे देना चाहिए था।

मैंने कहा—खैर, अब दे दिया जायगा। परन्तु आप जरा मेरी जन्म पत्री देखिये कि मैं कौंसिल में पहुँच जाऊँगा या नहीं।

पण्डितजी महाराज बड़ी देर तक जन्मपत्री देखते रहे। अन्त में बोले—आपका कौंसिल में पहुँचने का योग पूरा है; पर कुछ जाप करा डालिये, एक उद्यापन कर डालिये। केवल तीन चार सौ का खर्च है—अधिक नहीं।

'केवल तीन चार सौ!' केवल की एक ही कही।

मैंने कहा—सोचकर बताऊँगा।

इसी प्रकार जिसे देखिये वह यही कहता था कि 'बस अब' आप पहुँच गये। मगर आप अब जरा बाहर भी घूमा कीजिये। घर में बैठने से काम न चलेगा।'

मैंने पूछा—बाहर घूमने का क्या मतलब?

बोले—शहर में गश्त लगाइये, वोटरों से मिलिये, तब तो आपको वोट मिलेंगे—ऐसे घर बैठे कोई वोट थोड़ा दे देगा।

मैंने कहा—क्या गश्त भी लगानी होगी।

लोग बाग बोले-और क्या, बिना गश्त लगाये कुछ नहीं होगा।

मैंने सोचा—अब तो खड़े ही हो गये—बिना कौंसिल पहुँचे बनेगा

नहीं, इसलिए अब सब नाच नाचने पड़ेंगे।

मैंने कहा—जिस दिन कहिये, उस दिन चलूँ।

एक सज्जन बोले—एक दिन चलने से काम नहीं चलेगा—रोज चलना पड़ेगा। आप तो हुई हैं, घर का एक आध आदमी और साथ हो तो अच्छा है बाक़ी हम लोग रहेंगे।

मैंने कहा—घर में फिलहाल फक़त लल्ला की महतारी है। कहो उसे साथ ले लिया करूँ ?

एक दूसरे सज्जन बोले-यह ठीक नहीं है-हालाँकि इससे वोट बहुत मिलेंगे और जल्दी मिल जाँयगे अधिक मेहनत नहीं पड़ेगी—मगर इसमें बदनामी की बात है।

मैंने कहा—बदनामी वदनामी का ख्याल मत करो जिससे मैं कौन्सिल में पहुँच जाऊँ वह करो। चाहे जो करो; पर कौन्सिल में पहुँचा दो।

एक तीसरे सज्जन बोले—आप कौंसिल में अवश्य पहुँच जांयगे इस की चिन्ता मत कीजिये। हाँ तो मेरा प्रस्ताव यह है कि 'नेक्स्ट वीक' से यह कार्य आरम्भ कर दिया जाय।

मैंने सोचा या भगवान, यह 'नेक्स्ट वीक' क्या बला है, कई क्षणों तक सोचता रहा, पर कुछ समझ में न आया। अन्त में मैंने पूछा—'नेक्स्ट वीक' से आपका क्या तात्पर्य है ?

यह सुनते ही एक महोदय बोले-'नेक्स्ट वीक' का मतलब 'अगला हफ्ता'। दुबेजी अब आप कौंसिल में जा रहे हैं थोड़ी अँग्रेजी भी पढ़ लीजिये। एक मास्टर रख लीजिये वह एक घण्टे पढ़ा जाया करे। जब तक कौंसिल में पहुंचो तब तक थोड़ी बहुत अंगरेजी भी आ जाय।

मैंने सोचा यह अच्छी बला लगी। इस कौंसिल के पीछे न जाने क्या क्या करना पड़ेगा। अपने राम की चिड़िया सी जान ठहरी-अकेला क्या क्या करूँगा। मैंने कहा-अच्छी बात है जो कहियेगा वह करूँगा। कहिये मास्टर रख लूँ, कहिये स्कूल में भर्ती हो जाऊँ।

एक महोदय बोले—स्कूल में भर्ती होना उचित नहीं-उससे अन्य

कामों का हर्ज होगा—आप मास्टर से घर पर ही पढ़ लिया कीजिये। कोई मिडिल पास ढूँढ़ देंगे—वह पढ़ा जाया करेगा।

मैने कहा—कोई बी० ए० पास क्यों न रख लिया जाय, वह जल्दी पढ़ा देगा। पर इसकी किसी ने राय न दी। लोग कहने लगे—अभी आपके पढ़ाने को मिडिलची ही काफी है, मिडिलची तो आपको अभी तीन बरस पढ़ा सकता है, इसके पश्चात् ग्रेजुएट रख लिया जायगा।

यह मसला तय होने के पश्चात् यह बात उठी कि—'वोटरों के पास किस तरह चलना चाहिए।'

एक सज्जन बोले—आगे आगे रोशन-चौकी अवश्य बजती चले। जिसमें दूर ही से लोग जान जाँय कि दुबे जी वोट माँगने आ रहे हैं। औरतें घरों से निकल निकलकर छज्जों पर आ जाँयगी, वह भी देखेंगी कि हाँ कोई कौंसिल में जा रहा है। सब अपने अपने आदमियों पर जोर डालेंगी कि—'दुबे जी ही को वोट देना।'

मैंने कहा—बात तो दूर की सोची; परन्तु रोशन-चौकी के बजाय अँग्रेजी बाजा क्यों न रहे। उसकी आवाज दूर तक पहुँचती है।

एक दूसरे सज्जन बोले—मेरा प्रस्ताव यह है कि बाजा चाहे जो रहे, पर आगे आगे एक भंगी तुरही बजाता अवश्य चले, जैसा कि ब्याह बारातों में होता है, इससे बड़ा प्रभाव पड़ेगा।

यह सलाह भी सब के पसन्द आ गई।

मैंने कहा—और भी जो बात करनी हो सोच लो, पीछे फिर यह न कहना कि अमुक बात रह गई।

एक सज्जन बोल उठे—फिलहाल इतना काफी है, आगे फिर जैसा होगा देखा जायगा।

मैंने कहा—यारो, जरा मेरी खूब तारीफें करते रहो, जिससे लोग मेरी ही ओर आकर्षित हों।

एक महाशय बोले—तारीफों के तो पुल बँध रहे हैं। रोज एक पुल तैयार हो जाता है। चुनाव का समय आ जाने तक सैकड़ों पुल तैयार हो जाँयगे और आप उन्हीं पुलों पर से खट खट करते हुए कौंसिल में

जा बिराजेंगे-क्यों कैसी कही ?

सब चिल्ला उठे—वाह ! वाह ! वल्लाह क्या कही है, वाह क्या पुल बांधे हैं। मालूम होता है आप ठेकेदारी करते हैं।

वह साहब यह सुनते ही जामे से बाहर हो गये, कड़क कर बोले—ठेकेदारी करने वाले पर लानत भेजता हूँ, मैं शायर हूँ, शायर—समझे ?

मैंने कहा—चलो अच्छा है कि शायर लोग पुल भी बांध लेने लगे ! कोई हर्ज नहीं ! यह बड़ी अच्छी बात है, एक विद्या है। ईश्वर की दया से हमारे साथ सब तरह के आदमी हैं।

सो सम्पादक जी, अब मैं 'नेक्स्ट वीक' से गश्त लगाना आरम्भ करूँगा। कौंसिल के लिये खड़े होने से एक लाभ तो हुआ और वह यह कि 'नेक्स्ट वीक' के अर्थ तुरन्त मालूम हो गये और आगे भी पढ़ने लिखने का प्रबन्ध हो गया। शेष हाल अगली चिट्ठी में दूँगा।

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: २५ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आखिर 'नेक्स्ट वीक' भी आही कूदा। न आता तो अच्छा था; क्योंकि—'जो मजा इन्तजार में पाया—वह नहीं वस्लेयार में पाया।' अगर योंही इन्तजार ही इन्तजार में जीवन व्यतीत हो जाय तो अच्छा है। बहुत कट गई थोड़ी रही है—वह भी एक न एक दिन कट ही जायगी—रहेगी नहीं। नेक्स्ट वीक आते ही सवेरे चार बजे लोग बाग आ धमके। बोले—'चलिये !' सबेरे उठने की इच्छा तो होती नहीं थी; परन्तु काँख कूँखकर उठा। एक बार मन में आया—अच्छे फँसे चिड्डा गुलखैरू ! आराम से दिन चढ़े तक पैर फैलाये सोते रहते थे, सो अब मुँह अँधेरे उठकर दर दर अलख जगाओ। अच्छा भाई अब तो फँसे ही हैं सब कुछ करना पड़ेगा। मुझे कुछ बदमजे देख कर एक साहब बोले—इस समय तो आपको यह सब अखर रहा है; परन्तु इसका मजा तब मिलेगा जब कांउसिल की कुर्सी पर जाकर बैठियेगा। जनाब यह भी एक प्रकार की तपस्या है। बिना तपस्या के सुख नहीं मिलता।

मैंने कहा—तो तपस्या करना भी हमारा ही काम है, दूसरा यह काम कर भी नहीं सकता।

एक महालय बोल उठे—इसलिए दूसरा कौंसिल में जा भी नहीं सकता। कैसी कही ! वाह ! वाह ! क्या कही है ! ऐसी कही कि भोर हो गया।

मैंने कहा—भोर हो गया तो अब चलना चाहिये, देर करना ठीक नहीं। मगर यारो यह क्या अँधेर है, न बैण्ड बाजा, न शहनाई, न तुरही; उस रोज क्या क्या प्रस्ताव पास हुये कैसे कैसे मसविदे बने और

आखिर में सब टांय टांय फिश ! हमारे खजानची साहब कहाँ हैं ।

खजानची साहब बोले—मैं हाज़िर तो हूँ—कहिये !

मैं—क्यों साहब, यही आपका इन्तज़ाम है ?

खज़ानची—मेरा इसमें ज़रा भी कुसूर हो तो कहिये। जिन्हें बैण्ड ठीक करने के लिये रुपये दिये थे वह अपनी सुसराल चले गये। उनके साले को जुकाम हो गया है। सुसराल से तार आया था।

मैंने कहा—.जुकाम तो कोई ऐसा कठिन रोग नहीं है।

खज़ानची—यह न कहिये। जुकाम के बराबर कठिन रोग कोई है नहीं—जुकाम प्लेग और हैज़े से भी भयानक है।

मैंने आश्चर्य से अन्य लोगों की ओर देखा—क्यों साहब, जुकाम तो ऐसा भयानक रोग नहीं है।

एक महोदय बोले—जुकाम होता तो बहुत खतरनाक है—जुकाम से ही तपेदिक, न्यूमोनिया इत्यादि कठिन रोग हो जाते हैं। जब तक जुकाम बिगड़े नहीं तभी तक खैरियत है—लेकिन जहाँ बिगड़ा बस पूरी मुसीबत समझिये।

मैं—तो क्या उनके साले का जुकाम बिगड़ उठा है ?

खज़ांची—ऐसा ही मालूम होता है, नही तो तार क्यों आता ?

मैंने कहा—खैर, वह तो यों गये, मगर तुरही क्यों नहीं आई ?

खज़ांची—अजी जब बैण्ड नहीं तो खाली तुरही किस काम की।

एक दूसरे महोदय बोल उठे—और काम की हो तब भी इस समय तुरही मिल नहीं सकती ! सवेरे का वक्त है, भंगी सब अपने अपने काम में लगे हैं—हाँ शाम होती तो मिल जाते ?

मैं—और रोशन-चौकी क्यों नही आई ?

खज़ांची—दिन में रोशन-चौकी किस काम की, रोशनचौकी तो रात में मजा देती है। किसी दिन रात में निकलिये तो रोशन-चौकी मँगा ली जाय।

मैं—बिना बाजों के तो मामला फीका रहेगा। लोगों को पता कैसे लगेगा कि दुबे जी वोट माँगने आ रहे हैं।

एक महाशय बोले—इसकी तो सहल तरकीब है—चार पाँच आदमी आगे आगे चिल्लाते चलें 'आये ! आये।'

मैं—यह ठीक नहीं—इससे लोग कहीं होली का स्वाँग न समझ लें।

वह व्यक्ति—आप भी बच्चों की सी बातें करते हैं—आजकल कुछ फागुन थोड़ा ही है जो होली का स्वाँग समझ लेंगे।

एक अन्य सज्जन बोल उठे—अच्छा आये आये न कहा जाय। केवल एक आदमी आगे रहे। वह यह कहता चले-होशियार, खबरदार सोने वाले जागो, दुबेजी महाराज आ रहे हैं।

यह राय सब को पसन्द आई। खैर साहब, सब लोग चले।

एक आदमी ने आगे बढ़कर वहीं हाँक लगाई। उसके आवाज़ लगाते ही बहुत से मकानों के द्वार फटाफट बन्द हो गये—औरतों ने अपने बच्चों को गोद में छिपा लिया—दो चार आदमी डण्डे लेकर अपने अपने द्वार पर आ बैठे और बोले—'आने दो साले को, हम भी देखें कौन है, मालूम होता है कोई बड़ा शोरे-पुश्त डाकू है।' आवाज लगाने वाले महोदय तो आवाज लगाकर आगे बढ़ गये। जब हम लोग वहाँ पहुँचे तो एक बोले—क्यों भइया, यह दुबेजी कौन हैं ?

हम में से एक बोला-दुबेजी हमारे नगर के एक प्रतिष्ठित आदमी हैं—वह कौंसिल में जा रहे हैं सो भाई आप सब लोग उन्हीं को वोट देना। देखो यह दुबेजी हैं। यह कहकर एक आदमी ने मुझे आगे कर दिया। सब देख सुनकर वह आदमी बोला—यह अच्छी रही-एक आदमी अभी चिल्लाता गया है कि दुबेजी आरहे हैं—होशियार रहो। हम समझे कि दुबेजी कोई चोर बदमाश हैं। राम ! राम !

मैंने कहा—यह तरकीब ठीक नही उस आदमी को मना करदो कि आवाज न लगावे।

उसी समय एक आदमी दौड़ाया गया। मैंने उस व्यक्ति से कहा-भाई साहब, मैं आपका एक तुच्छ सेवक हूँ;। आप ही की सेवा को कौंसिल में दौड़ा जा रहा हूँ इसलिए कृपा करके मेरा ध्यान रखियेगा।

वह व्यक्ति बोला-हाँ यह ठीक है, मगर हमने तो आपको आज ही

देखा है। अब दो चार दिन आइये-जाइये तब बतलायँगे।

मैंने हाथ जोड़कर कहा—भइया, मैं आपका दास हूँ—कहो तो दिन में दस बार आपके दरवाजे आऊँ यह कौन सी बात है।

हमारे एक साथी ने लिस्ट और पेन्सिल निकालकर कहा—हाँ जरा अपना नाम तो बताना।

वह—मेरा नाम ननकू है।

—जाति ?

वह—धानुक !

मेरे मुँह से निकला—हैं; धानुक !

वह मेरी ओर घूरकर बोला—हाँ धानुक ! कहिये।

यह सुनते ही मुझे क्रोध आ गया। मैंने कहा—क्यों बे आदमी नहीं देखता—मखादीन बना बैठा है, उठके खड़ा हो अदब से।

वह बोला—क्यों खड़े हों ? क्या तुम्हारे नौकर हैं। ऐसे ही बड़े अफ़लातूँ के नाती थे तो घर में बैठे रहते, काहे को सबेरे सबेरे दरवाज़ा घेरा। हूँह—चले तो हैं भीख माँगने और अकड़ इतनी दिखाते हैं। जाओ हम नहीं जानते वोट-फोट।

इतना सुनते ही मेरे साथी मुझ पर बिगड़े—बोले—यह आप क्या ग़ज़ब कर रहे हैं—इस तरह तो एक भी वोट नहीं मिलेगा।

मैं—तो क्या इस धानुक के हाथ जोड़ूँ ?

एक सज्जन बोले—हाथ जोड़ना क्या आपको पैर तक छूने होंगे। कौंसिल में पहुँचना कुछ दिल्लगी थोड़ा ही है।

मैंने कहा—चाहे प्राण चले जाँय, पर मुझ से यह नहीं होगा। ऐसे कौंसिल जाने पर लानत है।

मेरे साथी बोले—तब तो आप देश-सेवा कर चुके।

मैंने कहा—देश-सेवा करने के सैकड़ों मार्ग हैं।

साथी लोग बोले—सब से महत्वपूर्ण मार्ग तो यही है।

मैंने कहा—हाँ, महत्वपूर्ण तो बेशक है—जेब भी गर्म होती है, इज्जत भी बढ़ जाती है, साधारण नागरिक की अपेक्षा कौंसिल का

मेम्बर कुछ अधिक शक्तिशाली हो जाता है--ये सब बातें उसके महत्व को प्रकट करती हैं, परन्तु भाई इस तरह दर-दर की ठोकरें खाकर, घुड़की-झिड़की सहकर गाली-गलौज जूता-पैज़ार करके कौंसिल में पहुँचे भी तो किस काम का। हम ऐसी देश-सेवा को दूर ही से प्रणाम करते हैं।

यह सुनते ही सब चिल्ला उठे—आप देश-द्रोही हैं, धोकेबाज़ हैं।

वह सब चिल्लाते ही रहे---और मैं जो रस्सियाँ तुड़ाकर भागा तो सीधे घर में आकर दम लिया। सम्पादकजी, यह कौंसिल की मेम्बरी हमारे बस का रोग नहीं है।

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: २६ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की।

कहिये कैसे मिजाज हैं? इस बार आप कांग्रेस के अधिवेशन में जायँगे या नहीं? मेरा तो किसी कदर इरादा हो रहा है। पारसाल कानपुर कांग्रेस में तो अपने राम पहुँच ही न सके—कारण लिख चुका हूँ; परन्तु इस बार आसाम तो अवश्य ही जायँगे—चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय। आसाम मैंने आजतक नहीं देखा—नहीं इतना झूठ न बोलूँगा—नकशे में कई बार देखा है और पढ़ा भी है। मगर वह बात दूसरी थी और यह बात तीसरी होगी। इसलिए जाना आवश्यक है। आप भी टहलते हुए चले आइयेगा। इस बार की कांग्रेस देखने योग्य होगी। हालांकि देखने योग्य हरसाल होती है; परन्तु इस साल कुछ बात ही और होगी। शायद आप पूछ बैठें कि वह क्या बात है; जो होगी। इसका उत्तर मैं यह दूँगा कि यद्यपि यह मैं स्वयम् नहीं जानता कि क्या होगा; परन्तु हाँ इतना मैं कहूँगा कि होगा कुछ न कुछ जुरूर, और न कुछ होगा तो तीन चार रोज चहल-पहल ही रहेगी। भई मेरा तो यह सिद्धान्त है कि ईश्वर पैसा दे तो कांग्रेस अवश्य जाय। आम के आम और गुठलियों के दाम। मेला तमाशा भी देखिये, नये देश की सैर कीजिए और देश सेवा घाते में। और जो कहीं इसी सैर-सपाटे में स्वराज्य मिल गया हालांकि फिलहाल उसके मिलने की आशा बहुत ही कम है—तो वह घाते पर घाता अथवा महाघात समझिये।

भई इस वर्ष रहेगा आनन्द! कौंसिलों के लिए तो कांग्रेस सिरफुटौ-व्वल करने ही लगी है—अब रह गई पदों के ग्रहण करने की बात सो उसके पास कराने के लिए इस वर्ष कुछ लोग अवश्य ज़ोर लगायेंगे।

मजे की खास बात यही होगी। देखना कैसे कैसे देश-भक्त पहुँचते हैं और क्या सिर हिला हिला के व्याख्यान फटकारते हैं। बस उस समय तो ऐसा मालूम होता है कि स्वराज्य इन लोगों के चरणों पर लोटने के लिए रस्सियाँ तुड़ाये दौड़ा चला आ रहा है। निस्सन्देह वह दृश्य देखने योग्य होता है। यार स्वराज्य मिले चाहे न मिले पर कांग्रेस के समय तीन चार दिन स्वराज्य की कुछ चाशनी अवश्य मिल जाती है। अपने राम तो इसी पर लट्टू हैं। स्वराज्य में इससे अधिक और क्या होगा। साल में यह साढ़े तीन दिन का स्वराज्य जिसे भोगने को मिले उसके समान भाग्यवान कौन हो सकता है।

हाँ एक सलाह पूछता हूँ। मेरी इच्छा है कि इस बार मैं भी एक प्रस्ताव पेश करूँ। वह प्रस्ताव इस सम्बन्ध का होगा कि अभी तक तो हम लोग इधर-उधर भटकते रहे; मगर अब डटकर काम करना चाहिए। वह काम क्या है? वह काम है स्वराज्य-वराज्य का पिण्ड छोड़कर आनन्द-पूर्वक कौंसिलों का सुख लूटना। अरे भाई जब स्वराज्य मिलने की कोई आशा ही नहीं तो क्यों न कौंसिलों और सरकारी पदों का आनन्द भोगा जाय। क्या कहूँ—अफसोस यह है कि मुझ कमबख्त को कोई पूछता ही नहीं वरना मैं अकेला ही समस्त सरकारी पदों को सुशोभित करने को तैयार हूँ। शायद आप पूछें कि—'यदि ऐसा हो भी जाय तो आप अकेले सब पदों ता कार्य कैसे कर सकेंगे।' मैं कहता हूँ कि इस सम्बन्ध में शंका करना एक बहुत छोटी सी मूर्खता है। अजी जनाब अपने राम को वह वह पैतरे याद हैं कि अकेले तमाम दुनिया के काम कर सकते हैं—और लुत्फ यह कि घर के बाहर कदम नहीं निकालेंगे। हमारे एजेंगट सब शहरों में मौजूद रहते हैं—जहाँ एजेगट न होंगे वहाँ पैदा किये जायँगे। इस प्रकार चाहे जितना काम आ पड़े आपकी दया से सब चुटकियों में हो जायगा।

स्वराज्यपार्टीवाले कहते हैं कि और सब ठीक है। हम कौंसिलों में जायँगे, सरकार से भत्ता लेंगे यह सब कुछ करेंगे; परन्तु सरकारी पद ग्रहण न करेंगे। मैं कहता हूँ यह स्वराज्यपार्टी वाले यह बड़ी साधारण

भूल कर रहे हैं। भाइयो अब जो कुछ मिले लेते चले जाओ, जरा भी चींचपड़ न करो। अब क्या है अब तो तीन साल के लिए अमर हो गये अब जो इच्छा हो करो। इसी बात पर मुझ में और एक सज्जन में कल झगड़ा हो गया। वह कहने लगे—सरकारी पद ग्रहण करना महा मूर्खता है।

मैंने पूछा—क्यों ?

वह—सरकारी पद ग्रहण करने से मनुष्य सरकार के विरुद्ध चल ही नहीं सकता।

मैंने कहा—वाह, चल कैसे नहीं सकता ! सरकारी पद ग्रहण करने से क्या किसी की टाँगे थोड़ा ही टूट जाती हैं।

वह-नहीं आप मेरा मतलब नहीं समझे। मेरा मतलब यह है कि सरकारी पद पर काम करने वाला सरकार के खिलाफ नहीं जा सकता।

मैं—क्यों नहीं जा सकता, क्या लंगड़ा हो जाता है ! मान लीजिए लँगड़ा भी होजाय तो ऐसी दशा में घोड़ा गाड़ी, मोटर, लारी, रथ, बेहली, छकड़े इत्यादि इत्यादि मौजूद हैं, उन पर चढ़कर जा सकता हैं।

वह-आप बिल्कुल बौड़म आदमी हैं; आप से बात करना व्यर्थ है।

मैं-वाह ! जब बहस में हार गये तो गाली गलौज करने लगे। मेरी बात का उत्तर दीजिए।

वह-भाई साहब, सरकारी पद लेकर कोई व्यक्ति सरकार के खिलाफ कोई काम नहीं कर सकता।

मैं-यह भी गलत है। मुझे आप जितने सरकारी पद हैं वह सब दिला दीजिए, देखिए मैं कैसे काम करता हूँ।

वह—आप क्या करेंगे ?

मैं—करना धरना क्या है, आनन्द से चैन की बंसी बजाऊँगा।

वाह—तो सरकार के विरुद्ध काम करने वाली बात कहाँ रही।

मैं—वह तो मौजूद ही है—हाँ उनके अनुसार काम करना यह अपनी अपनी इच्छा पर निर्भर है।

वह—इसके क्या अर्थ !

मैं—देखिये जब तक हमारी इच्छा सरकार के विरुद्ध काम करने की नहीं है तब तक तो हम कुछ करेंगे नहीं। और ईश्वर न करे, जिस दिन इच्छा चली उस दिन फिर किसी के रोके रुकेंगे भी नहीं। सब काम खिलाफ करेंगे। सरकार कहेगी बैठो तो हम खड़े रहेंगे, वह कहेगी खड़े हो जाओ तो हम बैठ जायँगे बल्कि लेट जायँगे, सरकार कहेगी खाओ तो उस दिन हम एकादशी व्रत कर डालेंगे, और जब कहेगी लंघन कर डालो, तब नाक तक ठूँस ठूँसकर खायेंगे—फिर चाहे हैजा ही क्यों न हो जाय।

वह महाशय झल्लाकर बोले—यही आपकी व्यर्थ बातें हैं। आप मेरा मतलब ही नहीं समझते!

मैंने कहा—बस बस रहने दीजिए इससे मालूम होता है कि आप मतलब समझा ही नहीं सकते।

वह—खैर, आप ऐसा ही समझिये।

मैं कहता हूँ कि सरकारी पद ग्रहण करने में हानि ही क्या है।

वह—कोई फ़ायदा नहीं।

मैं—फ़ायदा तो पहले कौंसिलों में जाने से भी नहीं था. फिर बाद को कैसे निकल आया।

वह—कांग्रेस ने पास कर दिया; इसलिए फ़ायदा निकल आया।

मैं—तो जनाब, यदि कांग्रेस पद ग्रहण करना पास कर दे तो फिर उसमें भी फ़ायदे ही फ़ायदे नज़र आने लगें।

वह—हाँ बात तो ऐसी ही है।

मैं—जो बात ऐसी ही है तो फिर क्यों न इस वर्ष कांग्रेस में चलकर यह बात पास करा ली जाय।

वह—हमारे आपके पास करने से थोड़ा ही हो सकता है। जब तक अधिकांश प्रतिनिधि न करें।

मैं—ऊँह! यह तो यार लोगों के बाँये हाथ का खेल है।

वह—वह कैसे?

मैं—देखिये, यहाँ से अपने साथ कुछ ऐसे आदमी भर्ती करके ले

चलिये जो आँखें बन्द करके आपके पक्ष में वोट दें। बस, फिर कांग्रेस अपने बाप की है, जो चाहे पास करा लीजिए।

वह—पर इतने आदमी मिलेंगे कहाँ ?

मैं—यदि आने जाने के किराये और भोजनों का डौल हो सके तो आदमी कोड़ियों मिल सकते हैं, चाहे स्पेशेल ट्रेनें भर ले चलिए।

वह—हाँ, युक्ति तो बड़ी अच्छी है।

मैं—अच्छी तो सब कुछ है; पर रुपया कहाँ से आये !

वह—चन्दा कर लिया जायगा।

मैं—भला हम ईमानदारों को चन्दा कौन देगा ?

वह—बस, इतनी ही कसर है !

मैं—यह कसर बहुत बड़ी है।

वह—इसके अतिरिक्त एक बात और है।

मैं—वह क्या ?

वह—आप प्रतिनिधि ले भी नहीं जा सकते।

मैं—क्यों ?

वह—यह अधिकार केवल कांग्रेस कमेटियों को है कि वे प्रतिनिधि चुनकर भेजें। बिना कांग्रेस कमेटियों के चुने हुए आप पेराडाल के अन्दर घुसने भी न पायेंगे।

मैं—वाह। यह कैसे हो सकता है ? जो प्रतिनिधि शुल्क दे, वही जा सकता है।

वह—नहीं, ऐसा नहीं है। बिना नियमानुसार चुने गये कोई नहीं जा सकता। हाँ, दर्शक की हैसियत से जा सकते हैं; परन्तु वोट देने का अधिकार नहीं रहेगा।

मैं—यह बात है ?

वह—हाँ, यह बात है।

मैं—ओ—तब तो हम असली बात समझ गये।

वह—क्या बात समझ गये !

मैं—बस, समझ गये !

वह—क्या समझ गये, कुछ मालूम भी तो हो ?

मैं—बस, समझ गये !

वह—बाहरी वेहशत ! अभी तो आप भले चंगे थे।

मैं—वल्लाह—बस समझ में आ गया।

वह—अरे साहब क्या समझ में आ गया ?

मैं—यही कि ऐसी दशा में कांग्रेस उन्हीं लोगों के हाथ में है जिन का कांग्रेस कमेटियों पर अधिकार है वे लोग जिधर चाहें कांग्रेस की नकेल घुमा दें।

वह—यही तो बात है।

मैं—जब यही बात है तो जाइये, ठंडी ठंडी हवा खाइये।

वह—कांग्रेस तो चलियेगा ही !

मैं—अब कांग्रेस जाना व्यर्थ है, अब तो रहस्य समझ में आ गया।

यह सुनते ही वह महाशय अपना सा मुँह लेकर चल दिये।

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: २७ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

कई दिन हुए मेरे पास एक लेखक महोदय आये और बोले—मैंने एक मौलिक ग्रन्थ लिखा है, उसे आप कृपा करके देख लीजिये।

मैंने पूछा—ग्रन्थ किस विषय पर है?

लेखक—विषय? विषय की बात न पूछिये, दुनिया भर में जितने विषय हैं उन सब का समावेश उस ग्रन्थ में कर दिया गया है।

मैं कुछ घबराकर बोला—ओफ़ ओह! तब तो आपने ग्रन्थ क्या पूरा विश्वकोष लिखा है।

लेखक—विश्वकोष न होते हुए भी वह विश्वकोष है।

मैं—ओहो, तब तो उसमें यह ख़ास सिफ़त है।

लेखक—आप एक ही सिफ़त सुनकर घबरा गये, उसमें ऐसी ऐसी न जाने कितनी सिफ़तें हैं।

मैं—क्यों साहब उसमें काव्य है?

लेखक—एक काव्य क्या अनेकों काव्य हैं।

मैं—उपन्यास और गल्प भी हैं?

लेखक—एक नहीं पचासों।

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने पूछा—इतिहास भी है?

लेखक—एक नहीं बीसियों।

मैं—तब तो ग्रन्थ क्या ग्रन्थों का लकड़दादा समझना चाहिये।

लेखक—इससे भी बढ़कर समझिये।

मैं—कुछ विज्ञान की चर्चा भी की गई है।

लेखक—चर्चा? चर्चा नहीं उसमें विज्ञान की पूरी पुस्तकें

मौजूद हैं।

मैंने सोचा—ओफ़ ! तब तो यह लेखक नोबल प्राइज तथा मँगला-प्रसाद पारितोषिक और भविष्य में उत्पन्न होने वाले अन्य सब पारितो-षिक ले लेगा। इसका मस्तिष्क है या भानमती का पिटारा। मैंने पुनः डरते डरते पूछा—क्यों महोदय, उसमें और सबकुछ होगा; परन्तु एक बात की कसर रह ही गई होगी, मैं दावे से कहता हूँ कि उस विषय पर आपने एक अक्षर भी न लिखा होगा।

लेखक—वह कौनसा विषय है, जरा नाम लीजिए।

मैंने—देवी-देवता मनाकर, जिसमें मेरा दावा झूठ न निकले, कहा—भूगोल।

लेखक महोदय मुस्कराकर बोले—बस, इसी पर आपको इतना घमण्ड था, अजी जनाब ! एक भूगोल क्या समस्त भूगोल है।

यह सुनकर मेरा मस्तिष्क चक्कर खाने लगा, जल्दी से घर के भीतर घुस गया। वहाँ जाकर एक गिलास ठंडा पानी पिया, मुँह पर दो चार छींटे मारे। जब चित्त जरा सावधान हुआ तब मैं फिर उनके पास पहुँचा।

मैंने कहा—सुनिये महोदय अब मैं आप से कुछ न पूछूँगा।

लेखक—नहीं अभी जो बात रह गई हो वह पूछ डालिये।

मैं—पूछ तो लूँ; परन्तु यदि वह भी आपके ग्रन्थ में निकल आई तो मुझे ग़श आ जायगा; इसलिये पहले किसी डाक्टर को बुला कर बिठा लूँ तब पूछूँ।

लेखक महोदय हँसकर बोले—आप तो मजाक़ करते हैं।

मैं—मजाक़ ! अजी जनाब मजाक़ में कोई बेहोश तो हो नहीं जाता।

लेखक—अजी बस रहने भी दीजिये। खैर,

आप पूछिये।

मैं—पूछता हूँ, जरा हृदय को पकड़ लूँ, कलेजा थाम लूँ। हाँ आप एक बात का ध्यान रखिएगा, मैं बेहोश होने लगूँ तो जरा सँभाल

लीजिएगा, खोपड़ी पर बर्फ रख दीजिएगा—बर्फ यहीं मेरे मकान की बग़ल में मिलती है।

लेखक—अजी आप भी क्या बातें करते हैं, पूछिये।

मैं—भला उसमें 'दर्शन' भी है? ज़रा ठहरना अभी उत्तर न देना।

यह कहकर मैंने दीवार पकड़ ली और तब कहा—हाँ बताइये।

लेखक—मुझे पकड़कर बोला—हाँ, दर्शन भी है एक नहीं अनेक।

मैं सचमुच ही गिरने लगा, यदि लेखक मुझे संभाल न लेता तो मैं निश्चय ही धराशाही हो जाता। उसने पंखा लेकर हवा करना आरम्भ किया। दस मिनिट पश्चात् मुझे होश आया, होश आते ही मैंने कहा—बस अब आप तशरीफ ले जाइये, मैं अब आप से कुछ नहीं पूछना चाहता।

वह बोले—नहीं कुछ कसर हो तो पूछ लीजिये।

मैं—भई पूछ तो लूँ; पर भय मालूम होता है, यदि वह विषय भी तुम्हारी पुस्तक······।

लेखक—बात काटकर बोला—पुस्तक नहीं ग्रन्थ कहिये। जिसमें इतने विषय हों वह पुस्तक ही रहेगी?

मैं—हाँ हाँ क्षमा कीजिये, भूल गया था, ग्रन्थ, ग्रन्थ बल्कि ग्रन्थ के बाप का बाबा महाग्रन्थ। हाँ तो उस महाग्रन्थ में यदि वह विषय भी निकल आया तो मेरे प्राणान्त हो जायँगे। इसलिये अब न पूछूँगा, मेरे प्राण फालतू नहीं हैं।

लेखक—नहीं नहीं, आपके प्राण नहीं निकलने पायँगे, इसका ज़िम्मा मैं लेता हूँ अगर प्राण निकल जांय तो जो चाहे सो दण्ड दीजियेगा।

मैंने कहा—अच्छी बात है, यदि मेरे प्राण निकल गये तो मैं आपके साथ बुरी तरह पेश आऊँगा। समस्त पत्रों में लेख लिखकर आपकी बदनामी कर दूँगा; मगर ठहरिये तो, वाह आपने मुझे अच्छा बनाया। जब प्राण निकल जांयगे तो मैं मर जाऊँगा और इसके यह अर्थ हुये कि फिर तो मैं आपका कुछ भी बना-बिगाड़ न सकूँगा, ओफ ओह! भले को मैं समझ गया अन्यथा आपने तो बेवकूफ़ बनाकर आज मार ही

डाला था, ले अब ठंडे ठंडे यहाँ से चले तो जाइये।

लेखक—आप तो खफ़ा होते हैं।

मैं—खफा होने की बातें ही आप कर रहे है, मुझे आप कोई साहित्य-विद्रोही आदमी मालूम पड़ते है। इसी बहाने से प्राण लेने आ गये, ग्रन्थ क्या लायें, पूरा बम बना लाये।

लेखक घबराकर बोला—अरे दुबेजी ऐसा भयानक दोषारोपण न कीजिये। अगर आप मुझे अपना शत्रु समझते है तो लीजिये मैं जाता हूँ।

यह कहकर वह चल दिया। मैंने उसे जाते देख पुनः बुलाया।

मैंने कहा—अच्छा भाई लौट आओ, क्या करूँ बिना पूछे भी तो जी नहीं मानता। अच्छा ख़ैर, अब मैंने अपना कलेजा पत्थर का बना लिया है, क्योंकि मैं आपका तात्पर्य समझ गया; परन्तु यह याद रखियें आप अपना अभीष्ट प्राप्त न कर सकेंगे। अच्छा बतलाइयें आप की पुस्तक-अरे तोबा, महाग्रन्थ में ज्योषित विषय है कि नहीं? जल्दी बताइये और इस तरह कहिये कि मुझे सुनाई न पड़े। जरा ठहरना, अभी मत कहना।

यह कहकर मैं घर के भीतर से एक टूटा कनस्तर उठा लाया और उसे पंखे की डंडी से पीटता हुआ बोला—अब कहिये।

यद्यपि मैं इस जोर से कनस्तर बजा रहा था कि मुझे कुछ न सुनाई पड़े; परन्तु उन्होंने बड़े जोर से चिल्लाकर कहा—हाँ है और बहुत है, गणित, फलित दोनों।

सम्पादक जी इस बार न मेरा सिर चकराया और न गश आया। यह कनस्तर पीटते रहने का फल था। मैंने लेखक से कहा—अब मुझे प्रश्न करने की युक्ति मालूम हो गई। ले अब सावधान हो जाइये मैं अब प्रश्नों का दरबा खोलता हूँ, सँभलिये, यदि मेरे पूछे विषय आपकी पुस्तिका-राम राम, मन होता है जीभ काट डालूँ—आपके ग्रन्थराज में न निकले तो आपको कालेपानी भिजवा दूँगा।

लेखक ने कहा—पूछिये।

मैंने पूछा—आपके ग्रन्थराज में·······ए······वह देखो—उसका भला सा नाम है, देखिये-उँह ! पेट में है, मुंह में नहीं आता। ओफ ! हाँ हाँ आ रहा है ! ऐं फिर गायब हो गया। अररर, अब तो कोई विषय रह ही नहीं गया। लगभग सबको तो पूछ चुका। चलिये छुट्टी हुई, जब पूछने की तरकीब मालूम हुई तब सब विषय ही समाप्त हो गये। अच्छा जाने दीजिए। वह ग्रन्थ आप साथ लाये हैं ?

यह कहकर मैंने बाहर की ओर झाँका, इस अभिप्राय से कि यदि ग्रन्थ लाये होंगे तो बाहर ठेले पर लदा खड़ा होगा; क्योंकि जिस ग्रन्थ में इतने विषय होंगे वह कोई मामूली ग्रन्थ तो होगा नहीं।

लेखक—यही तो तारीफ़ है कि इतने विषय होते हुए भी वह एक बहुत छोटा ग्रन्थ है।

मैंने चिल्लाकर कहा—हैं, छोटा ग्रन्थ ?

लेखक—हाँ, और एक विषय पूछना आप भूल गये। वह मैं बतलाये देता हूँ, वह है कोष। कोष भी उसमें अनेक हैं।

मैं—हाँ यही विषय तो मेरे पेट में था। इतना सोचा पर दुष्ट मूँह में नहीं आया। अच्छा वह बावनरूपी ग्रन्थराज दिखाइये।

उसने जेब से एक छोटी पुस्तक निकालकर दिखाई मैंने उसका मुख-पृष्ठ पढ़ा उस पर लिखा था— 'हिन्दी की उत्तमोत्तम पुस्तकों का सबसे बड़ा सूचीपत्र।' यह देखते ही मैं सचमुच ग़श खाकर गिर पड़ा। घण्टा भर बाद जब होश आया तो देखा कि लल्ला की महतारी की गोद में सिर रक्खे पड़ा हूँ—लेखक दुष्ट का कहीं पता नहीं। जान पड़ता है वह किसी पुस्तक प्रकाशक का एजेण्ट था। खैर इस बार तो उल्लू बन गया- भविष्य में सतर्क रहूँगा।

भवदीय

—बिजयानन्द (दुबे जी)

: २८ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

महात्माजी ने समाचार पत्रों पर जो दोषारोपण किया है, उससे मैं तन-मन-धन से सहमत हूँ। जिस समय महात्माजी के हृदय में यह बात उठी थी उसके ठीक पाँच मिनिट और उनसठ सेकेण्ड पश्चात् मेरे मन में भी यही बात उठी कि समाचार-पत्रों से केवल लाभ ही लाभ नहीं, वरन् हानि भी होती है। बल्कि मैं तो यही कहता हूँ कि लाभ कम होता है हानि अधिक होती है। पूछिये कैसे ! सुनिये—लाभ तो केवल इतना होता है कि लोगों को देश के समाचार मिलते रहने के कारण लोग अपने देश की तथा अन्य देशों की वर्तमान अवस्था से परिचित रहते हैं। परन्तु हानियाँ बहुत सी हैं, असंख्य हैं। उन हानियों को गिनाने के लिये कोई वेद-व्यास जन्म ले तब वे गिनाई जा सकती हैं और उनको लेखबद्ध करने के लिए एक बार पुनः श्रीगणपति सूँड़ हिलाते टपक पड़ें तब वे लेख-बद्ध हो सकती हैं। हमारा सा क्षुद्र-बुद्धि मनुष्य उनको क्या गिना सकता है और क्या लिख सकता है। अभी कोई डेढ़ हफ़्ता हुआ जब मुझे स्वप्न में एक देवदूत ने सूचना दी थी कि—"स्वर्गलोक के समस्त देवता श्रीब्रह्माजी की सेवा में उपस्थित होकर विनय-पूर्वक बोलते भये 'चतुर्मुख सृष्टि कर्त्ता ! मृत्युलोक में जो आजकल अनेक प्रकार के उपद्रव हो रहे हैं, अनेक प्रकार के अत्याचार तथा अनाचार हो रहे हैं इन सबका जो है सो, क्या कारण होता भया ?" इस पर ब्रह्मा जी अपने दक्षिण दिशा वाले मुख से इस प्रकार बोलते भयें कि—'हे मूर्ख देवताओ ! तुम जो है सो महा गधे हो। इतनी छोटी सी बात भी तुम्हारी समझ के मिडिल के मध्य के दर्म्यान के बीचोंबीच

में नहीं आवती भई! ब्रह्म, ब्रह्म! (यह ब्रह्मा जी का 'राम! राम!' है)। इसी ज्ञान-भाण्डार को लैकरकेनी जो है सो तुम स्वयम् को मनुष्यों से श्रेष्ठ समझते हो। धिक्कार है तुम्हारी इस श्रेष्ठता पर! अच्छा अब कान फटफटाकर तथा पूँछ उठाकर मैं जो भाखण करता हूँ उसे श्रवण करो। मृत्युलोक में जो अनेक वाद-विवाद, वैमनस्य, मनोमालिन्य, साम्प्रदायिक कलह, युद्ध, लड़ाई-झगड़ा, लात-जूता, घूँसा तमाचा, मुंह चिढ़ाना श्री १०८ इत्यादि प्रबल होता जावता भया उसका एकमात्र कारण मृत्युलोक के अधिकांश टके चार पैसे में बिकने वाले समाचार-पत्र ही होते भये।'

इस पर सब देवतागण पुनः विनय-पूर्वक इस प्रकार प्रश्न करते भये कि 'हे चतुरानन! ये समाचार पत्र जो हैं सो किस प्रकार इन समस्त अनाचारों का कारण होते भये?' इस पर ब्रह्माजी अपना पश्चिम दिशावाला मुख खोलकर इस प्रकार वाक्सुधा बरसाते भये कि—हे अज्ञ देवताओ! वे कारण इतने अधिक हैं कि मेरे चारों मुख भी जो है सो उनका पूर्ण ज्ञान कराने में असमर्थ सिद्ध होते भये!

इस पर सब देवतागण ठुसर ठुसर अश्रु वर्षा करते हुए बोलते भये कि—हे वैष्णव! यदि आपके होते भये भी हम इसी प्रकार बुद्धू तथा बौड़म बने रहे तो आपको लक्षबार धिक्कार है। आपको उचित है कि हम सब को लेकर क्षीर सागर में डूब मरें।' इतना सुनते ही ब्रह्माजी अपने उत्तर दिशा वाले मुख से इस प्रकार बोलते भये कि—हे रोनी सूरत देवताओ, तुमने क्षीर सागर का नाम लैकरकेनी जो है सो मुझे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय का स्मरण कर दिया। अब तुम सीधे विष्णुजी के पास सरपट भागे चले जाओ। वे तुम्हें सब बातें बता देंगे!'

इतना सुनते ही सब देवतागण सितुवा बाँध कर तथा लुटिया-डोर लैकरकेनी क्षीर सागर की ओर प्रस्थान करते भये। क्षीर सागर के मध्य विष्णुजी के सम्मुख पहुँचकर और 'फालइन' हो कर कर-बद्ध इस प्रकार कहते भये कि—'हे ब्रह्मा के बाबू (अर्थात्-पिता)—हम जो हैं सो आपके मूर्ख पुत्र के भेजे हुए आपकी शरण में आवते भये। सो आप जो हैं सो

हमारी एक लघुसी शङ्का का समाधान करो।' विष्णु जी लक्ष्मीजी की गोद से अपने दोनों खुरारविन्द खींचकर इस प्रकार बोलते भये कि—'हे देवतागण, क्षीर सागर की तरङ्गों के थपेड़े खाते खाते मेरा 'माइण्ड' तो 'डल' पड़ गया है। यदि तुम्हें कुछ पूछ-ताछ करनी हो तो सीधे कैलाश पर्वत पर चले जाओ। वहाँ भोले बाबा भाँग छाने, अफीम का गोला जमाये, चाँडू चरस की दम लगाये बैठे होंगे। सो तुम उनसे जाय-करकेनी प्रश्न करना सो वही तुम्हारी लघु और दीर्घ दोनों शङ्काओं का सदैव के लिए अन्त कर देंगे।'

इतना सुनकर सब देवता-गण जो हैं सो कैलाश पर्वत की ओर धावते भये। वहाँ पहुँचकरकेनी उन्होंने देखा कि भोले बाबा भस्म रमाये बैठे हैं और पार्वती जी जो हैं सो भाँग घोट रही हैं। देखते ही देवता-गणों की बाछें खिल गईं कि अच्छे समय पर पहुँचे। आज तो एक एक चुल्लू हम भी पियेंगे, चाहे इधर का ब्रह्माण्ड उधर हो जाय। खैर देवता लोग बैठे। जब बूटी घुटकर प्रस्तुत होती भई तो भोले बाबा पहले सब देवताओं को थोड़ी थोड़ी देकर शेष स्वयम् डकार जाते भये। कुछ समय पश्चात् जब सुरूर चढ़ा तो इस भाँति मुख खोलते भये—कि हे सुरा पुत्रो (सुरा=देवी) आज तुम इस योगी के निवास-स्थान पर क्यों दौड़े आवते भये?' इस पर समस्त देवता-गण नशे में झूमते हुए बोले कि—हे त्रिनयन! हम लोग मृत्युलोक के समाचारपत्रों के अवगुणों का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से जो है सो आपका यह उजाड़खण्ड सुशोभित करते भये। पहले हम विष्णुनाभिज (ब्रह्मा) की सेवा में गये थे; परन्तु वे तो पूरे बछिया के ताऊ निकले। इसके पश्चात् हम लोग उनके पिता के पास गये; परन्तु उनका मस्तिष्क जो है सो क्षीरसागर की तरंगों के थपेड़ों से बिलकुल गोबर हो जावता भया, अतएव उन्होंने हमें आपके पास दौड़ा दिया। अब आप कृपा करके हमारे संशय को दूर कर दीजिए।' इस पर भोलेबाबा आधे नेत्र खोलकर बोले—अरे मूर्खो! विष्णु जी तुमको उल्लू बनावते भये। इसका रहस्य बताने वाला तो प्रत्येक समय उनकी खोपड़ी पर बैठा रहता है। मैं इसके सम्बन्ध में

कुछ नहीं बता सकता और सच बात तो यह है कि इस समय जो है सो नशा बड़े जोरों का है, इस समय हम कुछ नहीं बता सकते। तुम्हें उचित है कि पुनः विष्णु जी के पास चले जाओ; परन्तु उनसे प्रश्न न करके उनके शेषनाग से प्रश्न करना, वह तुम्हें सब बता देंगे। उनकी जीभ कतरनी की तरह चलती है। मृत्युलोक के समाचारपत्रों के अवगुण केवल वही बता सकते हैं।

यह सुनते ही देवता रोते झींकते पुनः क्षीरसागर की ओर बेरङ्ग लौटते भये और विष्णु भगवान के सन्मुख उपस्थित हो जावते भये। विष्णु जी उन्हें देखकर बोले--'क्यों पूछ आये ?' सुरगण बोले--आप चुप रहिये, आप से हम बात नहीं करना चाहते। आपने हमें मुफ़्त में इतनी दूर दौड़ाया और यह मुइई, जो आपके सिर पर डटा है, टुकर टुकर कर देखता रहा। इस दुष्ट ने यह भी न कहा कि उतनी दूर क्यों दौड़े जाओगे, हम बताये देते हैं।' यह सुनते ही विष्णु भगवान् हँसकरकेनी बोले--'हम जानते थे कि तुम यहाँ लौटकर आओगे। अच्छा शेषनागजी अब आप इन्हें बता दीजिए, बेचारे बड़े हैरान हो चुके हैं।

यह सुनते ही शेषनागजी अपने बीचोंबीच वाले मुख से इस प्रकार बोलते भये कि--'ये अल्पज्ञा! यद्यपि मैं तुम्हें समाचारपत्र के सब अवगुणों का परिचय नहीं दे सकता, यदि मेरे कुछ मुख और होते तो कदाचित् मैं ऐसा कर सकता; परन्तु इस अवस्था में मेरे लिए जो है सो ऐसा करना असम्भव होता भया। मृत्युलोक के अनेक पैसइहल, टकइहल चौपैसइहल समाचारपत्र अपनी अधिक बिक्री करने के निमित्त नित्य सनसनी-पूर्ण उकसान बोल उत्तेजित करनेवाले, भड़कानेवाले, लड़ानेवाले, एक दूसरे का शत्रु बनानेवाले, झूठे-सच्चे समाचार छाप छापकर जनता के मस्तिष्क को बिगाड़ देते भये। मूढ़ जनता इन टकालोलुप सम्पादकों की बातों में आयकरकेनी बिगड़ जाती भई और तबेले में लतिहाव करती भई! ये सम्पादक लोग तिल का ताड़ और कण का पहाड़ बनायकर केनी भोलीभाली जनता के सम्मुख रखते भये और अपने समाचार पत्र के निमित्त मसाला एकत्र करने के अभिप्राय से

जबरदस्ती अपने बुरे भले विचार जनता के मस्तिष्क में ठूँसकर जनता में विरोधभाव उत्पन्न करते भये। सो हे देवताओ! यदि तुम्हें अपने पापों का फल भोगने के निमित्त कभी मृत्युलोक में जन्म लेना पड़े तो इन समाचार-पत्रों से अलग रहना। यदि इनको पढ़ना भी तो इनके समाचारों पर विश्वास मत करना। अन्यथा परस्पर लड़ते-लड़ते नष्ट हो जाओगे। बस इससे अधिक और मैं कुछ नहीं बता सकता।' यह सुन सब देवता अपने अपने धाम को चले जाते भये।

सो हे सम्पादकजी महाराज--शेषनागजी की यह आज्ञा मैं भी शिरोधार्य करता भया और समाचारपत्रों का अधिक पढ़ना छोड़ देता भया। आशा है आप भी ऐसा ही करेंगे।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

: २६ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

इस बार होली के झंझों में अपनेराम के घर में खूब धमाचौकड़ी रही। बड़े बड़े कवि, लेखक तथा सम्पादक दौड़े आये और मुझ से प्रार्थना की कि-दुबेजी इस बार होली में आपके घर पर कुछ उत्सव होना चाहिए। पहले तो मैं ने टालमटूल की--पर जब देखा कि लोग लखनऊ के शोहदों तथा कभी कभी बाजार में दिखाई पड़ जानेवाले मुड़चिड़ों की तरह घर घेरे खड़े हैं, तो मुझे विवश होकर उनकी प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी। बात यह है कि बहुत से लोगों को व्याख्यान देने का रोग होता है। ये भले आदमी जिस दिन व्याख्यान न दें उस दिन गंधकबटी की आवश्यकता पड़े। पहले तो मेरे जी में आया कि इन लोगों को धतूरे का काढ़ा, जमालगोटाबटी तथा मिर्चों की धूनी देकर कह दूँ कि--आप लोग अपने घर को जाइये, आज आपको अजीर्ण नहीं होगा--और आज क्या, यदि सप्ताह में एक बार आप लोग मेरा यह नुसखा खा-पी डाला करें तो सदैव के लिए छुट्टी होजाय--फिर कभी व्याख्यान देने की आवश्यकता न पड़े--आप देना भी चाहें तो न देसकें; क्योंकि हलक का स्वर एकदम पाताल लोक में शेषनागजी की खोपड़ी पर जा पहुँचे; परन्तु फिर मैं ने सोचा कि ऐसा बढ़िया नुसखा बताने के पारितोषिक में कहीं सरकार दो चार बरस के लिए मुझे अपना मेहमान न बनाले; क्योंकि यदि ऐसा हो गया तो हराम की रोटियाँ खाते २ मेरा वज़न बेतहाशा बढ़ जायगा और यदि कहीं नुसखा अपना पूरा काम कर गया तो फिर क्या है सरकार बहादुर काष्ठ-विमान पर खड़ा करके सीधा स्वर्गलोक भेज देगी, और मैं लल्ला की महतारी को इस संसार में छोड़कर स्वर्ग-

लोक तो क्या नर्कलोक तक में नहीं जाना चाहता ? यही सब सोच समझकर मैं ने उन लोगों को अपना स्वर्गानन्ददायक नुसखा नहीं बताया।'

खैर साहब, सब लोग एकत्र होकर अपने अपने स्थान पर जा बैठे। मैं भी सभापति की कुर्सी पर जा बिराजा। लोगों ने कहा--आप कैसे सभापति बन गये ?

मैं ने कहा--'मैं गृहपति हूँ, इसलिए सभापति भी मैं ही बनूँगा। यदि आप लोग मुझे सभापति नहीं बनाना चाहते तो अपना बोरिया बँधना संभालिये।' इस पर सब लोग बोल उठे--'अच्छा अच्छा आपही सभापति बने रहिए। हम लोगों को व्याख्यान देने से मतलब, सभापति चाहे कोई हो। यदि सभापति न भी हो तब भी काम चल सकता है। संसार में दो वस्तुएँ दुर्लभ हैं एक तो वक्ता दूसरे श्रोता। सो होली-भवानी की कृपा से यहाँ दोनों उपस्थित हैं; इसलिए अब कुछ चिन्ता नहीं। यह जमाना तरक्की और उन्नति का है। लोग पुरानी बातें छोड़ते जाते हैं सो हम लोग सभापति बनाने का पुराना सड़ा-गला नियम तोड़ दें तो क्या हर्ज है।'

इस पर मैं बोला--यह तोड़-फोड़ आज ही से आरम्भ न कीजिए। अपने जीवन में पहले पहल तो मैं होली का सभापति बना हूँ तिसपर आप लोग कज्ञा से काटने की घात में है। अच्छा अब जिन महोदय के मन में व्याख्यान रस्सियाँ तुड़ा रहे हों वह मेरे पास आवें और अपना रोना रोवें।

यह सुनते ही सबसे पहले स्वतन्त्र के वृद्ध सम्पादक मंच पर आये और बोले--जनाबगण! लोग यह ख्याल करते होंगे कि मैं सठिया गया हूँ; मगर मैं हलफपूर्वक यह कह सकता हूँ कि मैं अभी सठियाया नहीं हूँ। यह लोगों का भ्रमअंगेज खयाल है। मेरे सठियाने में अभी बहुत कसर है। मेरे सफेद केश देखकर लोग समझते होंगे कि मैं जईफुलाय़ हूँ; मगर मैं कहता हूँ कि यद्यपि मेरा शरीर न्यूनजोर होगया है लेकिन मेरा दिमाग़ अभी बड़ा बलवर बना हुआ है। इसका एक छोटा सा सबूत

यह है कि मैंने हिन्दी-उर्दू के शब्दों का गंधर्व-निकाह करके ऐसे नये शब्द निकाले हैं कि जिनका दुसरिहा संसार माँ मिलब कठिन है।

इस पर लोग चिल्ला उठे--यहाँ मातृभाषा मत बोलिये। जो भाषा आपने आविष्कृत की है उसी में बातचीत कीजिए।

स्वतन्त्र के सम्पादक बोले--होली के दिन होने के कारण मेरा ध्यान अपने घर की ओर छलांग मार गया था इसलिए मातृभाषा के दो चार शब्द मेरे दहनारविन्द से निकल पड़े। इसके लिए मैं ख्वास्तगारेक्षमा हूँ। यदि आयन्दा ऐसी अयोग्य हरकत करूँ तो आप मेरी कर्णमाली कर दीजियेगा।

इस पर एक महाशय बोल उठे--बस बैठ जाइये-आपकी अबलक भाषा हम लोगों की समझ में नहीं आती।

स्वतन्त्र सम्पादक के बैठ जाने पर एक दूसरे सम्पादक उठने ही वाले थे कि एक साहब बोल उठे—सभापति महोदय, मेरा यह प्रस्ताव है कि पहले स्त्रीलिङ्ग पत्रों के सम्पादकों को बोलने का अवसर दिया जाय। इसका कारण यह है कि 'राधेश्याम' 'सीताराम' में पहले स्त्री वाचक शब्द आया है; इसलिए हरकाम में पहले स्त्रियों ही को आगे होना चाहिए।

यह सुनते ही 'चाँद' के सम्पादक उछल कर मंच पर आगये और बोले--सभापति महोदय तथा उपस्थित सज्जनगण! आपको यह सुन-कर आश्चर्य होगा कि जब से मैंने चाँद निकाला है तब से मैं बराबर कई सौ रुपये मासिक का घाटा सह रहा हूँ। शायद आप यह पूछें कि यह रुपये आते कहाँ से हैं? न मेरे पास कोई इलाका है, न कोई रिया-सत, फिर इतना रुपया आता किसके घर से है? इसके लिए मेरा यह कथन है कि मैंने एक पिशाच सिद्धकर रक्खा है वही मेरा घाटा पूरा करता है। मैं तो कहता हूं कि यदि प्रत्येक सम्पादक इसी प्रकार एक एक पिशाच सिद्ध करे तो दो चारसौ का घाटा तो कोई चीज नहीं है वे इससे ज्यादा सह सकते हैं। मैं स्वयम् इससे कहीं अधिक सह सकने

की क्षमता रखता हूँ। यदि प ' युक्ति आप लोग सीख लें तो आप लोगों के घर में चाहे भूनी भाँग न हो पर तो भी आप लोग हजारों का घाटा सह सकते हैं।

इस पर एक सज्जन बोल उठे—अच्छा पिशाच-पुरोहित जी बैठ जाइये !

इसके पश्चात् 'सरस्वती' के सम्पादक पंडित देवीदत्त शुक्ल मंच पर आये और बोले—हम तो दादा व्याख्यान साख्यान देब जानित नहीं है, हाँ लिखाय चहै जित्ता लेओ। मुदा लिखौ हम तबहीं सकित है जब पाव भर चूना औ आध सेर तमाखू हमरे लगे धरी होय।

शुक्ल जी इतना ही कह पाये थे कि लोग चिल्ला उठे—यह सरस्वती की कृपा है जो आप इतना भी बोल सकते हैं। हमारे काग तृप्त हो गए, बैठ जाइए, अधिक परिश्रम न कीजिए।

इसके पश्चात् 'मनोरमा' के सम्पादक उछलकर मंच पर आए और बोले—यह तो आपको ज्ञात ही होगा कि मैं भक्त-शिरोमणि हूँ। इसका प्रमाण मेरी रामायण तथा महाभारत दे रही हैं। लोग यह सोचते होंगे कि मैं 'मनोरमा' में अपनी रामायण के चित्र क्यों निकालता हूँ। इसका उत्तर केवल यही है कि मैं भक्त-शिरोमणि हूँ। क्या कहूँ मैं अपना फव्वारा घर ही पर भूल आया हूँ नहीं तो ऐसे छींटे उड़ाता कि आप लोग भाग खड़े होते। खैर अगले साल देखा जायगा।

इस पर एक महोदय बोले—खैर तो अगले साल ही आप अपने समस्त विचार प्रकट कीजिएगा—बैठ जाइये।

माधुरी के दोनों सम्पादक गैर-हाजिर थे। लोगों ने उनकी अनुपस्थिति का कारण पूछा। एक महाशय बोले 'माधुरी ने उन दोनों को त्याग दिया है और दो नये कर लिये हैं इसलिए वे नहीं आये।' इस पर एक साहब बोले—'तो उन नयों को आना चाहिए था।' उक्त महोदय ने उत्तर दिया—वे दोनों अभी नये होने के कारण कुछ झेंपते हैं इसलिए नहीं आये।

इसके पश्चात् 'वर्तमान' के 'रस्टीकेटेड' सम्पादक पं० रमाशंकर

अवस्थी उछलते हुए मंच पर आये और बोले—'म्हारे को तो डान्दू दीखे, त्हारे को क्या दीखे ?' एक सज्जन बोल उठे—'म्हारे को तो जांगलू दीखे ।' इस पर सब लोग हँस पड़े । अवस्थी जी झेंपकर बोले–आगड़-बिल्ला बागड़-बिल्ला सब बिल्लों में तागड़-बिल्ला । अच्छा अब मैं अपना व्याख्यान आरम्भ करता हूँ । इटा साउएडसा लिटिला एब्रप्टा टूआ सेया देटा कन्डीशना आफ़ा इण्डियाना इज़ा नाटा सेटिस्फेकट्राना एटआला भस्काना ।

इस पर एक सज्जन मुस्कराकर बोले—पश्तो में भीख न मांगिये, जो कुछ कहना हो साफ़ साफ़ कहिये ।

इस पर अवस्थीजी मुस्कराकर बोले—यहाँ सब मूर्ख बैठे हैं जो मेरे जैसे काबिल आदमी की बात नहीं समझते । अच्छी बात है इन सबकी खबर वर्तमान के मनोरंजन में लूँगा ।

एक महोदय बोले—जो कुछ कहना हो मुँह दर मुँह कहिये, वर्तमान का मनोरंजन किसी बनिये-बक्काल के लिये तोप होगा, हमारे लिये नहीं ।

अवस्थी जी बोले—मुँह दर मुँह बात करने का साहस मुझ में कहाँ, मैं तो केवच मनोरंजन में चुटकी लेता हूँ । यदि बात ठीक निकली तब तो मेरी चढ़ बनती है अन्यथा मज़ाक तो हुई है, क्यों कैसी कही ? अच्छा अब मुझे बायस्कोप देखने जाना है; इसलिए अब आप लोगों से क्षमा चाहता हूँ ।

एक महोदय ने पूछा—आजकल आप क्या किया करते हैं ?

अवस्थीजी बोले—आजकल मैं बेकार हूँ अतएव गोरखधन्धे बनाया करता हूँ । यदि आप में से किसी को गोरखधन्धा बनवाना हो तो मुझ से बनवाना लीजिएगा । मैं थोड़ी चित्रकारी भी जानता हूँ इसलिये सब प्रकार के गोरखधन्धे बना सकता हूँ । एक बार परीक्षा करके देखिये । अच्छा अब आज्ञा दीजिये ।

अवस्थी जी के विदा हो जाने के पश्चात् सैनिक के सम्पादक पालीवाल जी आये और बोले-जिस ज़माने में मैं एम० एल० सी० था

उन दिनों मैं खूब बोलता था; परन्तु आजकल अभ्यास कम है। इसके अतिरिक्त मैं हूँ सैनिक! मौखिक वाद-विवाद नहीं करता, मैं युद्ध करता हूँ, जिसका जी चाहे मुझ से लड़ ले।

मैंने कहा—नहीं साहब आप से कौन लड़ सकता है?

पालीवाल जी आस्तीन समेट कर बोले—'नहीं कुछ घमण्ड हो, तो आओ दो दो हाथ हो जाँय। यद्यपि मुझे कब्ज़ की शिकायत रहती है; परन्तु फिर भी मेरे शरीर में यथेष्ठ बल है।' मैंने उनकी ठोढ़ी में हाथ डालकर और पीठ ठोंककर कहा—मुझे मालूम है आप लड़ाके हैं, परंतु हमारे ऊपर दया रखिये हम आप से लड़ने योग्य नहीं हैं।

पालीवाल जी बड़बड़ाते हुए अपने स्थान पर जा बैठे।

इसके उपरान्त 'प्रताप' के सहायक सम्पादक पं० बालकृष्ण शर्म्मा 'नवीन' मंच पर आये और बोले—महोदय, इस समय याकूती का रंग छाया हुआ है, इस समय जो कहिये वह विषय उठाऊँ, कहिये महादेव का बयान सुनाऊं, कहिये पार्वती का, कहिये तो नीलकण्ठ की व्याख्या करूँ।

एक सज्जन ने प्रश्न किया—विद्यार्थी जी क्यों नहीं आये?

नवीन जी बोले—जब से विद्यार्थी जी एम० एल० सी० हो गये हैं तब से उनका सारा काम मुझी को करना पड़ता है। उनको इतना अवकाश ही नहीं कि कुछ करें। उनकी चिड़िया ऐसी जान ठहरी, अकेले क्या क्या करें। एक सर हज़ार सौदे। इसलिये उनके स्थान में मैं ही आया हूँ। आप मुझे कम मत समझिये। संसार में ऐसा कोई विषय नहीं है जिस पर मैं न बोल सकूँ। बोलना तो अलग रहा—मैं गा भी सकता हूँ, कविता भी सुना सकता हूँ। यद्यपि मेरी कविता आप लोगों की समझ में नहीं आयगी; क्योंकि उसके एक विशेष अर्थ होते हैं। उस अर्थ तक आपकी पहुँच नहीं हो सकती।'

मैंने कहा—जब हमारी वहाँ तक पहुँच हो ही नहीं सकती तब आपकी बातें सुनना व्यर्थ है—आप तशरीफ ले जाइये।

नवीनजी बिगड़कर बोले—तशरीफ ले जाइये के क्या अर्थ? ज़रा

तमीज़ से बात कीजिए, नहीं छुरा निकालता हूँ। मेरा छुरा पूरा मशीन-गन है। जब वह निकलता है तो मैदान साफ हो जाते हैं, खेत के खेत उजाड़ हो जाते हैं।

एक सज्जन बोले—तब तो छुरा क्या पूरा खुरपा है। आपके मारे खेतों में घास तक न बचती होगी।

नवीनजी बोले—हैं क्या कहा ?

मैंने नम्रतापूर्वक कहा—आप अपनी ओर देखिये, इन लोगों के मुँह न लगिये। और दूसरे आजकल होली के दिन हैं—हँसी मजाक़ होता ही है।

नवीनजी बोले—वल्ला खूब याद दिलाया; मुझे यह याद ही न था कि होली के दिन हैं। अच्छा अब जिसकी जो इच्छा हो कहे, मैं कुछ न बोलूँगा।

इसके बाद मतवाला के सम्पादक नशे में लड़खड़ाते हुए मञ्च पर आकर बोले—यारो-आज होली के कारण मेरा प्याला कुछ अधिक बढ़ गया है इसलिए तबियत कुछ पिलपिलाई हुई है अन्यथा ऐसी चक्की पीसता कि आप सबका कचूमर निकल जाता। चक्की पीसने में मैं सिद्ध-हस्त हूँ। देखिये मैंने एक कविता भी बनाई है-सुनिये—

केलकटा में है चल रही चक्की,
धुनकी पूरी है काम की पक्की।
पीसने में लगी नहीं कुछ देर,
उसने झटपट लगा दिया एक ढेर।
लोग ले जायँगे समेट समेट,
उसका आटा भरेगा कितने पेट।
तू बड़े दाम की है ए चक्की,
तू बड़े काम की है ए चक्की॥

ऐं मैं क्या कह रहा था—लो चाकलेट, घासलेट, आमलेट। ये सब चीजें भी मैं सप्लाई करता हूँ। जरा सुनियेगा—नंगे होकर, बोतल लेकर सी सी कर पीते प्याला—खून सभ्यता का जो करते प्रिय है उन

को 'मतवाला' ! हो हो हो ! ही ही ही ! हू हू हू !

सेठजी की यह दशा देखकर सब लोग जूतियाँ छोड़कर भाग खड़े हुए। केवल मैं रह गया। यह देखकर मुझे क्रोध आ गया। मैंने कहा–सुनिये जनाब, आप हैं मतवाले और हम हैं भँगेड़ी, आओ आज हम तुम निपट लें। मगर यार कहीं किसी मोहरी में न दबक जाना। तुम्हें यह तरकीब अच्छी मालूम है। जहाँ खतरा देखा मोहरी में मुँह डालकर पड़ रहे। जैसे शुतरमुर्ग़ खतरा देखकर रेगिस्तान में सिर घुसेड़ कर बैठ जाता है। ऐसा करोगे तो हम तुम से पार नहीं पा सकेंगे।

यह सुनते ही मतवाला जी दाँत निकालकर बोले—दुबेजी, हम तो जबानी जमा-खर्च रखते हैं, निपटने का दम नहीं है। जब कभी होश में आयँगे तब इस पर विचार करेंगे। अभी तो अपने राम के पैर ही क़ाबू में नहीं। इसके अतिरिक्त मतवालों का कहने का कोई बुरा मानता है ?

यह सुनकर मैंने कहा—यदि यह बात है तो जाओ—चाहे जो बको, तुम्हारे कहने का हम भी बुरा न मानेंगे।

यह सुनते ही 'मतवाला' जी झोंकते डोंकते चले गये।

सम्पादकजी—इस प्रकार हमारा होली का उत्सव समाप्त हुआ।

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: ३० :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की।

अपने राम की डायरी में सन् संवत्, तारीख मिती अथवा डेट, मास महीना तथा मंथ और वार-दिन या डे का पता नहीं मिलेगा। क्योंकि जब तक जिस घटना की तारीख, दिन और महीना संवत् याद रहता है तब तक वह डायरी में नहीं चढ़ाई जाती। जो घटना ज़बानी याद है उसे डायरी में चढ़ाने से क्या फ़ायदा? जब मिती तथा सन् संवत् इत्यादि मस्तिष्क की कोठरी खाली करके खिसक जाते हैं और घटना भी बोरिया-बँधना सँभालने लगती है तब घटना की दुम पकड़ कर उसे डायरी के कारागार में बंद करना पड़ता है। इसलिए अन्त में केवल घटना ही घटना कब्जे में रह जाती है। और सच पूछिए तो आवश्यकता भी घटना ही की है बीती हुई घटना पर चाहे जौन सा महीना तारीख और संवत् फिट कर लीजिए सब ठीक है। अपने राम जब स्कूल में पढ़ते थे तो इतिहास की घटनाओं का सन् संवत् कभी याद नहीं करते थे। इस बात में शिक्षकों से अपने राम का सदैव मतभेद रहता था। शिक्षक कहते थे कि नादिरशाह ने जिस सन् में हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की वह सन् याद रखना आवश्यक है। अपने राम कहते थे यह बिलकुल फ़ज़ूल बात है। नादिरशाह ने चढ़ाई की बस इतना याद रखना काफ़ी है। सन् याद रखने से फ़ायदा! भूतकाल का एक वर्ष हज़ार वर्षों के बराबर है? जो दिन बीत गया वह गया—उसे गये चाहे एक दिन समझो, चाहे सौ दिन, सब ठीक है। सन् संवत् तो भविष्य का याद रखने की आवश्यकता पड़ती है। जैसे—किसी ज्योतिषी ने भविष्य-वाणी की कि अमुक तारीख को भूकम्प आवेगा। तो वह

तारीख याद रखना आवश्यक है। क्योंकि यदि वह तारीख याद न रहेगी तो भूकंप से बचेंगे कैसे? इसका प्रमाण प्रत्यक्ष है। १५ जनवरी को जो भूकंप आया था उसके सम्बन्ध में ज्योतिषी लोग भविष्य-वाणी करना भूल गये थे। एकाध ने शायद भविष्य-वाणी की भी थी (यह उन्हीं का कथन है और कोई नहीं कहता) तो जनता तारीख भूल गई। उसका परिणाम यह हुआ कि हजारों आदमियों की जानें गईं। यदि तारीख याद होती तो लोग बचने का इन्तजाम कर लेते और जब लोग बचने का इन्तज़ाम कर लेते तो भूकंप की हिम्मत पस्त हो जाती और वह कभी आने का साहस न करता। आकर क्या अपनी किरकिरी कराता? लोग यह न कहते कि "इतना बड़ा भूकंप आया और एक चिड़िया तक न मरी! उसकी सारी साख मिट्टी में मिल जाती। देखिए न, ज्योतिषियों ने २३ जनवरी, २७ जनवरी तथा ३० जनवरी के लिए भविष्य-वाणी की थी कि इन दिनों में फिर कोई उपद्रव होगा। लोगों को ये तारीखें उसी प्रकार याद थीं जिस प्रकार आफिस में काम करने वालों तथा स्कूल के लड़कों को छुट्टी की तारीखें याद रहती हैं, इसलिए किसी उपद्रव को आने का साहस न हुआ, सब दबके पड़े रहे। उपद्रव आते हैं जानोमाल का नुकसान करने के लिए। यदि उनके आने से यह आवश्यक कार्य अर्थात् नुक़सान न हुआ तो उनके आने से फ़ायदा? खैर, अब मतलब की बात सुनिए।

एक बार अपने राम को संपादक बनने की धुन सवार हुई। क्योंकि बिना संपादक बने जिन्दगी का लुत्फ नहीं। दूसरे एक ज्योतिषी ने जन्मपत्र देख कर बताया था कि "आपका अफ़सरी का योग है, कुछ दिनों के लिए आप अफ्सर बन कर हुकुम चलावैंगे।" अपने राम ने बहुत सोचा कि आखिर अफसर कैसे बनेंगे? फौज, पुलिस तथा अन्य किसी सरकारी नौकरी अपने राम को पसंद नहीं; क्योंकि उसके मिलने की कोई उम्मीद नहीं। यदि उम्मीद हो तो पसंद करने का प्रयत्न भी किया जाय। तब फिर अफसर कैसे बनेंगे? फिलहाल तो लल्ला की महतारी के मारे अपने घर की अफसरी भी प्राप्त नहीं, बाहर का जिक्र

ही क्या है ! आखिर बहुत सोचा-विचारा, दिमाग पर जोर दिया। कई दिनों तक सिर में काहू-कद्दू के तेल की मालिश करवा कर सोचा। सेरों कच्ची मूँगफली चबा कर सोचा, क्योंकि कच्ची मूँगफली दिमाग को बादाम से अधिक लाभ पहुँचाती है, ऐसी भनक कभी कान में पड़ी थी। आखिर काहू-कद्दू और मूँगफली ने अपना काम कर ही तो डाला—झट यह ख्याल आया कि इस जमाने में संपादकी भी एक अफ़सरी ही है। संपादक का हुक्म लेखकों, उपसंपादकों प्रूफरीडरों, कम्पोजीटरों, प्रिंटरों तथा पत्र के ग्राहकों इत्यादि-इत्यादि सब पर चलता है। सच पूछिए तो इससे बढ़ कर कोई अफसरी ही नहीं है। बस यह खयाल आते ही अपने राम उछल पड़े और दुर्भाग्य से चारपाई पर बैठे होने के कारण भड़भड़ा कर नीचे आ रहे। लल्ला की महतारी ने घबरा कर पूछा "क्या हुआ ?" अपने राम ने झाड़ते-पोंछते हुए उत्तर दिया कि—"कुछ नहीं, जरा अफ़सर बनने का ख्याल आ गया।"

खैर साहब, संपादक बनना तो तय हो गया, परन्तु जिस पत्र का संपादक बनना चाहिए—उसका अस्तित्व नदारद ! अब क्या किया जाय ?

सोचते-सोचते यह निश्चय किया कि कोई पत्र अपने आप तो अपने राम को संपादक बनाने से रहा। अतएव हमी को चल फिर कर किसी पत्र के पास पहुँचना चाहिए। राज्य करने के लिए राजा लोग चढ़ाई करके राज्य को अपने अधिकार में करते हैं। इसी प्रकार अपने राम को भी चढ़ाई करके किसी पत्र पर अधिकार जमाना चाहिए। यह सोच कर एक पत्र के दफ्तर में आ पहुँचे। इस दफ्तर से एक दैनिक, एक साप्ताहिक और एक मासिक—तीन पत्र निकलते थे। आफिस के द्वार पर पहुँच कर चपरासी से पूछा—"इस दफ्तर के अन्दर कौन-कौन बैठता है ?" चपरासी अपने राम को सिर से पैर तक देख कर बोला—"क्यों क्या काम है ?"

"काम तुम्हें क्या बतावें ? कुछ एक दिन का काम थोड़ा ही है ?

अब तो रोज ही काम रहेगा।"

"दफ़्तर में आप किससे मिलना चाहते हैं?" चपरासी ने भौंहें सिकोड़ कर पूछा—

"जो हम से मिलने लायक हो।"

"मुझे क्या मालूम कि आप कौन हैं और किस लिए आए हैं?"

"हम संपादक हैं और संपादकी करने आये हैं।"

इतना सुनते ही चपरासी कुछ मुलायम पड़ कर बोला—"ओहो! आप बुलाए गए हैं या अपनी खुशी से आए हैं?"

"हम जहाँ जाते हैं अपनी इच्छा से ही जाते हैं। हमें बुला कौन भकुआ सकता है, हम किसी के नौकर हैं क्या?"

इतना सुनते ही चपरासी चार क़दम पीछे हट कर खड़ा हुआ और बोला—"अच्छा साहब, आप चाहे जैसे आए हों—मुझे क्या। आप अपना कार्ड दीजिए तो मैं जाकर मैनेजर साहब को दे दूँ।"

अपने राम के पास कार्ड था नहीं और न घर में था। बहुत पहले एक बार कार्ड छपवाये थे परन्तु वे धरे ही धरे गल गए—कभी काम ही न पड़ा—तब से कार्ड छपवाये ही नहीं। हमने चपरासी से कहा—"कार्ड-वार्ड अपने पास है नहीं। जबानी जाकर कह दो कि विजयानन्द दुबे जी आए हैं।"

चपरासी "विजयानन्द दुबे जी" रटता हुआ चला गया। थोड़ी देर बाद आकर बोला—"चलिए बुलाते हैं।"

चपरासी के साथ मैनेजर साहब के पास पहुँचे। उन्होंने देखते ही मुसकरा कर कहा "आइए दुबेजी। कहिए आज कैसे कृपा की?" अपने राम बोले—"हम आपके यहाँ संपादकी करने आए हैं।"

"अच्छा! तब तो हमारा अहोभाग्य है।"

"बेशक! अहोभाग्य न होता तो हम स्वयं चल कर न आते।"

"मैनेजर कुछ क्षण सोच कर बोला—"कहिए किस विभाग की संपादकी कीजिएगा, साप्ताहिक की, दैनिक की अथवा मासिक की?" अपने राम बोले—"संपादकी तो दैनिक की ही अच्छी है जिसमें रोज-

रोज संपादकी करने को मिलती है।"

मैनेजर ने कहा—"परन्तु मेरी सलाह यह है कि पहले आप साप्ताहिक से आरंभ करें। दैनिक में परिश्रम भी अधिक पड़ेगा और दैनिक के काम के योग्य अभी आपको अनुभव भी न होगा।"

"अजी अनुभव की बात आप क्या कहते हैं। संपादकी भी कोई बजाजी है जो अनुभव की आवश्यकता हो। संपादकी ही तो एक ऐसा पेशा है जिसमें अनुभव की ज़रा भी आवश्यकता नहीं पड़ती। जहाँ थोड़ा लिखना-पढ़ना आया और दो-चार लेख किसी पत्र में निकल गये, बस संपादक बनने के क़ाबिल हो गये।"

मैनेजर साहब हँसकर बोले—"वाह; यह आपने अच्छी कही। संपादकी के लिए बड़े अनुभव की आवश्यकता है। पश्चिमी देशों में तो यह कला बाक़ायदा सीखनी पड़ती है। कई वर्षों तक सीखने के पश्चात् तब संपादन-कला का ज्ञान होता है।"

अपने राम बिगड़ कर बोले—"पश्चिमी देशों की बात हिन्दुस्तान पर लागू नहीं होती। हिन्दुस्तानियों में तो यह गुण ईश्वरप्रदत्त है। हिन्दुस्तानी पैदायशी सम्पादक होते हैं। उन्हें यह कला सीखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।"

मैनेजर साहब घबरा कर बोले—"अच्छा साहब जैसा आप कहें—वैसा ही सही। अच्छा तो आप साप्ताहिक में कुछ दिन काम कीजिए। कुछ दिन बाद जब आप भली-भाँति काम करना सीख जायँगे तो तनख्वाह निश्चित कर दी जायगी।"

"काम सीख जायंगे!" बस यही बात मत कहिए। तनख्वाह चाहे मत दीजिए। हम सिखा सकते हैं—सीख तो सात जन्म में भी नहीं सकते। रही तनख्वाह सो उसकी चिन्ता अपने राम को नहीं है। क्योंकि अपने राम को एडीटरी से प्रेम हो गया है, मुहब्बत हो गई है। अपना तो यह सिद्धान्त है कि—

"एडिटरी भी वल्लाह क्या चीज है!
एडिटरी में तनख्वाह क्या चीज है!"

मैनेजर ने कहा—"अच्छी बात है जैसी आपकी इच्छा !"

खैर साहब अपने राम जब साप्ताहिक विभाग में पहुँचे तो मालूम हुआ कि उसमें एक प्रधान सम्पादक तथा दो उपसंपादक पहले ही से डटे हुए हैं। यह बात अपने राम को बहुत अखरी। क्योंकि अपने राम तो निष्कंटक राज्य चाहते थे। खैर यह सोच कर सब्र किया कि कुछ दिनों पश्चात् इन सब को घता बता कर अपने राम अकेले ही संपादक बन जायंगे।

बड़े सम्पादक जी ने एक अंग्रेजी का समाचार पत्र देकर कहा—"इसमें जिन-जिन समाचारों पर निशान लगे हैं उनका अनुवाद हिन्दी में कर डालिए।"

इतना सुनते ही अपने राम के मिजाज का पारा खून खौलाने वाली डिग्री तक पहुँच कर रुक गया। अतएव अपने राम बिगड़ कर बोले—"देखिये जनाब ! हम सम्पादकी करने आए है, अनुवाद-सनुवाद हम से न होगा। यह काम कंपोजीटरों का है, सम्पादकों का नहीं।"

सम्पादक जी चकित होकर बोले—"क्या कहा ! कंपोजीटरों का है ?"

"जी ! आप इतना ही सुन कर चौंक पड़े। यदि मैं प्रधान संपादक होता तो अंग्रेजी पढ़े लिखे कंपोजीटर रखता जो अंग्रेजी समाचार पत्र सामने रख कर उसे हिन्दी में कंपोज करते, उससे समय की कितनी बचत होती ?"

"परन्तु ऐसे कंपोजीटर मिलते कहाँ ?"

"अजी मिलने की न कहिये। जब परमात्मा मिल सकता है तो सब कुछ मिल सकता है। ढूंढने वाला चाहिए।"

"अच्छा अनुवाद न कीजिये। एसैंबली की कार्यवाही पढ़ कर उस का सारांश अपनी टिप्पणी-सहित लिख डालिये।"

"यह भी आप एक व्यर्थ काम बता रहे हैं। असैम्बली में जनता के हित की कौन सी बात होती है ? उसके लिखने से फ़ायदा ?"

"हित की न सही अहित की ही सही, पर असैम्बली की कार्यवाही

तो जनता के सामने रखनी ही पड़ेगी।"

"अहित की बात से अपने राम कोसों दूर रहते हैं। अपने राम तो जनता के हित के साथी हैं। मनहूस खबरें छाप कर जनता का दिल दुखाना अपने राम पाप समझते हैं।"

"अच्छा सेलेक्ट कमेटी की कार्यवाही लिख डालिये। सेलेक्ट कमेटी के सामने मि० चर्चिल ने जो गवाही दी है उसे लिख डालिये।"

"यह भी व्यर्थ है। सारा देश यह कह रहा है कि सेलेक्ट कमेटी से भारत को कोई लाभ न होगा। तब उसको लिखने से लाभ? चर्चिल साहब ने जो कुछ कहा है उसको पढ़ कर जनता का दिल दुखेगा—सो वह भी छापना बेकार है।"

"सम्पादक जी झल्ला कर बोले—"तब आप आये किस लिये हैं—कुर्सी तोड़ने के लिए?"

"कुर्सी तोड़ने के लिये आप ही क्या कम हैं? इस काम के लिए हमारी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। हमारा काम देखना हो तो अपने उप-सम्पादकों को बुलाइए, क्लर्कों को बुलाइए, कंपोजीटरों को बुलाइए। हम उन सबको एक एक डाँट दिलावें और कह दें कि अब दुबेजी भी संपादकीय विभाग में आ गये हैं इसलिये ठीक तरह से काम करना, नहीं तो बुरी ठहरेगी। एकाध को चपतिया भी दें जिससे दूसरों के हवास ठिकाने हो जायें।"

"वाह साहब, अकारण ही डाँट बताएं! यह आप अच्छी पट्टी पढ़ा रहे हैं!"

"कभी कभी अकारण डाँट बताते रहने से सब चौकन्ने रहते हैं। यह गुर की बात है।"

"गुर की बात अपने ही पास रखिए और यह बताइए कि आप कुछ लिखें-पढ़ेंगे भी या यों ही समय गँवाएंगे!

"लिखने पढ़ने की मुसीबत स्कूल में बहुत उठा चुके हैं। हमने तो सोचा था कि उससे पिण्ड छूट गया परन्तु.........।"

"अरे साहब, स्कूल की लिखाई-पढ़ाई और है, यहाँ की और।

अच्छा यह चिट्ठी-पत्री लीजिए और इनको पढ़कर इनका सारांश लिख डालिए—जो संशोधन के योग्य हों उनका केवल संशोधन कर डालिए।"

"चौक के नुक्कड़ पर एक कातिब बैठता है, वह दो पैसे में लिफ़ाफा और एक पैसे में पोस्टकार्ड लिखता है। उससे लिखा मँगाइए। सम्पादकों का यह काम नहीं है कि चिट्ठी लिखें। सम्पादक लोग लेख लिखते हैं।"

"अच्छा लेख ही लिखिए। पर ईश्वर के लिए कुछ कीजिए तो।"

"देखिए साहब, आपके मिजाज में जल्दबाजी बहुत है। अभी हम नये आदमी हैं। चार-छः दिन यहाँ का रंग-ढंग देख लें, तब कुछ लिखेंगे।"

"अच्छा कम से कम इतना तो कीजिए कि स्थानीय समाचार ही लिख डालिए।"

"मुझे सख्त अफसोस है कि इतनी देर में आपने एक भी काम की बात नहीं कही। स्थानीय समाचार शहर वाले सब जानते ही हैं—और बाहर वालों को यहां के समाचारों से कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती। इस लिए स्थानीय समाचार देना बिलकुल फजूल बात है।"

सम्पादक जी झल्लाकर बोले—"अच्छा तो प्रेस का चक्कर लगा आइए—देखिये, सब लोग ठीक तरह से काम कर रहे हैं या नहीं।"

इतना सुनते ही अपने राम की बाछें खिल गईं। यह काम है। इसी के लिये तो हम सम्पादक बने हैं। अपने राम झट उठे और चारों तरफ का चक्कर लगा आये। किसी को डाँटा, किसी को समझाया, किसी को फटकारा, किसी को घूर कर देखा। अपने राम के एक ही चक्कर से सब तरफ सन्नाटा हो गया।

दूसरे दिन मैनेजर साहब ने बुलाकर कहा—"आप दैनिक विभाग में काम कीजिये। साप्ताहिक विभाग में काफी आदमी हैं।"

अपने राम बोले—"बड़ी अच्छी बात है। हम तो यह चाहते ही हैं कि रोज़ सम्पादन को मिले।"

दैनिक विभाग में पहुँचे तो वहाँ भी एक प्रधान सम्पादक और कई उपसम्पादक मौजूद थे। बड़े सम्पादकजी कुछ तार सामने रख कर बोले—"इन तारों को पढ़ कर इनका सारांश हिन्दी में लिख डालिए।"

अपने राम बहुत खिन्न हुए सोचने लगे—क्या इन्हीं ऊलजलूल कामों को ये लोग सम्पादन करना समझते हैं। संपादक से कहा—"यदि सच पूछिये तो तारों की शोभा अंग्रेजी में ही है,—हिन्दी में रूपांतरित हो जाने पर इनकी सब शान मिट्टी में मिल जायगी।"

सम्पादक जी बोले—"यह नई बात सुनने में आई।"

अपने राम ने कहा–"अब हम आये हैं। दो-चार नई बातें रोज सुनने में आयेंगीं।"

सम्पादकजी ने पूछा—"आप मनोरंजन लिख सकते हैं?"

अपने राम अकड़ कर बोले—"हाँ, यह तो अपने राम का पालतू विषय है।"

"अच्छी बात है—तो बस आप मनोरंजन ही लिखिए। पर ऐसा लिखिएगा कि जिसको पढ़कर मुझे भी हँसी आजाय।"

"मैं ऐसा मनोरंजन लिख सकता हूँ कि जिसको पढ़कर गधे तक हँसने लगें—आप तो कोई चीज नहीं है। परन्तु आपको कभी हँसी आती भी है?"

"क्यों? इसका क्या मतलब?"

"आपका चेहरा तो यह कहता है कि हँसी कभी आपके मुहल्ले से भी न निकलती होगी। पितृपक्ष का जन्म तो नहीं है आपका?"

"जी नहीं, मैं हँसता हूँ और खूब हँसता हूं।"

"बिला बजह?"

इस पर सम्पादकजी ने इस प्रकार घूर देखा मानों खा जायंगे। मैंने बात का प्रसंग बदलने के लिए कहा—"मनोरंजन लिखवाना है तो शहर के सेठ-साहूकारों पर, म्यूनिसिपेलिटी के मेम्बरों पर लिखवाइए तो आनन्द भी आवे। ऐसी फब्तियाँ जमाऊं कि याद करें।"

"इससे क्या होगा?"

"सारे शहर पर आपकी धाक जम जायगी। बहुत से बोदे दिल के आप से डरने लगेंगे। ब्याह-बारातों तथा पार्टियों में सबसे पहिले आप बुलाए जायँगे। लोग आपकी खुशामद इस डर से करते रहेंगे कि कहीं हमारे सम्बन्ध में कोई ऐंडी-बेंडी बात न लिख दें। असली सम्पादन तो यही है। मुख्य लेख, टिप्पणियाँ और समाचार तो सभी लिख लेते हैं। इनमें कौन खूबी है ?" सम्पादकजी ने अपने राम की बात का कोई उत्तर न दिया।

तीसरे दिन मैनेजर साहब ने बुलाकर कहा—"आप मासिक विभाग में काम कीजिए। दैनिक में आपकी आवश्यकता नहीं है।"

अतएव अपने राम मासिक विभाग में गए। वहाँ भी कई संपादक डटे थे। अपने राम के दुर्भाग्य से कोई विभाग ऐसा न मिला जहाँ अपने राम "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति" बन कर रहते।

मासिक विभाग के बड़े संपादक ने पूछा—"आप पुस्तकों की समालोचना लिख सकते हैं ?" अपने राम बोले—"ऐसी समालोचना लिखूँ कि लेखक सन्यास लेकर संसार छोड़ दें और प्रकाशक पुस्तकों का काम छोड़ कर परचूनी की दूकान कर लें।"

संपादकजी ने कुछ पुस्तकें दीं। अपने राम ने पुस्तकें देखीं। उनमें एक पुस्तक ऐसी थी जिसे देखकर अपने राम प्रसन्नता के मारे उछल पड़े। वह पुस्तक एक ऐसे लेखक की लिखी हुई थी जिस पर अपने राम हृदय से नाराज थे। क्यों नाराज़ थे। ? इसका पता अपने राम को भी नहीं था।

संपादक जी अपने राम की प्रसन्नता देखकर बोले—'क्यों क्या बात है ?'

"एक लेखक है। बहुत दिनों बाद फँसा है। अब कहाँ जायगा ? ऐसी आलोचना लिखूँ कि भागते रास्ता न मिले।

संपादकजी ने पुस्तक देखकर कहा—ये बड़े अच्छे लेखक हैं। यह पुस्तक भी अच्छी लिखी है। ठीक-ठीक समालोचना कीजिएगा।"

"आप इस झगड़े में मत पड़िए। हम संपादक हैं। हमारे जो मन में आएगा सो लिखेंगे। अच्छे को खराब और खराब को अच्छा बनाना

संपादकों के बाएँ हाथ का खेल है सो हम संपादक हैं। हम जो लिखेंगे वही मान्य होगा। इन महाशय पर दो-चार लेख भी लिखूँगा। इनको साहित्यक्षेत्र से भगाकर छोड़ूँगा। संपादन इसी का नाम है और सब राम का नाम है।"

"मै ऐसा बेवक़ूफ़ नहीं हूँ कि आपकी ऊटपटाँग बातें छपने दूँ।"

"अगर आप ऐसा करेंगे तो बड़ी ग़लती करेंगे। यदि आप मुझे स्वेच्छापूर्वक लिखने दें तो केवल आपका पत्र ही सर्व-श्रेष्ठ रह जाय और सब को रद्दी कर डालूँ। अन्य पत्रों की जिन बातों को लोग गुण समझते हैं उन्हीं को ऐब प्रमाणित कर के दिखाऊँ। जिसे लोग सर्व-श्रेष्ठता समझते हैं उसे सर्वनिकृष्टता बना कर छोड़ूं। जिस साहित्यिक के पीछे पड़ जाऊं उसे मिट्टी में मिल जाना पड़े। संपादन इसी का नाम हैं और सब राम का नाम है।"

संपादकजी ने पुस्तकें समेट लीं और बोले–"आप कष्ट मत कीजिए हम समालोचना लिख लेंगे।"

"अच्छी बात है। परन्तु इतना मैं अवश्य कहूँगा कि आप संपादन कला में बिलकुल ही कोरे हैं।"

"आपकी बला से।"

चौथे दिन ऑफ़िस जाने की तैयारी कर ही रहे थे कि चपरासी ने एक चिट्ठी लाकर दी। उसमें मैनेजर साहब की ओर से लिखा हुआ था—"प्रिय दुबेजी, इस समय आपके योग्य कोई स्थान हमारे यहाँ खाली नहीं हैं। स्थान रिक्त होने पर आप को सूचना दी जाएगी।"

इस प्रकार अपने राम तीन दिन की अफ़सरी के बाद निकाल बाहर किए गए। यह अपने राम का दुर्भाग्य है। अन्यथा हमारे जैसे अनेक संपादन कलाविद अच्छे-अच्छे पत्रों के संपादक हैं।

ख़ैर अपने राम की जन्मपत्री की विधि तो मिल गई—इतना ही संतोष हैं।

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: ३१ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

एक जगह पर कुछ अफीमी थे। गपशप हो रही थी। इसी समय दूसरा अफीमी आ पहुँचा। वह आते ही बोला–"यारो गजब होगया, सितम होगया !" इतना सुनते ही सब अफीमी चौकन्ने होगये। एक साहब झल्लाकर बोले—"अजी कुछ बताओगे भी। क्या हुआ ! क्या आसमान फट पड़ा, या जलजला आगया। मुफ्त में नशा खराब करते हो—अभी अभी नशा जमाया है।"

वह बोला—"और थोड़े दिनों नशा जमा लो, फिर बैठे जम्हुवाइया लेना।"

"क्यों ! क्यों ! जम्हुवाइयां क्यों लेंगे ?"

"जब अफीम मिलेगी ही नहीं तब और क्या करोगे।"

"अजीब विभाग के आदमी हैं आप ! खामखाह खून खुश्क कर रहे हो। खुलकर क्यों नहीं कहते कि क्या मामला है।"

"तो सुनिए ! मगर पहले दिल को दोनों हाथों से थाम लीजिए, कलेजे पर पत्थर रख लीजिए।"

"भई जरा ठहरना। मुझे यहां से चला जाने दो।"

"क्यों ? क्यों ? आप क्यों चले ?"

"मेरा दिल निहायत कमजोर है। तुमने कोई ऐसी-वैसी मनहूस बात बकदी तो मैं तो बे मौत मर जाऊँगा।"

"इतना कहकर वह उठ खड़े हुए। लोगों ने कहा—"म्यां बैठी बात तो सुन लो।"

"यहाँ बैठने वाले पर लानत है। नजाने यह मियां मेरे दुश्मन क्यों

बने हुए हैं। जब मैं जरा चैन से बैठता हूँ तभी यह हजरत एक न एक ऐसा शिगूफा छोड़ते हैं कि सारा मजा किरकिरा हो जाता है। मैं समझ गया। न कोई बात है न चीत, सिर्फ मेरे परेशान करने के लिए कोई चुटकुला सोच कर आये है।"

"मुझे आपसे दुश्मनी है! क्यों कुफ्र बकते हो!"

"दुश्मनी न होती तो खामखाह मजा क्यों बिगाड़ते। जब मैं यहाँ से चला जाता तभी कुछ कहते।"

"अच्छा जनाब! न कहेंगे। बस? अब तो खुश हैं आप?"

"लीजिए और सुनिए! पहले तो दिल में धड़कन पैदा करदी अब कहते है न कहेंगे।"

"बड़ी मुश्किल की बात है—न यों चैन न वों चैन!"

"खैर अब कह ही डाली! हमने भी कलेजे पर पत्थर रख लिया। तुम्हारे आगे सिर झुका दिया, चाहे काट लो चाहे छोड़ दो।"

दूसरे लोग भी बोल उठे—"कह डालो न! क्यों तड़फा रहे हो।"

"तो सुनिए। सरकार अफीम का बिकना बंद कर रही है।"

वह महाशय जो जाने के लिए खड़े हुए थे धमक कर बैठ गये। लोगों ने समझा गिर पड़े। "या अली" कहकर दो-तीन व्यक्तियों ने उन्हें संभाला। एक ने पूछा-"क्यों मियां चोट तो नहीं लगी?"

"कत्ल कर दिया कमबख्त ने! जल्लाद है जल्लाद। इसके दिल में जरा भी रहम नहीं। म्यां खुदा के वास्ते ऐसा मजाक तो न किया करो। किसी की जान गई आपकी अदा ठहरी।"—

"मजाक नहीं भाई साहब! सच बात है।"

"उफ़! जालिम जख्मी पर वार करता है। क्या बिलकुल ही मार डालेगा।"

एक दूसरे महोदय बोले—"सरकार अफीम की बिक्री बंद कर रही है। इससे तो मालूम होता है कि मुफ़्त बांटेगी।"

जो साहब धमकार बैठ गये थे, वह बोले-तुम्हारे मुंह में घी-शकर। तुमने यह फिकरा कहकर जान बचाली। वरना इस मरदूद ने तो मार

ही डाला था।"

"मुफ्त-बुफ़्त नहीं बांटेगी। सूरत देखने तक को तरस जाओगे। सब नशे बंद कर दिये जायेंगे।"

"कत्ले आम होगा—नादिरशाही होगी, यह क्यों नहीं कहते। तुम कोई अच्छी खबर थोड़े ही लाओगे। तुम्हारी तो कोई सुबह सूरत देख ले तो उसे दिन-भर रोटी नसीब न हो-ऐसे फरमायशी मनहूस हो।

"होश की दवा करो। यह खबर अखबारों में निकली है। मैं अभी अभी एक अखबार में पढ़कर आया हूँ।"

अखबार वाले तो एक नम्बर के गप्पी होते हैं। अखबार की खबर पर जो यकीन करे वह बेवक़ूफ !"

"खैर आप यक़ीन करें या न करें। मैंने जो कुछ पढ़ा वह कह दिया।"

लेकिन अब जबकि यह खबर अपने कानों से सुनली है तो यकीन न भी करें तो उससे क्या फायदा? दिल में चोर तो घुस ही गया। वाह म्यां आज तुमने खुदा जाने कब का बदला लिया। अच्छा जो कुछ पढ़ा हो वह सब सुना तो जाओ। "अब तो मरे धरे ही हैं।"

"गांधीजी की तजवीज है कि सब नशे की चीजों का बिकना बंद कर दिया जाय। उनकी तजवीज के माफिक जहां जहां कांग्रेसी सरकार है वहाँ वहाँ शराब, अफीम, चरस वगैरा वगैरा का बिकना बंद कर दिया जायगा।"

"यह गांधीजी को सूझी क्या? बुढ़ापे में हम लोगों की बददुआ लेते हैं। दुनिया का कायदा है कि बुढ़ापे में लोग खैर-खैरात करते हैं जिसमें आकबत सुधरे। गांधीजी को मुनासिब था कि अफीम सस्ती करवा देते, जिससे हम लोग उन्हें अफीम पीपीकर दुआ देते और उनकी आकबत सुधरती। यह न करके वह उलटे हम लोगों की बददुआ ले रहे हैं। हमारा दिल दुखेगा तो हम बददुआ जरूर देंगे।"

"अजी हम क्या देंगे—वह कमबख्त खुदबखुद निकलेगी।"

"खबर बहुत बुरी है। खुदा करे यह खबर गलत निकले।"

"गलत निकले तो मैं पांच पैसे ही की रेवड़ियाँ बांटू।"

"लेकिन मान लीजिए कि सही निकली।"

"हैं! आखिर आपका मंशा क्या है? क्या आजही आत्मा कर देना चाहते हो। म्यां दस-बीस बरस के मेहमान और हैं—साठ बरस की उम्र होगई है-ज्यादा से ज्यादा अस्सी तक जियेंगे, मुमकिन है सत्तर-पिछत्तर में ही रवाना हो जांय। सुबह के चिराग हैं-हमारा क्या भरोसा!"

"लेकिन भाइयो, खबर थी कि कांग्रेसी सरकार के वक्त में इंसाफ होगा, सबका ख्याल रक्खा जायगा। यहाँ तो बिस्मिल्लाह ही गलत हो रही है।"

"और सबसे पहले हमीं लोगों पर बार हुआ यह अंधेर तो देखिए! हालांकि सब से ज्यादा हमदर्दी के काबिल हमीं लोग हैं।"

"बेशक! न किसी के लेने में न देने में।"

"सुबह-शाम अफीम घोलो और पड़े अल्लाह अल्लाह किया करते हैं।"

"इसीलिए तो कहता हूँ कि हमारी बद्दुआ किसी को न लेना चाहिए। दो बरस की बात है। मेरा भानजा छत पर पतंग उड़ा रहा था। मैं कई बार मना कर चुका था, मगर वह कमबख्त नहीं माना। उस रोज उसे पतंग उड़ाते देखकर मुझे गुस्सा आगया। मेरे मुंह से निकला—"तू नहीं मानता, किसी रोज मरेगा।" बस जनाब मैंने जिस रोज कहा उसके दूसरे ही दिन वह छत पर से गिर पड़ा और घंटे भर बाद मर गया। उस दिन से मैंने कसम खाली कि अब किसी को बद्दुआ न दूंगा।"

"यह बात बिलकुल सच है कि अफीमी की दुआ या बद्दुआ बहुत जल्द असर करती है।"

"असर क्यों न करे। अफीमी वह चीज हज्म करता है जिसे कोई हज्म ही नहीं कर सकता—जहर कातिल को हजम करता है। फिर भला उसकी दुआ-बद्दुआ कैसे खाली जा सकती है।"

"मेरी समझ में शायद गांधीजी को यह बात मालूम नहीं-कमसे कम उन्हें इत्तला तो देही देनी चाहिए कि अगर खुदानखास्ता हमारी जबान से आपके हक में बद्दुआ निकल गई तो वह पूरी होकर रहेगी। फिर वह जानें उनका काम !"

"यह ठीक है ! कल किसी मुंशी से एक खत लिखवाकर भिजवादो। गांधीजी का पता मालूम है ?"

"वह सब मालूम हो जावेगा।"

"खैर, पहले खत तो भेजो। देखो क्या जबाब देते हैं। फिर देखा जायगा अभी जरा हुक्का तो भरवाओ।

भवदीय—

बिजयानन्द (दुबे जी)

: ३२ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

गत वर्ष की बात है अपनेराम के एक परिचित लेखक बहुत दिनों के पश्चात् मिले। अपनेराम ने उनसे प्रश्न किया—"कहिए! बहुत दिनों के बाद दर्शन हुए। कहीं बाहर चले गये थे क्या ?"

"हाँ दुबेजी ! बम्बई गया था।"

"बम्बई ! घूमने-घामने ?"

"नहीं कार्यवश गया था। लेकिन जो अनुभव हुआ—क्या बताऊं।

"यदि कोई खास अनुभव हुआ हो तो बता दीजिए।"

"अनुभव तो खास ही है।"

"तब तो अवश्य बताइए।"

"मैं गया सिनेमा की नौकरी करने। सोचा था कि किसी फिल्म बनाने वाली कम्पनी में लेखक की हैसियत से नौकरी कर लूँगा।"

"लेकिन नौकरी नहीं मिली" अपने राम बोल उठे।

"नहीं सो बात नहीं। नौकरी मिली ! एक फिल्म बनानेवाली कम्पनी में ठाठ से नौकरी मिली।"

"तो फिर ?"

"सुनिए ! यहाँ से जब गया तो बड़े बड़े मंसूबे बाँधकर गया था कि ऐसे कथानक लिखूँगा, फिल्म-संसार में एक क्रान्ति कर दूँगा। यह करूँगा। खैर साहब ! बम्बई पहुँचकर अपने एक मित्र के यहाँ डेरा डाला और उनसे अपने आने का अभिप्राय कहा। मित्र महोदय बोले—"बात यह है कि यहाँ के फिल्मनिर्माता बहुत मामूली तनख्वाह देते हैं।" मैंने कहा "मुझे एक बार स्थानमात्र मिल जाना चाहिए फिर तो

मैं अपनी तनख्वाह स्वयं बढ़वा लूँगा।' मुझे यह खब्त था कि जहां मैंने दो एक बढ़िया कथानक दिये बस डायरेक्टर महोदय मुझ पर फिदा हो जायेंगे। जहाँ फिदा हुए फिर क्या है जो मागूँगा वह झक मार के देंगे।

मित्र बिचारे ने अपने प्रभाव से मूवीटोन के डायरेक्टर को राजी किया। डायरेक्टर महोदय ने मिलने का समय दिया। मित्र महोदय मुझे साथ लेकर पहुँचे। डायरेक्टरों के दिमाग के क्या कहने। अपने सामने संसार को तुच्छ समझते हैं।

मूवीटोन के डायरेक्टर २६, २७ वर्ष के थे "क्लीनशेव" अपटूडेट फैशन में बैठे थे। एक मोटा सिगार मुँह में दबा था। मैं जब उनके सामने पहुँचा तो उन्होंने मुझे इस दृष्टि से देखा मानों मैं मनुष्य नहीं कोई पशु हूँ। उसी क्षण मुझे यह शंका उत्पन्न हो गई कि इनके साथ रहकर कार्य करना मेरे जैसे आत्माभिमानी के लिए बड़ा कष्टसाध्य होगा। मैंने उन्हें प्रणाम किया तो उन्होंने योंही नाममात्र के लिए सिर हिला दिया। उन्होंने छूटते ही मुझसे प्रश्न किया—'आप लेखक हैं?'

मैंने कहा—'जी हाँ!'

'क्या लिखते हैं?'

जी में तो आया कि कहदूं–'आप जैसे अहमकों की जीवनी।' परंतु अपनी इच्छा को दबाकर मैंने उत्तर दिया–'नाटक, उपन्यास, कहानी।'

'अच्छा नाटक आपने लिखे हैं?'

'जी हां! दो तीन नाटक छपे हैं। एक, एक नाटक-कम्पनी द्वारा खेला जाता है।'

'कौन नाटक-कम्पनी?'

मैंने नाम बता दिया। डायरेक्टर महोदय ने मुंह बनाया। कुछ क्षणों तक मौन रहने के पश्चात् बोले—'आप अपना छपा हुआ नाटक लाये हैं।'

'जी हाँ! यह मौजूद है।'

यह कहकर मैंने उन्हें एक नाटक दिया। डायरेक्टर महोदय ने उसे

उलट-पलटकर, बीच बीच में थोड़ा पढ़कर, देखा। तत्पश्चात् उसे मेज पर पटककर बोले, 'भाषा आपकी कुछ मुश्किल है।'

मैंने कहा—'भाषा आप जैसी चाहेंगे वैसी ही लिख दूंगा। इस नाटक की भाषा साहित्यिक है।'

डायरेक्टर महोदय बोले-'यहाँ साहित्यिक भाषा नहीं चलेगी। हम लोग बिजीनेसमैन हैं, साहित्यसेवी नहीं हैं। हम तो ऐसी जबान चाहते हैं जिसे सब लोग आसानी से समझ लें।

मै बोला—'वैसी ही लिखूंगा।'

'हमारे यहाँ इस समय जो मुन्शी है वह बहुत अच्छी जबान लिखता है।

'मुंशी है' 'जबान लिखता है' लेखक के प्रति यह सम्मानसूचक वाक्य सुनकर मैं तो सुन्न रह गया। सोचा-यही दशा हमारी भी होगी। खैर जो भी हो, अब तो ओखली में सिर देही दिया।

डायरेक्टर साहब ने मेज पर रक्खी हुई घंटी बजाई। एक चपरासी आया। उससे वह बोले 'जरा मुन्शी को भेजना।'

थोड़ी देर में मुंशी आया। एक बूढ़े मियाँ बहुत घबराये हुए से आये। आते ही उन्होंने डायरेक्टर साहब को बहुत ही झुककर सलाम किया। डायरेक्टर साहब उसकी ओर संकेत करके बोले-'यही हमारे मुंशी हैं।'

मैंने सोचा—गनीमत है कि मुंशी के मुंह पर 'मुंशी है' नहीं कहा।

डायरेक्टर साहब मुंशी से बोले—'आप भी रायटर हैं।'

मुंशी ने मेरी ओर ध्यानपूर्वक देखकर कहा-'अच्छा!' परन्तु उसका मुख कुछ इस प्रकार सिकुड़ा कि मुझे तुरन्त यह ख्याल हुआ कि मुंशी जी को मेरा पदार्पण रुचिकर नहीं है।

मुंशीजी खड़े ही रहे। डायरेक्टर ने उनसे बैठने को भी न कहा।

मुंशीजी बोले-कोई और काम है हुजूर!

डायरेक्टर साहब बोले-'बस जाइए। आज आप क्या कर रहे हैं?'

'मिस-की उनका पार्ट पढ़ा रहा हूँ।

'लेकिन जरा तलफ्फुज (उच्चारण) पर ध्यान रखिएगा।

'वह तो खास बात है हुजूर! तलफ्फुज ठीक न हुआ तो फिर फायदा ही क्या।'

मुंशीजी के जाने के बाद डायरेक्टर साहब बोले-'बहुत अच्छा रायटर है यह। नस्रोनज्म (गद्य-पद्य) दोनों लिखता है और गीत बनाने में तो एक नम्बर है।'

यह सब देख सुन कर अपना तो उत्साह दम तोड़ने लगा। 'बड़ा अच्छा रायटर, गद्य-पद्य का उस्ताद, गानों का मास्टर और उसकी यह कद्र!'

डायरेक्टर साहब बोले—'इसे हम सौ रुपये माहवार देते हैं।'

बम्बई का रहन-सहन और सौ रुपये मासिक!

डायरेक्टर साहब पुनः बोले–आपको हम फिलहाल सत्तर रुपए देंगे, बाद को आपका काम देखकर तनख्वाह बढ़ा दी जायगी। चार-पाँच महीने आप योंही काम कीजिए। इसके बाद अगर कम्पनी आपको रखना चाहेगी तो आपको ३ बरस का एग्रीमेण्ट फार्म भरना होगा। अगर यह आपको मन्जूर हो तो कल दस बजे से आ जाइएगा। अच्छा सलाम! माफ कीजिएगा, मैं इस समय बहुत बिजी हूँ। हम दोनों उठ खड़े हुए और घर की ओर चले। रास्ते में मित्र महोदय मुझे चिन्ता-मग्न देखकर बोले–"क्यों भई! क्या इरादे हैं?'

मैंने कहा–"क्या बताऊँ। मेरे तो सारे हौसले पस्त हो गये। न जाने क्या सोचता था और क्या निकला।'

मित्र महोदय हँसकर बोले—'आप क्या सोचते थे?'

मैंने उत्तर दिया–'मैं तो सोचता था कि लेखक की यहां बड़ी कद्र होगी, बड़ा मान होगा, लेकिन यहाँ तो लेखक और कुली में कोई ज्यादा फर्क नहीं दिखाई पड़ा।'

'बात तो ऐसी ही है। लेकिन यह बताओ कि इरादे क्या हैं।'

मैंने कहा—'नौकरी यहाँ एक बार अवश्य करूँगा। केवल यहाँ के वातावरण का अनुभव प्राप्त करने के लिए। केवल चार-पाँच महीने

करूँगा, जहाँ कम्पनी एग्रीमेण्ट की बात उठावेगी बस रुखसत।'

'ठीक है। तो कल से आना।'

'हाँ आऊँगा।'

दूसरे दिन मैं ठीक दस बजे स्टूडियो पहुँच गया। डायरेक्टर साहब के रूम में जाने लगा तो चपरासी ने रोका। बोला—"ठहरिए, पहले मैं पूछ आऊँ। क्या कहूँ?"

मैंने अपना नाम बता दिया। चपरासी कुछ क्षणों पश्चात् लौट कर बोला—'आइए!', मैं उसके साथ हो लिया। परन्तु वह मुझे डायरेक्टर के कमरे में न ले जाकर दूसरी ओर ले चला। मैं समझा कि जहाँ मेरा काम है वहाँ ले रहा है।

चपरासी के साथ साथ मैं एक बड़े कमरे में पहुँचा, वहाँ स्कूल का क्लास सा लगा हुआ था। एक सिरे पर वही मुन्शीजी बैठे थे, उनके सामने कुर्सियों की कतारें थीं, जिन पर बहुत से लोग हाथ में एक एक कागज लिए बैठे थे। उनमें से एक अपना कागज पढ़ रहा था मुन्शीजी सुन रहे थे।

चपरासी ने एक कुर्सी घसीटकर मुंशीजी के निकट कर दी और मुझे उस पर बैठने का संकेत करके और मुन्शीजी के कान में कुछ कह कर वह चला गया। मैं चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया। पढ़ने वाला पढ़ रहा था—'मुझे तुम्हारे रुपयों की कोई जरूरत नहीं।'

मुंशीजी बोले—जरूरत नहीं, जरूरत कहो।

वह व्यक्ति झट अपना कान पकड़कर बोला-'हाँ मुन्शीजी जरूरत, जरूरत, जरूरत।'

उसने इसी प्रकार अपना सब सबक सुनाया। जहाँ कहीं उच्चारण की गलती होती थी मुन्शीजी टोक देते थे। मैंने देखा कि जितने गुज-राती थे सब ह्रस्व-दीर्घ में गलती करते थे। मूल्य को मुल्य, चतुर को चातुर। बाद में मैं भी यही काम करने लगा तो मैं उनका ह्रस्व-दीर्घ ठीक कराते कराते परेशान हो जाता था। खैर साहब बारह बजे तक यह स्वांग चलता रहा। इसके पश्चात् बाहर घंटी बजी। घंटी बजते ही

सब की छुट्टी हो गई। सब लोग भड़भड़ाकर बाहर चले गये। मैं और मुन्शीजी बैठे रहे। मुन्शीजी ने मेरी ओर देखकर कहा—'पण्डितजी, आप यहाँ कहाँ आ फँसे ?'

मैं चकराया ! आ फँसने का क्या मतलब !

मैंने पूछा—'क्यों, इसमें आ फँसने की कौनसी बात है।'

यहाँ का हिसाब बड़ा बेढब है। काम बहुत ज्यादा, तनख्वाह कम, वह भी वक्त से नहीं मिलती। मेरी तीन महीने की तनख्वाह चढ़ी है। इसी तरह सबकी तनख्वाहें चढ़ी हैं। मैं तो यहाँ से इस्तीफा देने वाला हूँ।'

मैंने कहा—'खैर अब तो फँस ही गया हूँ अब एक-महीने तो रहना ही पड़ेगा।'

'आप क्यों फँसे हैं। आपने कुछ एग्रीमेण्ट-फार्म तो भरा ही नहीं।'

'नहीं सो तो नहीं भरा।'

'फिर फँसना क्या। आप जब चाहें तब घर बैठ रह सकते हैं। मुश्किल तो हमारी है। हमारा एग्रीमेण्ट खत्म होने में दो महीने और रह गए हैं। अब दूसरा एग्रीमेण्ट तो हम करेंगे नहीं।'

हम दोनों इसी प्रकार की बातें कर रहे थे कि इसी समय एक युवती बड़ी चपलतापूर्वक कमरे के अन्दर आई। युवती साधारणतया सुन्दर थी परन्तु बनी-ठनी आवश्यकता से अधिक थी। उसने आते ही बिगड़ कर कहा—मुन्शीजी आप गाना लिखते हैं या झख मारते हैं। मेरे गाने के बोल आपने इतने भद्दे लिखे हैं, इतने खराब लिखे है कि मैं क्या कहूँ। उनको बदल दीजिए। मैंने मि······(डायरेक्टर) से पूछ लिया है। वह भी कहते थे कि मुझे भी पसन्द नहीं।'

मुन्शी जी बोले—'बोल तो अच्छे थे—और मैं बदल दूँगा।'

इसके पश्चात् मेरी ओर ध्यान-पूर्वक देखते हुए चली गई। मुन्शी जी बोले—यह मिस—है। यही यहाँ की हीरोइन है।

मैंने सोचा—'यह कमबख्त तो लेखकों को चपतियाती होगी। वाकई बुरे-बुरे फँसे।'

मैंने कहा—'यह बड़ी गुस्ताखी से बात करती है।'

मुन्शीजी बोले—'आठसौ रुपये महीना तनख्वाह पाती है। मालिकों और डायरेक्टरों साहब की मुँह-लगी है। हम लोगों को तो तिनके के बराबर समझती है।'

'यहाँ आने के पहले यह कौन थी?'

'खुदा जाने! लेकिन लोग कहते हैं कि इधर यू० पी० के किसी छोटे से शहर में मामूली रंडी थी। अब यहाँ आकर मिस बन गई। अब तो दिमाग ही नहीं मिलते।'

इसी समय एक और व्यक्ति आया और मुन्शी जी से बोला—'मुंशी जी, मैंने सुना है कि मेरा पार्ट मुझ से छीनकर रतीलाल को दिया गया है।'

मुन्शी जी बोले—'हाँ दिया गया है।'

'यह तो बड़ी नाइन्साफी है। यहाँ आदमी की कद्र तो है ही नहीं काम करने में जी क्या लगे। यहाँ खुशामदियों की कद्र है। मुझसे खुशामद होती नहीं। रतीलाल की बात तो आप जानते हैं कि जो काम मैं कर सकता हूँ वह रतीलाल का बाप भी नही कर सकता। मगर किस से कहें! मैं तो यहाँ नौकरी नहीं करूँगा। जहाँ कद्र नहीं वहाँ रहने से फायदा!' यह कहकर वह चला गया।

मैंने मुंशीजी से पूछा—'क्या वाकई यहाँ आदमी की कद्र नहीं है।'

'हाँ कद्र भी नहीं है। दूसरे यह बात है कि हरएक एक्टर अपने को एक्टिंग का उस्ताद समझता है। अब आप आए हैं खुद देख लीजिएगा। हर शख्स चाहता है कि उसे बढ़िया पार्ट मिले।'

''यह नौकरी छोड़ने को कह रहा है।'

'कौन! यह तो धक्के देकर निकाले जांय तब भी न जांय। कहने को सब यही कहते हैं कि गोया बोरिया-बँधना कसे जाने को तैयार बैठे हैं, पर जाता-वाता कोई नहीं।'

'उस दिन हमने तो कोई काम किया नहीं, बैठे यही तमाशा देखते रहे। तीन दिन बाद हमें एक 'सीन' लिखने को दिया गया। डायरेक्टर

साहब सीन देखकर बोले—'यहाँ के लिए एक गाना भी होना चाहिए। गाने के बोल बनाइए।'

मैंने कहा—'यहाँ तो गाना ठीक नहीं रहेगा, यहां गाने का कोई प्रसंग ही नहीं।'

डायरेक्टर साहब घूरकर बोले—'ठीक बेठीक देखने का काम आप का नहीं है, वह हमारा काम है। हम जैसा कहें वैसा आपको करना पड़ेगा।'

सच मानिए दुबेजी, मेरा जी तो चाहा कि कह दूं 'तुम्हें किस उल्लू के पट्ठे ने डायरेक्टर बनाया है।' परन्तु खून का घूंट पीकर रह गया। महीना-दो महीना रहकर वहां का अनुभव प्राप्त करना था यही स्वार्थ था। इसलिए मजबूरन कहना पड़ा, 'अच्छा गाना बना दूंगा।'

इस प्रकार मैंने वहाँ तीन महीने काटे! परन्तु इससे अधिक वहाँ रहना मेरे लिए असम्भव हो गया। तीन महीने बाद मैंने नौकरी छोड़ दी।'

'और क्या क्या अनुभव हुए?

न जाने कितनी बातें हैं, एक हो तो बताऊँ। लेकिन मेरे अनुभव का सार यह है कि वहाँ लेखक एक बढ़ई से ज्यादा हैसियत नहीं रखता, डायरेक्टर साहब का आर्डर निकला 'एक कुर्सी बनाओ।' बढ़ईराम कुर्सी बना रहे हैं। कुर्सी बनाकर ले गए तो डायरेक्टर साहब फर्माते हैं 'यहाँ आपने फूल नहीं बनाया-फूल बनाइए। यह हिस्सा जरा मोटा है इसे पतला कीजिए।' बस ठीक यही दशा लेखक की है। लेखक की कलम डायरेक्टर साहब के अधिकार में रहती है, जिधर वह चाहते हैं उधर ही चलती है। वहाँ का वातावरण इतना दूषित है कि क्या कहूँ! एक्टरों में परस्पर ईर्षा-द्वेष इतना अधिक है कि प्रत्येक एक दूसरे की बुराई करता रहता है और अपने को सबसे अच्छा प्रमाणित करने का प्रयत्न करता है। वहाँ की बातचीत भी यही--अमुक ने अपना पार्ट खराब कर दिया, अमुक निकाल देने योग्य है, अमुक से डायरेक्टर साहब नाराज रहते हैं। असक का अमुक मिस से गुप्त सम्बन्ध है, अमुक

को अमुक मिस ने फटकार बताई, अमुक ने अमुक मिस को छेड़ दिया तो उस पर झाड़ पड़ी। कोई बड़े फख्र से कहता--कल जब मैंने अमुक सीन में मिस को उठाया तो मैंने चुपके से उसकी""मसल दीं। सुनने वाले पूछते---'तो कुछ बोली ?' वह अकड़ कर उत्तर देता--'बोलेगी साली क्या ! हमसे बोल सकती है ? हूँह ! आपने भी अच्छी कही।'

कोई कहता--'मेरा एक सीन मिस-के साथ है। जब वह डूबने लगती है तो मैं उसे जाकर निकालता हूँ। बस मजा है। पानी के अन्दर का मामला होगा।'

दूसरा कहता--'डायरेक्टर से शिकायत कर देगी ! यह याद रखना।'

वह कहता---'अजी उसकी ऐसी-तैसी। और शिकायत करेगी तो इसका क्या सबूत है कि हमने जानबूझकर ऐसा किया। अरे भई जब किसी को पानी में से डूबते हुए निकालोगे तो यह देखकर तो पकड़ोगे नहीं कि हाथ कहाँ पड़ता है। धोखे में हाथ पड़ गया होगा--बस झगड़ा खतम ! ऐसी छुई-मुई हैं तो फिल्म में क्या झक मारने आई--अपने घर बैठतीं। यह ! ऐक्टरों को कोई कुछ सकता है ?'

कोई अपने उद्गार प्रगट करता--'क्या बताऊँ, मेरा कोई सीन मिस--के साथ नहीं पड़ता। एक दफा पड़ जाय तो मजा आ जाय।'

'बस रातदिन इसी प्रकार की बातचीत। इसीलिए मैं भाग खड़ा हुआ।'

अपने राम बोले--'आपने बड़ा अच्छा किया। ऐसा स्थान आत्माभिमानी साहित्यिकों के लिए नहीं है।

वह बोले--'बिल्कुल नहीं।'

भवदीय,

---विजयानन्द (दुबे जी)

: ३३ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

बहुत दिनों की बात है, २० वर्ष पहले की। अपने राम की मित्र मण्डली में एक वकील साहब थे। यह अपने राम के सहपाठी रह चुके थे। बड़े हँसोड़ बड़े मनोरंजन-प्रेमी। उनका सन्ध्या का समय प्रायः हँसी-मजाक में ही बीतता था। उनके पड़ौसी थे एक पारसी सज्जन ! यह पारसी सज्जन साक्षात हास्य का रूप ही थे। इनमें एक विशेषता यह थी कि इनकी बातों पर लोग कहकहे लगाया करते थे परन्तु यह स्वयम् इतने गम्भीर बने रहते थे कि क्या मजाल जो चेहरे पर जरा फर्क भी आ जाय।

वकील साहब के निवास-स्थान पर सन्ध्या समय मित्र-मण्डली जमा होती थी। एक दिन नियमानुसार सन्ध्या समय सब लोग डटे थे। वकील साहब का मकान एक अहाता सा था, जिसमें कुछ अन्य किरायेदार भी रहते थे। इन किरायेदारों में एक सफाई के इन्सपेक्टर (Sanitary Inspector) भी रहते थे। एक दिन पहले उन्होंने एक नया नौकर रखा था जो देहात से नया ही आया था। नौकर का नाम था महावीर। महावीर ने इन्सपेक्टर साहब की बाइसिकल बाहर निकाली और उसमें से पम्प निकाल कर हम लोगों की ओर आया और बोला—'यह पम्प कैसे खुलता है जरा बता दीजिये, इन्सपेक्टर साहब ने कहा है गाड़ी में हवा भर देओ—बड़ी जल्दी मचाते हैं।' पारसी सज्जन ईजूभाई ने पूछा—'इन्सपेक्टर साहब ने नहीं बताया ?'

'बताया था पर हम भूल गये, बता देओ बाबू ?' ईजूभाई ने पम्प कप रबड़ निकालकर लगा दिया। महावीर जाकर हवा भरने लगा। जैसे

ही उसने आरम्भ किया ईजूभाई बोले–'अबे यह क्या करता है !'

'हवा भरता हूँ।' महावीर ने उत्तर दिया। ईजूभाई ने उससे कहा–'यहाँ आ।'

वह आया। ईजूभाइ बोले—'अबे गधे बासी हवा में ताजी हवा मिलाता है क्या ट्यूब का सत्यानास मारेगा।'

'बासी हवा !' महावीर ने अकचकाकर पूछा।

'हाँ! उसमें कल परसों की हवा भरी है वह बासी हो गई कि नहीं ?'

'हाँ सो तो हो गई।'

'तो वह हवा भरी रहेगी तो नुकसान करेगी या नहीं ?'

'अब यह हम क्या जानें बाबू! तो बताओ क्या करें।

'बासी हवा निकाल दे और फिर से ताजी हवा भर।'

'हवा कैसे निकालूँ ?'

ईजूभाई ने युक्ति बता दी।

हम लोगों का हँसी के मारे बुरा हाल था, परन्तु ईजूभाई बिल्कुल गम्भीर थे इसलिए हम लोगों को भी हँसी बलात् रोकनी पड़ी। महावीर ने पहियों के दोनों वालट्यूब निकाल कर हवा निकाल दी। इसके पश्चात् पुनः वाल्व लगाकर हवा भरने लगा। इसी समय इन्सपेक्टर साहब सजधज कर निकले और महावीर को हवा भरते देख बोले 'अबे अभी तक हवा नहीं भरी !' यह कहकर उन्होंने टायर टटोला तो बिलकुल पोला। वह बोले—''यह मामला क्या है !' दूसरा टायर दबाया तो वह भी वैसा ही। वह कड़ककर बोले—'अबे इन दोनों की हवा कैसे निकल गई !'

महावीर बोला—'सरकार बासी हवा निकाल दी है अब ताजी भरता हूँ।'

इन्सपेक्टर साहब ने उसका कान पकड़कर उसे खड़ा कर दिया और कहा—'यह बासी-ताजी हवा तुझे किसने बताई ?

महावीर के कुछ बोलने के पूर्व ही ईजूभाई बोल उठे—'इन्सपेक्टर साहब, यह बेचारा देहात से नया आया है। देहात में यह ताजी हवा खाता रहा है इसे ताजी ही हवा पसन्द है, बासी हवा इसे पसन्द नहीं है।"

महावीर बोला—'सरकार इन्हीं ईजूभाई ने कहा कि बासी हवा निकाल कर ताजी भरो। मैं क्या जानूँ कैसा क्या होता है।'

इन्सपेक्टर साहब किञ्चित मुस्कराकर बोले—"वाह ईजूभाई! आपको इसी समय मजाक करना था। मुझे एक जरूरी काम से जाना था अब बताइये खामखाह देर होगी।"

यह कहकर उन्होंने महावीर के हाथ से पम्प छीन लिया और स्वयं हवा भरने में जुट गये।

ईजूभाई बोले—"आपको ऐसे नौकर कहाँ मिल जाते हैं? यह किसी दिन किसी के कहने में बाइसिकल का ही सफाया कर देगा। मैंने दिल्लगी नहीं की बल्कि आपको खबरदार किया है—आपको मेरा एहसानमन्द होना चाहिये।"

इस पर बड़ा कहकहा लगा। इन्सपेक्टर साहब बेचारे झेंपकर रह गये।

इस प्रकार नित्य ही कोई न कोई लुत्फ रहता था। और उनको लोग मिल भी जाते थे। प्रायः नित्य ही कोई न कोई ऐसा आ जाता था जिस पर वे लोग अपनी परिहास रूपी छुरी को पैनी किया करते थे। जिस दिन कोई न आता उस दिन बड़ी उदासी रहती थी और लोग कहते थे "आज अल्लाहमियाँ ने कोई नहीं भेजा। आज तो भाई फाका ही रहा।

एक दिन एक व्यक्ति जो रेलवे में नौकर थे, परन्तु आदमियों की छंटनी (Reduction) में निकाल बाहर किये गये थे ;वकील साहब से सलाह लेने आये कि रेलवे के विरुद्ध कोई कानूनी कार्रवाई की जा सकती है या नहीं। वकील साहब ने कुछ देर तक उनसे गम्भीरता-पूर्वक बातें करके कहा—"इसमें कोई कानूनी कार्रवाई नहीं हो सकती।"

ईजूभाई बोल उठे—"अजी कानूनी कार्रवाई को गोली मारिये।

आप अपनी कारंवाई क्यों नहीं करते ?"

"क्या करूँ ? आपही बताइये।"

"दिल्ली से कलकत्ते तक बड़ी लाइन है, छोटी तो है नहीं।"

"जी नहीं !"

"तो आप एक कम्पनी बनाकर कलकत्ते तक छोटी लाइन लेजाइये और किराया कम रखिए। फिर देखिए। यदि ई. आई. आर. का दीवाला न हो जाय तो कहियेगा।"

अपनेराम को ईजूभाई की बात सुनकर कुछ आश्चर्य हुआ कि ऐसी बात कोई बेवक़ूफ़ आदमी भी शायद ही न समझे। रेलवे कर्मचारी तो ऐसी बात सुनकर तुरन्त ही समझ जायगा कि उल्लू बना रहे हैं। परंतु यह देखकर अपनेराम को और भी अधिक आश्चर्य हुआ कि उस रेलवे कर्मचारी ने गंभीरतापूर्वक कहा—"यह तो आपकी तरकीब ठीक है, परन्तु मैं एक गरीब आदमी हूँ कम्पनी कैसे बनाऊँ ?"

"अजी यह बात कितनी है। अगर आप ईमानदारी से काम करने कहें तो हम लोग कम्पनी बनाने की कोशिश करें। क्यों वकील साहब आपका क्या ख्याल है ?"

अब वकील साहब ने अपना व्यावसायिक जामा उतार दिया और ईजूभाई का तात्पर्य समझकर वह बोले—"हाँ, कम्पनी तो बन सकती है।"

"आप मदद करने कहें तो मैं कोशिश करूँ। हम लोगों को भी फायदा होगा और यह बेचारे भी रोजगार से लग जायेंगे। आप रेलवे के सब काम तो भलीभाँति जानते होंगे।" ईजूभाई ने रेलवे कर्मचारी से पूछा।

वह बोले—"सब जानता हूँ साहब ! यह बड़ी बड़ी तनख्वाह पाने वाले अफसर करते क्या हैं खाली दस्तखत करते रहते हैं। काम तो सब हमीं लोग करते हैं।"

"आप ट्राफिक सुपरिन्टन्डेन्ट का काम तो कर सकेंगे ?" ईजूभाई ने पूछा।

"बहुत अच्छी तरह ! बात यह है कि हम लोगों को ऊँची पोस्ट

पर जाने का मौका ही नहीं मिलता, नहीं तो हम लोग दिखादें कि काम कैसे किया जाता है।"

तो बस ठीक है आपको ट्रेफिक सुपरिन्टेन्डेन्ट की पोस्ट दी जायगी।'

उस व्यक्ति की आँखें चमकने लगीं। साठ रुपए मासिक पर वह एक छोटे से देहाती स्टेशन मास्टर थे। ट्रेफिक सुपरिन्टेन्डेन्ट की पोस्ट पाने की आशा में उनका चेहरा खिल गया। लगे बढ़बढ़कर बातें मारने। उन्होंने हम लोगों को यह विश्वास दिलाने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी कि टी. एस. की जगह के लिए हम लोगों को उनसे बढ़कर दूसरा आदमी संसार में नहीं मिलेगा। ईजूभाई और वकील साहब ने भी उन्हें विश्वास दिला दिया कि बहुत शीघ्र ही कम्पनी का निर्माण आरम्भ कर दिया जायगा। वह दूसरे दिन आने का वादा करके चले गये। उनके जाते ही कहकहा लगा। वकील साहब बोले—"एक स्टेशन-मास्टर भी इतना बेवक़ूफ हो सकता है यह यदि कोई मुझसे कहता तो मुझे विश्वास न होता।"

वह बेचारा चार पांच रोज दौड़ा। जब आता तब यही प्रश्न करता "क्यों साहब, कम्पनी की बाबत आपने क्या किया?' उससे कह दिया जाता कि "लोगों से मिल रहे हैं—कुछ लोग रुपया लगाने को तैयार भी हो गये हैं।"

अन्त में एक दिन निश्चय हुआ कि अब बेचारे को अधिक तंग करने की आवश्यकता नहीं है। अतएव उनसे ईजूभाई ने कहा—"बात यह है कि लोग रुपया लगाने को तैयार हैं, पर इस बात की गारन्टी है कि काम फेल नहीं होगा। ऐसी गारंटी उन्हें कौन दे? आप दे सकते हैं?'

"वह सोचकर बोले—"काम फेल तो नहीं होगा, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ; पर गारंटी नहीं दे सकता।"

"यही तो कठिनता है, ऐसी गारंटी कोई नहीं दे सकता।" वकील साहब बोले। बस उसी दिन मामला समाप्त हो गया। उस दिन से फिर वह नहीं आये।

ऐसे ही एक अन्य महाशय जो कोई रोजगार करना चाहते थे, आ

फँसे। पारसी लोग बड़े व्यवसायकुशल समझे जाते हैं अतएव उन्होंने ईजूभाई से सलाह पूछी। ईजूभाई ने सोचकर कहा—"आजकल एक रोजगार तो चलना कठिन है। हाँ दो तीन रोजगार मिलाकर किये जाँय तो अच्छा काम चल सकता है।"

"किस प्रकार?" उन्होंने पूछा।

"आप कितना रुपया लगाना चाहते हैं पहले यह बताइये?"

"यही कोई आठ-दस हजार।"

ईजूभाई कुछ देर सोचकर बोले—"मेरी समझ से तो आप आटा-मुएडनवाशिंग कम्पनी खोलिये। इसमें आपको तीन काम करने होंगे। एक तो आप हाथ का पिसा आटा लोगों को सप्लाई करें। शहर में मिलों का या मशीनों का आटा मिलता है जो उतना अच्छा नहीं होता जितना कि हाथ का पिसा होता है। यह तो आप मानते हैं?"

"हाँ यह तो ठीक है कि हाथ का पिसा आटा बड़ा पौष्टिक और स्वादिष्ट होता है।"

"और आप हजामत बनाने का काम करें।"

"क्या हेअर कटिंग सेलून खोले जाँय?" वकील साहब ने पूछा।

"अजी नहीं। हज्जाम नौकर रक्खे जांय जो कम्पनी की ओर से लोगों के घर पर जाकर हजामत बना आया करें। इस तरह लोग घर बैठे ही हजामत बनवा सकेंगे सेलून में जाने की जरूरत न रहेगी। देखिए आप कुछ ऐसे लोग अपने गाहक बना लें जो आपको माहवारी फीस दिया करें और आपके नाई महीने में चार बार या छै बार जो जितनी बार हजामत बनवाना चाहे, उनके घर पर जाकर हजामत बना आया करें। इसी तरह आपके आदमी लोगों के यहाँ से मैले कपड़े ले आया करें और धोकर उन्हें गाहकों के पास पहुँचा दिया करें।"

वकील साहब गम्भीरतापूर्वक सिर हिलाकर बोले "काम तो अच्छा है।"

वह महाशय जो रोजगार की तलाश में थे सोचकर बोले "काम तो वाकई बुरा नहीं है।"

"कोशिश की जाय तो बड़े फायदे का काम है जनाब! देखिये! आपको कुछ पिसनहारियाँ नौकर रखनी पड़ेंगी, कुछ हज्जाम और कुछ धोबिनें।"

"धोबिनें या धोबी?" वकील साहब ने पूछा।

"न! न! धोबियों को तो आप भूलकर न रखियेगा। धोबी लोग शराब पीकर आपस में लड़ेंगे या पड़े रहेंगे। आपके काम का हर्ज होगा। आप सिर्फ धोबिनें रखियेगा। हाँ और आपको कुछ हाथ की चक्कियाँ रखनी पड़ेंगी और कपड़े धोने के लिये एक हौज बनवाना पड़ेगा।"

हौज कितना बड़ा हो?"

"यही कोई साठ-सत्तर फीट लम्बा, तीस-चालीस फीट चौड़ा और बीस-पचीस फीट गहरा।"

अपनेराम ने कठिनता से हँसी रोककर पूछा "हौज छोटा तो न रहेगा?"

"जब ज्यादा काम चलेगा तो उसे बढ़ा लिया जावेगा, फिलहाल इतना काफी है।"

वह महाशय भी इस योजना पर विचार करते हुए चल गये। उसके पश्चात् भी दो-एक बार आये और उसी विषय पर बातें करते रहे। परन्तु उसके बाद नहीं आये। शायद उन्हें मालूम हो गया कि यह दिल्लगी-बाजों की मण्डली है।

इसी प्रकार तरह तरह के स्वांग होते रहते थे। एक दिन एक खोमचेवाला आया। उसके पास मिठाई थी और कचालू इत्यादि थे। अपनी मण्डली ने उसे बुलाया। कुछ चीजें लेने के पश्चात् ईजूभाई बोले—"क्यों भई कभी तुम भी अपना खोमचा खाते हो।"

वह बोला—"अरे सरकार हमें कहाँ बदा है, रोटी ही मिल जाय यही गनीमत है।"

"अच्छा भाई आज तुम खूब पेट भर के खालो जितना खाओगे उसके दाम हम तुम्हें दे देंगे।"

"अरे साहब नहीं !" खोमचेवाला बोला।

"मजाक नहीं सच्ची बात है। तुम बे खटके खाओ। आज हमारी ऐसी ही तबियत है।"

अन्य लोगों ने भी उससे कहा। वह राजी होगया और प्रसन्नता-पूर्वक एक ओर बैठकर उसने भोग लगाना आरम्भ किया। बारह आने का खोमचा खा गया। खा-पीकर वह बोला—"हाँ साहब दाम मिल जांय तो चलें।"

वकील साहब ने, जितना मण्डली के लोगों ने लिया था उसके दाम दे दिये। खोमचेवाले ने स्वयम् अपने खाये हुए के दाम माँगे। ईजूभाई बोले—"भई खाया तुमने और पैसे हम दें यह कैसी बात ?"

खोमचेवाला बोला—"आपने कहा था।"

"हम कहें तुम कुए में कूद पड़ो तो तुम कूद पड़ोगे ?"

यह सुनकर उसने हल्ला मचाया। कुछ लोग जमा होगये। ईजूभाई लोगों से बोले—"आप लोग इन्साफ करें इसने अपना खोमचा खुद ही खा डाला और हमसे पैसे माँगता है।"

खोमचेवाला बोला—"साहब इन्होंने कहा था तुम खा डालो हम पैसे देदेंगे। सो हमने खा डाला अब ऐसी बातें करते हैं।"

लोगों ने पहले तो कहकहा लगाया फिर खोमचेवाले से कहा—"तू कैसा अहमक है जो अपना खोमचा खुद ही खा गया।"

"अरे साहब इन्होंने कहा था।"

"यह लाख कहा करें तुझे भी कुछ अकल है या नहीं ? चला है रोजगार करने।"

लोगों ने उलटे उसीको लानत मलामत की और बेवकूफ बनाया।

जब अन्य लोग चले गये और खोमचेवाला निराश होकर आँखों में आँसू भरे चलने लगा तो ईजूभाई ने पैसे दे दिये। पैसे पाकर वह हँसा और बोला—"आप लोग बड़े दिल्लगीबाज हो।"

ईजूभाई बोले—"अब कान पकड़ो कि किसी के कहने से ऐसा न करोगे और करो तो पैसे पहले ले लेना।"

वह बोला—"अरे साहब, अब तो जनम भर को याद हो गया।"

यह मण्डली अन्त को वकील साहब का देहान्त हो जाने से टूट गई। ईजूभाई अब भी हैं, परन्तु अब वह भी वे बातें छोड़ चुके। कभी मिल जाते है तो पुरानी बातें याद करके थोड़ी देर हँस लेते है।

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

: ३४ :

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

मोरचा ! जिधर देखिए उधर मोरचा ! जिस तरह लोटे को जंग खाता है उसी प्रकार संसार को यह मोरचा खाये जा रहा है। लेकिन क्या किया जाय, मोरचे का जवाब तो मोरचा ही हो सकता है। इसलिए खूब मोरचाबन्दी होने दो। प्रत्येक घर एक मोरचा हो जाय। हिन्दुस्तान में शस्त्रास्त्र का मोरचा स्वयं सरकार की ओर से कायम हो रहा है इसलिए वह काम तो अपने राम के हाथ से फिलहाल निकल गया। और यदि हिन्दुस्तान की मोरचाबन्दी का ठेका अपने राम को मिल भी जाता तो अपने राम तो उसे खुद मुनाफा लेकर किसी दूसरे के हाथ बेच डालते। अपने कौन झंझट में पड़ता। और झंझट भी मामूली नहीं—जी हां ! तोपें बनवाओ, बन्दूकें तैयार कराओ, गोला बारूद का प्रबन्ध करो, भर्ती करो, उन्हें शिक्षा दो, हवाई स्टेशन के लिए स्थान ढूँढ़ते फिरो और न जाने क्या क्या करो। ऊँहुंक ! यह काम अपने राम के बस का था भी नहीं। अपने राम को तो महात्मा गांधी की कार्य-प्रणाली पसन्द है। केवल अहिंसा और सत्याग्रह ! जब जबानी जमाखर्च से काम चल सकता है तो हत्याहरण जाने का काम क्यों किया जाय। यदि जर्मनी हमला करे तो उससे साफ साफ बिना किसी लगी लिपटी के कह दिया जाय कि-देखो म्याँ, तुम भी स्वस्तिका वाले और हम भी स्वस्तिका वाले इसलिए ठठेरे ठठेरे बदलाई नहीं होती। यदि स्वस्तिकाएं ही परस्पर लड़ने लगेंगी तो उनका महत्व ही क्या रहेगा। अतः आप यहाँ से तशरीफ ले जाँय—हिन्दुस्तान की सीमा तक भेजने अपने राम भी चले चलेंगे। और यदि जापान

आया तो उससे कहा जायगा । क्या कहा जायगा ? केवल यह कह देने से कि 'हम लोग भी एशियाई और तुम भी एशियाई' वह शायद मानेगा नहीं, क्योंकि, एशियाई तो चीन भी है न । जब जापान एशियाई होने के नाते भी चीन के साथ कोई रियायत नहीं कर रहा है, तब मामला जरा गड़बड़ है । तो यह कहा जाय कि चूंकि हिन्दुस्तान भगवान बुद्ध का जन्म स्थान है इसलिये यह तुम लोगों का तीर्थ है। अतः आ गए हो तो कुछ पूजा भेंट चढ़ा कर चुपचाप वापस चले जाओ अन्यथा 'प्लेंशेट' द्वारा भगवान बुद्ध की आत्मा को बुलाकर उनसे तुम्हारी सख्त शिकायत की जायगी । हालांकि भगवान बुद्ध की आत्मा को बुलाने की बात भी किसी क़दर गड़बड़ा चौथ के अन्तर्गत ही है और वह इसलिए कि भगवान बुद्ध तो निर्वाण पद को प्राप्त हो चुके, अर्थात मुक्त हो गये । प्रेतात्मा अथवा आत्मा बुलाने वालों का कहना है कि मुक्तात्माओं को किसी भी युक्ति से नहीं बुलाया जा सकता । साथ ही इस गड़बड़ पर डबल गड़बड़ एक और भी है और वह यह कि जापानी लोग अब बौद्धमत को नहीं मानते अब वे 'शिन्टो' धर्म को मानने लगे हैं । इस धर्म के अनुसार कहा जाता है कि जापानियों का ईश्वर स्वयं उनका राजा ही है । सूर्य का अंश होने के कारण 'मिकाडो' ईश्वर है। अगर है तो खूब है-हम से क्या ? अधिक से अधिक भगवान बुद्ध की धौंस काम न देगी । न देगी तो न सही-सब से बड़ा तुरुप का पत्ता तो अपने ही हाथ में है । और वह है सत्याग्रह तथा असहयोग । जापानियों से कहा जायगा कि "बड़े मर्द हो तो लड़ लो-लेकिन जैसे हम कहें वैसे लड़ो । यह खून खच्चर तो रक्खो ताक पर, ऐसी तरकीब से लड़ो कि न तुम्हारा एक भी आदमी हताहत हो और न हमारा । मामले की बात है । हमारी तुम्हारी लड़ाई सत्याग्रह से हो । तुम तो हिन्दुस्तान में अपना अधिकार जमाने के लिए सत्याग्रह करो और हम करें तुम्हें हिन्दुस्तान से निकालने के लिए—फिर देखो कौन जीतता है, किसका भाग्य लड़ता है । क्योंकि हिन्दुस्तान भाग्यवादी है—यह सदैव भाग्य पर ही तान तोड़ता है । हमारी तुम्हारी लड़ाई तो नकली है—असली लड़ाई

तो भाग्य लड़ेंगे।" ऐसा कहने से यदि जापानी मान गये तो अपनी विजय निश्चित है। क्योंकि अपने लोग तो क्रोध पर विजय प्राप्त कर चुके हैं और जापानी ठहरी क्रोधी जाति। सत्याग्रह करते-करते उसे कभी न कभी क्रोध आ ही जायगा। और हम लोग भी उन्हें क्रोध दिलाने की उसी प्रकार कोशिश करेंगे जिस प्रकार कि वकील लोग गवाह को क्रोध दिलाने का प्रयत्न करते हैं। बस उन्हें क्रोध आते ही वे सत्याग्रह के नियमों का उल्लंघन करके हम लोगों को मार बैठेंगे। उस समय हम ललकार कर कह देंगे कि "बस, अब भाग जाओ अब कुछ दिन घर में सत्याग्रह का अभ्यास करके फिर आना।" फिर कौन आता है और यदि आयेंगे भी तो दस-पांच बरस में अभ्यास करके आयेंगे। तब तक हम लोग खूब शस्त्रास्त्र तैयार करके लैस हो जायँगे और जापानियों से अकड़ कर कहेंगे कि—"अब हम सत्याग्रह से नहीं लड़ते—तुम्हारे बाप का इजारा है। अब तो हम तोपों से लड़ेंगे।" बस जनाब जापानी जेर हैं। वे अपने मन में कहेंगे कि—इन लोगों ने अच्छा उल्लू बनाया। हम लोग तो शस्त्रास्त्रों का बनाना बंद करके सत्याग्रह की ट्रेनिंग लेते रहे—इधर इन लोगों ने पूरी तैयारी कर ली। इन लोगों से पेश पाना मुश्किल है।"

लेकिन अपने राम में एक बड़ा भारी ऐब यह है कि अपने राम किसी नतीजे पर नहीं पहुँचते। अब सवाल यह पैदा होता है कि यदि जापानी लोग सत्याग्रह की लड़ाई लड़ने को तैयार न हुए तो क्या होगा। उस दशा में क्या जापानियों के लिए पुरश्चरण बिठाना ठीक होगा? अरे हाँ खूब याद आया पुराने लोग कहते हैं कि पहले 'मूठें" चला करती थीं। बहुत लोग इन 'मूठों' को उतार भी लेते थे, वापस भी कर देते थे। भगवान जाने ये सब लोग कहाँ चले गये। वरन जनाब लाखों 'मूठें" एक दम छोड़ दी जातीं—बस जापानी ढेर हो जाते। 'जितनी बढ़िया बातें' थीं—वे सब तो हिन्दुस्तानी भूल गये—लड़ें क्या खाक! कोई ऐसा फ़कीर या सन्त भी नहीं दिखाई देता जो इन कम्बख्तों को बददुआ ही देकर खतम कर दे। वशिष्ठ ने विश्वामित्र की सेना से

लड़ने के लिए शबरों की सेना क्षणमात्र में उत्पन्न कर दी थी। अब कोई बकरों की सेना ही उत्पन्न कर दे। लाखों बकरे यदि एक दम धावा बोल दें तो जापानी नोकदुम भाग खड़े हों, कितनों को मारेंगे। जब टिड्डियां ट्रेनें रोक देती हैं तो क्या बकरे जापानियों को नहीं रोक सकेंगे ? और जो कहीं इस समय भगवान शङ्कर अपना तीसरा नेत्र खोल देने को राजी कर लिए जायँ तो मजा आ जाय। लेकिन उन्हें यह अच्छी तरह समझा दिया जाय कि केवल जापान का निशाना ताक कर नेत्र खोलें। नशेबाज आदमी का क्या भरोसा — कहीं ऊलजुलूल ढँग से खोल बैठें तो अपना ही कल्याण होजाय।

तरकीबों की अपने राम के पास कमी नहीं है, पचासों तरकीबें याद हैं परन्तु उन तरकीबों को करके दिखाने वाला भर मिलना चाहिए। सिर्फ इतनी सी बात है। अपने राम कोई हाथी-घोड़ा तो माँगते नहीं-केवल एक ऐसा आदमी माँगते हैं जो अपने राम की बताई तरकीबों के अनुसार काम कर सके। फिर देखिये जर्मनी-जापान इटली और न जाने कौन कौन मिनिटों में भाग खड़े हों। अरे भई और लोग तो न जाने क्या क्या माँगते हैं। कोई पूरे देश का सहयोग चाहता है, कोई फौज-फाटा माँगता है। परन्तु अपने राम तो केवल एक ऐसा आदमी माँगते हैं जो अपने राम के कहे अनुसार कार्य करके दिखा दे लेकिन अपने राम का दुर्भाग्य तो देखिये कि एक आदमी तक नहीं मिलता।

खैर ! तरकीबें तो सुन ही लीजिए उनका तो अपने पास खजाना है। हिंदुस्तान के चोर प्रसिद्ध हैं। कुछ ही जातियाँ ऐसी हैं जो इस कला में कमाल हासिल किये हुए हैं। लोगों का कहना है कि एक बार कानपुर की एक अदालत में दिन-दहाड़े कोई दरी निकाल ले गया। और लुत्फ़ यह कि अदालत का कार्य हो रहा था। हाकिम, वकील, गवाह इत्यादि सब मौजूद और सब लोग फर्नीचर सहित उसी दरी पर लदे थे—फिर भी दरी निकल गई। वाहवा ! क्या कमाल है। सो जनाब यदि जापानी हिन्दुस्तान में घुस ही आवें तो रात में उनका सफ़ाई का

सामान चोरी करवा लिया जाय। जब सबेरे जापानी सोकर उठें तो देखें कि सब हवाई जहाज गायब, तोपें नदारद, टेङ्क लापता। अब लड़ो बच्चा काहे से लड़ोगे। दो चार बार जहाँ ऐसी हरकत की जायगी बस घबरा कर स्वयं ही भाग खड़े होंगे। न कहियेगा, कैसी बढ़िया तरकीब है, और कितनी आसान!

और सुनिये तांत्रिक लोग तो भारत में बहुत हैं। और इनमें से किसी को पिशाच सिद्ध है, किसी को साक्षात जगदम्बा का इष्ट है, कोई यक्षिणी सिद्ध किये बैठा है, कोई दावा करता है कि उसे बटुक भैरव का इष्ट है। ये सब लोग आखिर किस दिन काम आयेंगे। इनसे कहा जायगा कि भेजो अपने अपने 'वीरों' को—रात को जापानियों की छाती पर सवार होकर उन्हें खूब रगड़े। अपने राम शर्त्त बदने को तैयार हैं कि जिस रात को यह काण्ड हों उसके सबेरे यदि एक भी जापानी भारत की भूमि पर दिखाई पड़े तो अपने राम एक दिन के लिए ठंडाई का सदाव्रत खोल देंगे।

लीजिए अब आखिरी तरकीब भी सुन लीजिए लेकिन कहीं यह न समझ लीजियेगा कि अपने राम ने यह तरकीब अपने तरकीब गोदाम में झाड़ू देकर निकाली है। ऐसी बात कदापि नहीं है। जितनी तरकीब आज अपने राम ने आपको बताने का निश्चय किया है उनमें से यह अंतिम है। सुनिये!

कोई काम ऐसा किया जाय जिससे जापानी लोग अत्यंत प्रसन्न होकर भारतवासियों से यह कह दें कि—"मांगो क्या माँगते हो!" उस समय उनसे झट यह कह दिया जाय कि—"हम केवल यह माँगते हैं कि आप लोग अपना बोरिया बंधना उठा कर सीधे वापस चले जाँय।" बस जनाब हम लोगों के ऐसा कहते ही, यदि हम लोगों के भाग्य अच्छे हुए तो, जापानी चुपचाप लौकी सा मुँह लटकाये और इस बात पर पश्चात्ताप करते हुए कि उन्होंने नाहक वरदान माँगने के लिए कहा, जापान की ओर लौट जाँयगे।

देखा आपने कितनी तरकीबें और कैसी कैसी बढ़िया जो है सो,

अपने राम ने बता दीं। हिन्दुस्तानियों में तो यह ऐब है कि कोई बढ़िया बात मालूम होगी तो अपने पुत्र तक को न बता जायँगे—साथ लेकर चले जायँगे। इसी कारण अपने यहाँ की अनेक बढ़िया-बढ़ियाँ विद्याएँ लुप्त हो गईं। परन्तु अपने राम उन आदमियों में नहीं हैं। अपने राम का सिद्धांत यह है कि विद्या का प्रकाशित हो जाना ही अच्छा है। अतः अपने राम ये युक्तियाँ बिना 'कापी राइट रिजर्वड' के प्रकाशित किये दे रहे हैं जिससे कि सनद रहे और वक्त जरूरत पर काम आवें।

लेकिन साथ ही एक बात और है। उपर्युक्त सब युक्तियाँ उसी समय लागू हो सकती हैं जब पहले अंग्रेज लोग हम लोगों से यह कह दें कि—"अच्छा भाई अब अपना घरबार सँभालो हम लोग जाते हैं।" और अँग्रेजों को इस कार्य के लिए तैयार करने का काम कांग्रेस ने अपने ऊपर ले लिया है या लेने का इन्तजाम कर रही है। इसलिए अपने राम फ़िलहाल कोई दखल नहीं देना चाहते। क्योंकि अँग्रेज लोग काँग्रेस की युक्ति से चले जायँगे या नहीं इसमें अपने राम को सन्देह है। तब तक के लिए अपने लोगों के पास केवल यह काम रह जाता है कि हवाई हमले से हिफाजत के लिए हवाई हमले के 'अलार्म' की ओर कान लगाये रहें और नित्य सबेरे उठ कर यह पता लगावें कि आज गेहूँ मिल सकेगा या नहीं।

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)